भूमिका ।

गीता अनमोल रत्न है। जिस तरह अनमोल रत्न बड़ी कठिनतासे मिलते हैं, उसी तरह इस गीताके महान उद्देश्य, शुभकर उपदेश और कठोरतर विषय भी बड़ी कठिनता से समझमें आते हैं। फिर मुझ सरीखे अल्पज्ञ और अत्यन्त तुच्छ बुद्धिवाले मनुष्यकी क्या सामर्थ्य है कि इस ग्रन्थकी भूमिका लिख सके। लिखना इतनाही है कि इस वेद-मयी, सर्व-शास्त्रमयी, और तत्त्वज्ञान-मयी गीतामें दिये हुए श्रीकृष्ण भगवानके अमृत सरीखे उपदेश, केवल हिन्दी जाननेवालों को समझमें न आनेके कारण जनसमाजका उतना उपकार नहीं होता जितना कि होना चाहिये और न गीताकी रचनाके उद्देश्यकी पूर्णतया सिद्धि ही होती है, तथा संसार इस दुर्लभ अमृतको देख देख तथा पूज पूजकर ही बिना पान किये रह जाता है।

ऐसा न होना चाहिये। उचित तो यह है कि बालकपनसे ही इसके अर्थका थोड़ा थोड़ा बीज बालकोंके कोमल हृदयपर आरम्भसे ही बो दिया जाय, जिसमें उनकी बुद्धिकी वृद्धिके साथ ही साथ वेद-व्यासके उद्देश्यकी भी कुछ सिद्धि होती जाय तथा जगत्‌का कुछ उपकार भी हो। बस, इसी उद्देश्यसे तथा यही विचारकर कि जिन महाशयोंका संस्कृतमें उतना बढ़ा चढ़ा अभ्यास नहीं है कि वे गीता सरीखे कठोरतर ग्रन्थका आशय समझ कर परब्रह्म जनार्दनके उपदेशोंको समझ सकें, मैंने अपनी अल्पशक्ति और हीन-बुद्धिके अनुसार इस ग्रन्थके आशयोंको जहाँतक बन पड़ा है सरल हिन्दीमें खुलासा तौर पर समझानेका उद्योग किया है। सो भी, अपनेही भरोसे नहीं—बल्कि मैसूर राज्यके श्रीयुत महादेव शास्त्री एम० ए० की अनुवादित भगवद्गीता और शङ्कर-भाष्यके सहारे अपने उद्देश्यकी सिद्धिका प्रयत्न किया है।

यद्यपि इन अमूल्य उपदेशोंके अर्थको समझानेके समय अन्यान्य महानुभावोंकी बनायी हुई टीकाएँ, गीतापर उनके विचार, भाष्य आदि जहाँ तक मिले हैं, मैं सभोंको देखता गया हूँ परन्तु प्रधान सहायता उपर्युक्त महोदयके किये हुए अँगरेज़ी अनुवादसे ही ली है। आपके ग्रन्थकी सहायतासे ही मैंने यह कार्य पूरा किया है, अतएव मैं आपका विशेष कृतज्ञ हूँ।

आगे इस ग्रन्थके प्रथम दो फार्म एक अन्य महाशय ने लिखे थे। कारणवश वे न लिख सके, अतएव लाचार हो कर आगे के १६ अध्याय मुझे ही लिखने पड़े। यदि उक्त महाशय इसका लिखना न छोड़ बैठते तो मैं इस महा कठिन काममें हर्गिज हाथ न लगाता।

इस ग्रन्थको लिखते समय मैंने इस बातपर विशेष ध्यान रखा है कि गीताके उपदेशोंके भाव भली भाँति व्यक्त हों, इसलिये साफ सरल शब्दोंमें भावार्थ अलग समझानेका उद्योग किया है, साथही विषय ठीक ठीक रखनेपर भी पूरा ध्यान रखा है। जहाँतक अपनी सामर्थ्य थी इसको सुन्दर सजाकर ही पाठकोंको अर्पण करनेका साहस किया है। अब यह ग्रन्थ कैसा हुआ, यह पाठकगण आप ही समझ लें और यदि कहीं त्रुटियाँ नज़र आवें तो समय समयपर मुझे भी सूचित किया करें ताकि द्वितीय संस्करणमें इसका कुछ सुधार हो जाय। मैं इतनाही चाहता हूँ कि बालक इससे शिक्षा ग्रहण करें, केवल हिन्दी पढ़े लिखे मनुष्य श्रीमधुसूदनके उपदेशोंका सार समझकर लाभान्वित हों और देशका कुछ उपकार हो। यदि इसका कुछ भी अंश सत्य हुआ तो मैं अपने उद्योग को सफल जानूँगा।

विनीत—

हरिदास।

गीताका परिचय ।

यस्माद्धर्ममयी गीता, सर्वज्ञान प्रयोजिका ।
सर्वशास्त्रमयी गीता, तस्माद्गीता विशिष्यते ॥

अर्थात् गीताके पढ़ने और उसको समझने से धर्मकी बातें मालुम होती हैं, सब तरहके ज्ञानोंकी वृद्धि होती है, सब शास्त्रोंके तत्त्वकी बातें मालुम होती हैं, इसलिये गीता सब शास्त्रोंसे श्रेष्ठ है। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि ऊपर दिये हुए श्लोकका एक एक अक्षर सत्य और ठीक ठीक है ; क्योंकि गीताकी ऐसे ही समयमें सृष्टि हुई है और श्रीकृष्ण भगवानने अर्जुनको ये अमृतभरे उपदेश ऐसेही समय दिये हैं, जिस समय अर्जुन बहुत ही व्याकुल हो उठे थे, क्षत्रियोचित भाव उनके हृदय से दूर हुआ जाता था तथा वह क्षत्रियोंके कर्मको भूल रणभूमिसे भागा चाहते थे। ऐसी अवस्थामें, ऐसे अवसर में, और ऐसे रणभूमि सरीखे चित्तको हिला देने-

वाले स्थानमें, जिस अमृतरूपी उपदेशने अर्जुन सरीखे व्यग्रचित्त मनुष्यका हृदय स्थिर और शान्तकर दिया, उस उपदेशको सुख और शान्तिमें बैठा हुआ मनुष्य यदि ध्यान देकर, समझकर पढ़े तो इसमें क्या सन्देह है कि उसका ज्ञान बहुत बढ़ जायगा और धर्म तथा कर्मके पूरे पूरे तत्त्वको वह भली भाँति समझ सकेगा—यही एक प्रधान कारण है कि प्रत्येक विचारशील उन्नत जातिने इस ग्रन्थका बहुत ही विशेष आदर किया है।

महाभारतके समयकी बात है, ठीक ठीक समयका पूरा पता न लगनेपर भी अनुमानसे पाँच हज़ार वर्ष पहिलेकी यह घटना मालुम होती है। उस समय भारतमें हस्तिनापुर नामक एक समृद्धिशाली नगर था। वहाँ चन्द्रवंशी राजा राज्य करते थे। उन राजाओं में शान्तनु बड़े ही प्रतापी राजा हुए। उनके पुत्रका नाम था भीष्म। कारणवश भीष्मके रहते हुए भी शान्तनुने योजनगन्धा नामकी मल्लाहकी कन्यासे विवाह किया। उससे उनके दो पुत्र हुए, जो असमयमें ही मर गये। उनके उन दोनों पुत्रोंसे पाण्डु और धृतराष्ट्र नामके दो पुत्र हुए। पाण्डु ही राज्यपर बैठे। पाण्डुसे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव—ये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। धृतराष्ट्रके सौ पुत्र हुए; जिनमें सबसे बड़ा दुर्योधन था। धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव कहलाये और पाण्डुके पाँचों पुत्र

पाण्डव कहलाये। पाण्डु भी अपने पुत्रोंको छोटी अवस्था में ही छोड़ परलोक सिधार गये; इसलिये राज्यकी देख भालका काम धृतराष्ट्रके हाथोंमें गया।

आरम्भसे ही धृतराष्ट्रकी नीयत खोटी थी। उनके कामोंसे मालुम होता है कि उनकी इच्छा अपनेही पुत्रों को समस्त राज्य दे देनेकी थी। उनका बड़ा बेटा दुर्योधन भी पाण्डवोंको देख न सकता था, दिन रात उनका निधन ही मनाया करता था। पाण्डवोंके मारनेके बहुत कुछ यत्न करने पर भी, ईश्वरकी क्रपासे, वह पाण्डवोंका कुछ भी बिगाड़ न सका, पाण्डव बाल बाल बचते ही गये। पाण्डवोंको शिक्षा भी अच्छी हुई, अस्त्रशिक्षामें भी पाण्डवोंने ही विजय पायी। अर्जुन बड़े ही भारी धनुर्द्धर हुए। पाण्डवोंसे दुर्योधनकी न पटती देख, अन्तमें बहुत कुछ समझाने बुझाने पर, धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको राज्य बाँट दिया।

राज्य पानेपर पाण्डवोंने अपने राज्यकी उन्नति आरम्भकी। पाण्डव खूब बली थे। उन्होंने अपने भुज-बलसे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाएँ जीतकर राजसूय यज्ञ किया। उनका सभा मण्डप मय नामक एक दैत्यने ऐसा अद्भुत बनाया जैसा न कभी पृथिवी पर बना और न बनेगा। भारतके सभी राज्योंने पाण्डवोंकी वश्यता स्वीकार की। चीन, कम्बोजिया,

कन्दहार आदि पृथ्वीके सभी नरपतियोंने पाण्डवों को अपना सम्राट समझा। पृथ्वीभरके राजाओंने पाण्डवों को अनेक प्रकारके धन रत्न आदि भेट दिये। पाण्डव अब बड़े ही वैभवशाली हुए। समस्त भूमण्डलके वह एकमात्र चक्रवर्ती राजा हुए।

दुर्योधनसे पाण्डवोंकी यह श्री और उन्नति देखी न गई। उसने पाण्डवोंको बुलाकर छलसे जूआ खेलना आरम्भ किया। जूएमें पाण्डव बराबर हारते गये, यहाँ-तकै कि अपनी परमप्रिया स्त्री द्रौपदी को भी हार गये। इस द्यूत सभामें द्रौपदीको बहुत कुछ अपमान सहना पड़ा। जूएमें दुर्योधनका छल भी पाण्डवोंसे छिपा न रहा। पाण्डव उसी समयसे समझ गये कि दुर्योधन कुछ अनर्थ करेगा। सब सभासदोंके समझाने पर बड़ी कठिनतासे द्रौपदीको तो छुटकारा मिल गया परन्तु पाण्डवोंको १२ वर्षका बनवास और १ वर्षका अज्ञातवास मिला। प्रतिज्ञाबद्ध होनेके कारण पाण्डवोंको ये सब दुःख सहन करने ही पड़े। अज्ञातवास का १३ वाँ वर्ष भी पाण्डवों ने राजा विराटके यहाँ छिपकर नौकरी करके बिता दिया।

प्रतिज्ञाके तेरह वर्ष बीतजाने पर पाण्डवोंकी ओर से श्रीकृष्ण भगवान दूत बनकर कौरवोंके पास गये और उनसे पाण्डवोंका राज्य माँगा। इस समय दुर्योधनके

हाथमें राज्यकी देख रेख थी, दुर्योधनने राज्य देनेसे इन्कार कर दिया। कृष्णने बहुत कुछ समझाया, अन्तमें पाँच गाँव ही माँगे ; परन्तु दुर्योधनने साफ़ कह दिया कि बिना युद्धके मैं एक सुईकी नोक बराबर भूमि भी न दूँगा। लाचार, कृष्ण लौट आये।

अब दोनों ओरसे युद्धकी तय्यारियाँ होने लगीं। दुर्योधनको भी मालुम हो गया कि पाण्डवोंसे लड़ाई होगी। भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण, शल्य, जयद्रथ आदि बड़े बड़े नामी धनुर्द्धर कौरवोंकी ओर हुए। धृष्टकेतु, चेकितान, कुन्तिभोज, शैव्य, धृष्टद्युम्न, सात्यकि आदि राजे तथा अभिमन्यु एवं द्रौपदीके पाँचों पुत्र पाण्डवोंकी ओर हुए। कौरवी सेनाके सञ्चालनका भार भीष्म पितामहको दिया गया और पाण्डवी सेनाके सेनापति भीमसेन हुए। दोनों ओरकी सेनाएँ सज-धजकर मोर्चों पर आ डटीं। दोनों ओरसे लड़ाईका मारू बाजा बजने लगा। जब दोनों सेनाएँ एकत्रित हो गईं, तब अर्जुनने अपने सारथि (क्योंकि श्रीकृष्णने ही अर्जुनके रथको चलानेका भार लिया था) श्रीकृष्णको रथ दोनों दलोंके बीचमें, इसलिये, ले चलनेको कहा कि देखें कौन कौन हमलोगोंसे युद्ध करनेके लिये विपक्षमें खड़े हुए हैं।

भगवान श्रीकृष्णने रथ दोनो दलोंके बीचमें ले

आकर खड़ा किया। अब अर्जुन अपने विपक्षी दल को देखने लगे—अपने सम्बन्धी, बाबा, गुरु, चाचा, मामा, पौत्र, श्वशुर, सभी अपने ही अपने दिखाई देने लगे। यह दृश्य देख अर्जुनको बड़ा दुःख हुआ। वह करुणामें भरकर कृष्णसे बोले—"हे कृष्ण! इस स्थानपर आकर तो अब मेरी युद्ध करनेकी इच्छा नहीं होती, मेरा मुँह सूख रहा है, नसें ढीली पड़ी जाती हैं, कलेजा काँप रहा है, यह धनुष मेरे हाथसे गिरा ही चाहता है, माथेमें चक्कर आ रहे हैं; क्योंकि जिनसे युद्ध करना होगा, वे सब अपने ही सम्बन्धी, भाई बन्धु, गुरु आदि हैं। इन अपने ही मनुष्योंको मारकर मैं क्या सुखी होऊँगा? यह राज्यपाट यदि मैंने जीत ही लिया तो किस काम आयगा? यह बात मेरी समझमें नहीं आती। 'अब मुझे जयकी ज़रूरत नहीं है, मैं राज्यकी भी इच्छा नहीं करता, न इतने आत्मीयों को मारकर मुझे सुख-भोग भोगनेकी ही इच्छा है। राज्य-भोगसे क्या होगा? जिनके लिये राज्य भोगकी आवश्यकता है वे तो यहाँ मरने मारनेके लिये खड़े हैं। ये हमारे, गुरु, पितामह, श्वशुर, साले और अन्य अन्य सम्बन्धी हैं। हे मधुसूदन! ये चाहें मुझे मार डालें, पर मैं इन पर शस्त्र नहीं चला सकता। इन गुरुजनोंको मार कर राज्य भोगनेकी अपेक्षा भीख माँगकर दिन काटना

अच्छा है। यदि मुझे त्रिलोकी का राज्य भी मिल जाय तोभी मैं इन पर शस्त्र नहीं उठा सकता।

श्रीकृष्ण भगवानने देखा कि अर्जुन इस समय वृथा मिथ्या मोह-जालमें फँस कर अपने धर्मसे डिग गया है, इसे ब्रह्मज्ञान नहीं है ; इसीसे मोह और शोकने इसे धर दबाया है। यदि इस समय इसे ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया जाय तो यह फिर अपने क्षत्रियोचित धर्मपर आरूढ़ हो सकता है। यह सोचकर श्रीकृष्ण भगवान समस्त वेदोंका सार, ब्रह्मज्ञान, साधनों सहित अर्जुनको सुनाने लगे। भगवान श्रीकृष्णने यहाँ जिस ब्रह्मविद्याका उपदेश देकर अर्जुनकी आँखें खोलीं और उसे अपने धर्म में लगा दिया उसीका नाम गीता हुआ। यही गीताका यथार्थ परिचय है।

गीता ज्ञानका भाण्डार है। गीता धर्ममयी,सर्वशास्त्रमयी और सब प्रकारके तत्त्वज्ञानोंसे भरी हुई है। गीता का एक एक श्लोक, एक एक पद, यहाँ तक कि एक एक अक्षर भी ज्ञानसे शून्य नहीं है। यह योग-शास्त्रका विषय है ; इसमें एकमात्र ब्रह्मविद्याका निरूपण है। इस ग्रन्थके सभी श्लोक मन्त्र हैं। समूची गीतामें ज्ञाननिष्ठाका वर्णन है ; क्योंकि ज्ञान निष्ठाही मोक्षका कारण है। बिना ज्ञान-निष्ठाके मुक्ति नहीं हो सकती,परन्तु ज्ञाननिष्ठाके पहिले उपासना और उपासनाके पहिले कर्मयोग

या कर्म-निष्ठाकी आवश्यकता आ पड़ती है। अतः कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों ही मोक्षके कारण हैं। इन तीनों मेंसे किसीके बिना काम नहीं चल सकता। तीनोंही के साधन की आवश्यकता है। तीनोंके साधनसे ही मोक्ष मिलती है। उपासना और ज्ञानके बिना केवल कर्मसे काम नहीं चलता। न कर्मके बिना केवल उपासना और ज्ञानसे ही काम चलता है। इसी तरह ज्ञानके बिना केवल कर्म और उपासनासे भी काम नहीं चल सकता। तात्पर्य यह है कि तीनोंमें से एक भी न रहने से, दोनों बेकार हो जाते हैं। ये सदा एक दूसरेकी उपेक्षा रखते हैं।

अब इन दोनोंमें भेद यह है, कि कर्म करनेसे अन्तः-करण शुद्ध होता है, उपासनासे चित्त एकाग्र होता है और ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसलिये गीता के पहले छः अध्यायोंमें कर्मकाण्डका वर्णन है। दूसरे छः अध्यायोंमें उपासनाका वर्णन है और शेषके छः अध्या-योंमें ज्ञान-निष्ठाका वर्णन है। इस तरह १८ अध्याय और ७०० श्लोकोंमें गीता समाप्त की गयी है। जब मनुष्य कर्मयोग और उपासनामें पक्का हो जाता है, तब उसके सामने ज्ञान-निष्ठा मुख्य हो जाती है और जब वह ज्ञान-निष्ठामें भी परिपक्व हो जाता है, तब उसके सब दुःखोंका नाश होकर उसे परमानन्दकी प्राप्ति हो जाती है।

जिस तरह वेदमें कर्म,उपासना और ज्ञानका निरूपण किया गया है ; उसी तरह इस गीतामें भी कर्म, उपासना और ज्ञानका निरूपण किया गया है। गीतामें ऊँच नीचका भेद नहीं है। गीताका मुख्य उपदेश है कि आत्मा सबमें समान है, सभी ब्रह्म है और जीव तथा ब्रह्ममें भेद नहीं है।

कृष्णने अर्जुनके उपकारके लिये जिस तरह यह ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया, अर्जुनने जिस भाँति इन उपदेशोंको ध्यानसे समझकर अपना कर्म ठीक ठीक साधन किया ; उसी तरह महर्षि वेदव्यासने भी जगत्के उपकारके लिये यह विचार कर कि कुछ दिनोंमें वह समय आवेगा जब लोग वेदको समझ न सकेंगे और ब्रह्मविद्याको भी जान न सकेंगे,भगवानके मुखसे निकले हुए ब्रह्मज्ञानको यथास्थान सजाकर अपनी लिखी महाभारतके भीष्मपर्वमें उसे जोड़ दिया और उसका नाम भगवद्गीता रख दिया।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि गीता अलभ्य ग्रन्थ है, इसके समान उपदेशपूर्ण कोई ग्रन्थ नहीं है ; इसके प्रमाण स्वरूपमें कृष्णभगवानने स्वयंही कहा है :—

गीताश्रयेऽहंतिष्ठामि, गीतामेचोत्तमंगृहम् ।

गीताज्ञानमुपाश्रित्य, त्रींल्लोकान्पालयाम्यहम् ॥

मैं गीताके आश्रयपरही रहता हूँ, गीताही मेरा

परमोत्तम घर है और मैं गीताके ज्ञानका आश्रय लेकर ही त्रिलोकीका भरण पोषण करता हूँ।

और भी कहा है—

चिदानन्देनकृष्णेन, प्रोक्ता स्वमुखतोऽर्जुनम्।
वेदत्रयीपरानन्दा, तत्वार्थज्ञानसंयुता॥

यह गीता स्वयं परब्रह्मरूप चिदानन्द श्रीकृष्णने अपने मुखसे अर्जुनको सुनाई है; इससे यह वेदत्रयी रूप, कर्मकाण्डमय और सदा आनन्द तथा तत्वज्ञान की देनेवाली है।

विचारनेकी बात है कि जिस गीताके वक्ता स्वयं पूर्ण ब्रह्म श्रीकृष्ण हैं,श्रोता अर्जुन सरीखे महाधुरन्धर तेजस्वी और जितेन्द्रिय पुरुष हैं और कर्त्ता कृष्णद्वैपायन व्यास जैसे महात्मा हैं,भला उसके भवघ्नी, त्रयतापनाशिनी और तत्त्वार्थ ज्ञानदायिनी होनेमें क्या संशय है?

इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है कि गीतासे बढ़ कर ज्ञानका कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है, इसको समझ कर पढ़नेसे मनुष्य ज्ञान सिद्धि प्राप्त करता है, और अन्तमें जन्म मरणसे छुटकारा पाकर ब्रह्मरूप हो जाता है। जो मनुष्य-देह पाकर इस गीतारूपी अमृतको नहीं पीता है वह अमृत छोड़कर विष पीता है; अतएव जिन्हें जन्म मरणके कष्टसे छुटकारा पाना हो, जिन्हे

संसार-सागरसे तरना हो, वे गीताको समझ कर पढ़ें, पढ़ावें, सुनें और सुनावें।

गीताका विषय कठोर है, इसमें ज्ञानकी बातें हैं, ज्ञानकी बातें बिना समझे, बिना बुद्धि लड़ाये माथेमें नहीं घुसतीं। जो बात समझमें नहीं आती, जिस बातमें मस्तिष्क काम नहीं करता, उन बातोंको केवल रट लेनेसे कोई फल नहीं मिलता। गीता श्रीकृष्ण प्रदत्त उपदेश है। किसीके उपदेशको रटनेसे फल नहीं हो सकता। उपदेशका अर्थ समझकर उसीके अनुसार कार्य करना चाहिये तब फल मिलता है। कहा है—

गीतार्थश्रवणासक्तो, महापापयुतोऽपिवा।
वैकुण्ठंसमवाप्नोति, विष्णुनासह मोदते॥

महापापी भी यदि गीताके अर्थको (केवल पद्यको नहीं) सुननेमें आसक्त होता है तो वह भी बैकुण्ठ पाकर विष्णु भगवानके पास रहता हुआ आनन्द करता है।

और भी कहा है—

गीतार्थं ध्यायते नित्यं, कृत्वाकर्माणिभूरिशः।
जीवन्मुक्तः सविज्ञेयो, देहान्ते परमं पदम्॥

जो अनेक प्रकारके कर्म करता हुआ भी गीताके अर्थका नित्य ध्यान करता है वह मरनेपर परम् पद पाता है।

विशेष समझानेकी बात नहीं है, जैसे जब तक अन्न नहीं पचता तबतक रुधिर आदि धातु नहीं बनतीं उसी तरह जबतक उपदेश समझमें नहीं आते तबतक मनुष्य उनके अनुसार काम भी नहीं कर सकता और इसी कारणसे कुछ फल भी नहीं मिलता। अतएव, इस गीता-रूपी उपदेशके एक एक अक्षर, एक एक पद और एक एक शब्द तथा वाक्यको खूब समझकर पढ़ना और याद रखना चाहिये। समझ कर पढ़नेसे ही गीता पाठका यथार्थ फल मिल सकता है।

ओ३म्

धृतराष्ट्रने पूछा :—"हे सञ्जय! मेरे और पाण्डुके पुत्रोंने पवित्र भूमि कुरुक्षेत्र में युद्धकी इच्छासे जमा होकर क्या किया"?

सञ्जयने उत्तर दिया कि युद्धके लिये तैयार हुई पाण्डवोंकी सेनाको देखकर दुर्योधन द्रोणाचार्य्य* के पास गये और बोले:—

---

* द्रोणाचार्य भारद्वाजके पुत्र थे और युद्ध-विद्या सिखानेमें कौरव और पाण्डवोंके गुरु थे।

गुरुजी महाराज ! पाण्डवों की इस बड़ी सेना को देखिये ; आपहीके शिष्य बुद्धिमान धृष्टद्युम्नने इसकी मोर्चेबन्दी की है ।

इस सेनामें, देखिये, कैसे कैसे बली और शूर लोग हैं । लड़ने में भीम और अर्जुन की बराबरी करनेवाले, विराट तथा द्रुपद जैसे महारथी लोग कमर कसकर तैयार हैं । धृष्टकेतु, चेकितान्, महाबली काशीराज, पुरुजित्, कुन्तिभोज, पराक्रमी शैव्य, पुरुषार्थी युधामन्यु, बली उत्तमौजा, अभिमन्यु* और द्रौपदीके पाँचों लड़के, जो महारथी † हैं, यहाँ मौजूद हैं ।

हे विप्रवर ! अब, अपने भी जो शूर वीर हैं उनके नाम भी गिना देता हूँ जिससे उन्हें आप जान जायँ ।

एक तो आपही हैं ; और भीष्म, कर्ण, युद्ध जीतनेवाला कृप, अश्वत्थामा और सोमदत्तका बेटा भूरिश्रवा अपनी ओरसे हैं ।

मेरे लिये प्राण की पर्वाह न करनेवाले और भी कई शूरवीर हैं जो शस्त्र चलाने और युद्ध करने की विद्या भली भाँति जानते हैं ।

और ऐसी इस शूर सेना की रक्षा स्वयं भीष्म पिता

---

*अभिमन्यु श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्रा और अर्जुनसे पैदा हुए थे ।

† जो अकेला दस हजार धनुर्धारियोंसे युद्ध कर सके उसे महारथी कहते हैं

मढ़ कर रहे हैं ; इसलिये हमारा बल बहुत बढ़ा चढ़ा है। पाण्डव-सेनापर भीमसेन है ; उनके बलका अनुमान किया जा चुका है।

आप लोग व्यूह * के मुहानोंपर डटकर भीष्म की रक्षा करें।

फिर दुर्योधन को खुश करनेके लिये, वृद्ध पितामह भीष्मने एकबार सिंहके समान गरज कर शङ्ख बजाया।

तब शङ्ख, भेरी, नगाडे, मृदङ्ग, गोमुख आदि बाजे एकाएक बजने लगे जिनका बड़ा भारी शब्द हुआ।

फिर तो सफ़ेद घोड़ोंवाले बड़े रथमें बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनने अपने अपने दिव्य शङ्ख बजाये।

श्रीकृष्णनेपाँचजन्य, †अर्जुनने देवदत्त और भयानक कार्य्य करनेवाले वृकोदर—भीम—ने पौंड्र शङ्ख बजाया, उसी प्रकार कुन्तीके बेटे युधिष्ठिरने अनन्तविजय, नकुलने सुघोष और सहदेवने मणिपुष्पक शङ्ख बजाया।

बड़ा धनुष धारण करनेवाले काशीराज, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट और किसीसे हार न खाने वाले सात्यकीने तथा राजा द्रुपद, द्रौपदीके पाँचों बेटोंने

---

* मोर्चेबन्दी।

†श्रीकृष्णके शङ्खका नाम पाँचजन्य था। उन्होंने एकबार एक पाँचजन् नामक बली दैत्यको मारा था उसकी हड्डियोंसे यह शंख बनाया गया था।

और हे पृथिवीनाथ! अभिमन्यु ने अपना अपना शङ्ख बजाया।

इन शङ्खोंका भयावना शब्द धृतराष्ट्रके पुत्रोंका कलेजा फाड़ कर भूमि और आकाश में गूँज उठा।

अर्जुनने जब देखा कि कौरव व्यूह बाँधकर खड़े हैं और अब वे पाण्डवोंपर टूटही पड़ना चाहते हैं तब उन्होंने धनुष उठाया।

और हे पृथिवीनाथ! तब उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा:— "दोनों सेनाओंके बीच मेरा रथ ला खड़ा करो"।

मैं भी देखलूँ कि कौन कौन युद्ध करने आये हैं और किन किन से मुझे आज लड़ना है।

कुबुद्धि दुर्योधन को जिता देनेके लिये जो लोग यहाँ जमा हुए हैं उन्हें मैं अवश्य देखूँगा।

सञ्जय कहते हैं कि नींद जिनके काबूमें हैं उन अर्जुन की यह बात सुनकर श्रीकृष्णने रथको दोनों सेनाओं के बीच में ला खड़ा किया और भीष्म द्रोणादिके सामने अर्जुन से कहा कि हे पार्थ!* कौरवोंका यह जमघट देखो।

अर्जुन ने देखा कि यहाँ तो चाचा, दादा, गुरु, मामा, भाई बन्द, पुत्र पौत्र, और ससुर, स्नेही, मित्र

---

*पार्थ भी अर्जुनही का नाम है।

ही इकट्ठे हुए हैं ; युद्धके लिये तय्यार उन भाइयों को देख अर्जुन ने, करुणा से दुःखी हो, भगवान्‌से कहा :

हे कृष्ण! युद्ध करने को आये हुए इन भाइयोंको देख, मेरी नसें ढीली पड़ गयी हैं, मुँह सूख रहा है, छाती फट रही है और कलेजा काँप रहा है।

हाथसे गाण्डीव धनुष गिरा चाहता है और सारा शरीर जल रहा है ; मैं अब ठहर भी नहीं सकता ; क्योंकि चक्कर आरहे हैं।

हे केशव !* लक्षण भी बहुत ख़राब दिख रहे हैं ; लड़ाई में अपनेही लोगोंके प्राण लेकर मेरा क्या भला होनेवाला है, मैं नहीं समझता।

मैं जय नहीं चाहता, मैं राज्यकी परवाह नहीं करता और मुझे भोग भोगनेकी भी इच्छा नहीं है ! राज-भोग से क्या होनेवाला है ?

जिनके लिये राज्य, भोग और सुख चाहियें, वे तो धन और प्राण छोड़ कर यहाँ मरने मारनेके लिये तैयार हैं।

ये हमारे गुरु, पितर, पुत्र, पितामह, मामा, ससुर बेटे, साले और सम्बन्धी हैं। हे मधुसूदन !† ये चाहें

*केशव कृष्णका नाम है। जो जलपर सोता है उसे केशव कहते हैं।

†मधुसूदन भी कृष्णका नाम है। इन्होंने मधु नामक दैत्यको मारा तबसे ये मधुसूदन कहाये।

मुझे मार डालें; पर इन्हें मैं नहीं मारना चाहता। चाहे तीनों लोकोंका राज्य क्यों न मिल जाय, पर इनपर मैं शस्त्र नहीं चला सकता। फिर ज़रासी ज़मीनके लिये क्या लड़ बैठूँ?

हे जनार्दन!* इन पापी कौरवोंको मारकर सिवा पाप और मेरे हाथ क्या लगेगा?

इसलिये अपने भाई कौरवोंको मारना हमें नहीं सोहता; भला, अपने ही मनुष्योंको मार कर हम लोग कैसे सुखी होंगे?

राज्यके लोभ से इनकी मति मारी गयी है; इन्हें कुलके नाश और मित्र के घातका पातक भले ही न दिखाई दे; पर हमलोग तो उसे देख रहे हैं फिर हमें उससे बचनेकी बुद्धि क्यों न हो?

कुलका नाश होनेसे सनातन कुल-धर्मोंका भी नाश होता है। धर्मका नाश होनेसे चारों ओर अधर्म फैल जाता है।

अनाचार बढ़नेसे कुल-स्त्रियाँ खराब होती हैं और ऐसी स्त्रियोंसे वर्ण-संकर † होता है। संकर, कुलके नाश करनेवालोंको नरक में पहुँचा देता है, इनके

---

*जनार्दन श्री कृष्णका नाम है

† दुराचारी स्त्रियों की सन्तानको वर्णसङ्कर कहते हैं।

पितरोंको पिंडा और पानी भी नहीं मिलता और वे भी नरकमें जा गिरते हैं।

कुलके नाश करनेवालोंके इन वर्णसंकर फैलानेवाले दोषोंसे जाति और कुलके सनातन धर्मका लोप हो जाता है।

जिनका धर्म लोप हो गया है, वे मनुष्य सदा नरकमें ही सड़ते हैं। यह हम सुनते आये हैं।

हा! राज्यके लोभसे हम लोग यह कैसा खराब काम कर रहे हैं जो अपने ही भाइयोंको मार डालने पर उतारू हुए हैं।

मेरे हाथ में शस्त्र न हो, ऐसी असहाय अवस्थामें यदि शस्त्र लेकर कौरव मुझपर टूट पड़ें और मुझे मार डालें तो यह उससे कहीं अधिक अच्छा है।

सञ्जयने कहा:—अर्जुन इस प्रकार कहकर और धनुषबाण नीचे रख, हाथपर हाथ धरकर, रथपर पीछेकी तरफ सरक कर बैठ गया। उस समय अर्जुनका चित्त एकदम उदास हो गया था।

दूसरा अध्याय।

अर्जुनका हृदय दयासे भर गया था; दुःखसे आँखें भी फूलकर डबडबा आई थीं। ऐसे समय उस दुःखी अर्जुनसे श्रीकृष्ण भगवान् बोले :

यह लड़ाईका समय है और ऐसे समय यह कायरता तुझमें आ गयी! हे अर्जुन! इस प्रकार संकटसे मुँह मोड़ना आर्योंको नहीं सोहता; इससे स्वर्ग नहीं मिलता और न इससे किसीकी प्रशंसा होती है।

हे पार्थ! ऐसे नामर्द मत बनो, यह तुम्हें शोभा नहीं देता। दिलको बड़ा करो और उठो।

अर्जुनने कहा:—भीष्म और द्रोण* मेरे पूज्य हैं और उनके साथ मैं बाणोंसे युद्ध करूं, यह कैसे होसकता है?

---

*भीष्म अर्जुनके पितामह और द्रोण उसके युद्ध-विद्या सिखानेवाले गुरु थे।

गुरुजनोंको मारनेकी नौबत आनेसे भीख माँग कर ही रहना अच्छा है। लोभी गुरुजनोंको मारकर, उनके खूनसे लपेटे भोग मैं कैसे भोगूँ ?

मेरी समझमें यह भी नहीं आता है कि किसका जीत जाना हम लोगोंके लिये अच्छा है ? हम लोगोंका या कौरवोंका ? क्योंकि जिन्हें मारकर हम लोग जीना नहीं चाहते उन कौरवोंहीसे सामना है।

अज्ञानसे मेरी बुद्धि मारी गयी है, इसलिये जो धर्म हो—ऐसे समय कर्त्तव्य हो—वह करनेकी इच्छासे मैं तुमसे पूछता हूँ कि जो ठीक हो, जिससे मेरी भलाई हो, वही बताओ। मैं तुम्हारा शिष्य हूँ—तुम्हारी शरण आया हूँ, मुझे उपदेश दो।

मैं तो नहीं समझता कि अपने भाई बन्धुओंकी हत्या कर फिर यदि कोई ऐसा राज्य भी मिल जाय जिसमें किसी बातकी कमी न हो और जिसमें कोई बैर न हो और यदि देवताओंका भी राज्य मिल जाय तो मेरा दुःख, मेरी इन्द्रियोंका सूखना किसी प्रकार घट जायगा।

सञ्जयने कहा:—इस प्रकार निद्राको जीतने वाले अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा और आप चुप हो रहा।

सञ्जय कहते हैं:—हे भारत!* श्रीकृष्णने तब दुःखी अर्जुनसे सेना समूहके बीच इस प्रकार कहा:—

*भारत, यह शब्द धृतराष्ट्रके लिये इस्तेमाल किया गया है।

तुम तो ऐसे लोगोंकी चिन्ता कर रहे हो जिनकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये ; इसपर पण्डितकीसी बातें करते हो। परन्तु पण्डित लोग कभी जीते मरोंके लिये शोक नहीं किया करते।

आत्मा नित्य है, उसके विषयमें कभी होना और कभी न होना, नहीं कहा जा सकता ; इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण इसी बातको इस प्रकार समझाते हैं।

मैं, तुम या ये राजा महाराजा पहले कभी नहीं थे सो नहीं और उसी प्रकार इस देहके छूटने पर ये और हम लोग न रहेंगे सो भी नहीं।

मनुष्यकी देहही मनुष्य नहीं है ; प्रत्युत उस देहको धारण करता हुआ हृदयके अन्दर जो एक सूक्ष्मतम पदार्थ है वही मनुष्य कहा जाता है, वही जीवात्मा है। उसे देही भी कहते हैं।

जिस प्रकार देहीको इस देहमें बचपन, जवानी, बुढ़ापा आदि अवस्थाएँ हुआ करती हैं उसी प्रकार देह का छूटना या देहका बदल जाना, यह भी एक अवस्था ही है ; धीर पुरुष देह छोड़ते हुए कभी इस तरह नहीं डिगते।

इन्द्रियाँ जब शब्दादि विषयोंको अनुभव करती हैं (अर्थात् जब कानसे शब्द सुनायी देता है, आँखसे कोई चीज़ दिखाई देती है, हाथ या और किसी भागके चमड़े को बाहरी वस्तु छूजाती है, जीभ किसी चीज़की चखती

है या नाक किसी चीज़ को सूँघती है) तभी सुख दुःख या खुशी और रञ्ज, अथवा सरदी गरमी मालूम हुआ करती है ; परन्तु यह जो इन्द्रियोंका विषयोंसे सम्बन्ध है यह सदा नहीं रहता ; आज है तो कल नहीं ऐसी इसको हालत है, इस लिये तुम इसकी इतनी चिन्ता न करो।

जिस पुरुषको हे पुरुषोत्तम ! इन इन्द्रियोंके कारण दुःख नहीं होता वह धीर पुरुष सुख दुःखमें एकसा रहता हुआ मोक्षप्राप्तिके योग्य होता है ।

जो वस्तु सचमुच है वह सदा रहेगी और वास्तवमें नहीं है, उसे नहींही समझनी चाहिये। (भ्रमसे देह ऐसी प्रतीत होती है ; परन्तु वह नहीं है ; क्योंकि यदि वह होती तो सदा रहती।) जो सत्य पहचानते हैं वेही सत् असत्का, अनात्मा और आत्माका यह भेद जानते हैं।

जिससे यह सारा जगत् भर गया है अर्थात् इस जगत्के अन्दर जो अदेख चीज़ फैली हुई है उसे अविनाशी समझो, वह कभी नष्ट न होगी ; वह अव्यय है अर्थात् उसमें कभी किसी प्रकारकी घटबढ़ नहीं होती ; उस ब्रह्मका नाश कोई नहीं कर सकता।

यह शरीर तो छूट जानेवाला है; पर आत्माके सम्बन्धमें कहा गया है कि वह सदा रहेगा, वह अविनाशी

है और असीम है अर्थात् उसकी सीमा नहीं है, क्योंकि वह सर्वत्र है; इसलिये तुम युद्धसे मुँह न मोड़ो।

जो लोग कहते हैं कि आत्मा मारनेवाला है और जो लोग यह कहते हैं कि वह मर सकता है, वे दोनों प्रकारके लोग मूर्ख हैं; यह आत्मा न मरता है, न किसी को मारता है।

आत्मा कभी उत्पन्न नहीं होता और न कभी मरता ही है। इसी प्रकार ऐसा भी कभी नहीं होता कि वह पहले न हो और बादको हो, या पहले हो और बादको न हो। उसका जन्मही नहीं होता, वह सदा रहता है; उसमें कमी नहीं हुआ करती; अधिकता भी नहीं होती। शरीर छूटने पर वह नहीं छूट जाता; शरीर तलवारके घावसे दो टूक हो जाय पर उसपर वार नहीं लगता।

जो पुरुष इसे अविनाशी, नित्य, अजन्मा, अव्यय जानता है वह किसको कैसे मार या मरवा सकता है?

जिस प्रकार फटे पुराने वस्त्र फेंककर मनुष्य नये वस्त्र पहिनता है उसी प्रकार शरीरके अन्दर जो आत्मा है वह फटी पुरानी देह फेंककर नयी धारण करता है।

इसे शस्त्र छेद नहीं सकते; इसे अग्नि जला नहीं सकती; इसे पानी सड़ा नहीं सकता और इसे हवा सोख नहीं सकती।

किसीके छेदनेसे इसमें छेद नहीं होता; किसीके जलानेसे यह जल नहीं जाता; यह सड़ानेसे नहीं सड़ता और सोखनेसे नहीं सूखता। क्योंकि यह नित्य है, सब व्यापक है, स्थिर है, अचल है और सनातन अर्थात् अनादि है, तथा अचिन्त्य है अर्थात् इसकी सूरत ध्यानमें नहीं आती, अविकार्य है अर्थात् इसमें फेरफार नहीं होता। यह जानकर तुम्हें चाहिये कि शोक न करो।

इसे यदि तुम मरने और जीनेवाली वस्तु भी क्यों न मान लो, पर तुम्हें शोक करना उचित नहीं है। कारण—

जिसका जन्म हुआ वह अवश्य मरेगा और जिसकी मृत्यु हुई, वह अवश्य उत्पन्न होगा; फिर तो इस अटल बातपर शोक करना भी अनुचित है।

प्राणी आरम्भमें अव्यक्त रहते हैं अर्थात् वे किसीको दिखायी नहीं देते, बीचमें दिखायी देते हैं (अर्थात् जब शरीर धारण करते या जन्म लेते हैं) और मरने पर फिर गुप्त हो जाते हैं; इसमें शोक करनेकी क्या बात है?

इस आत्माको कोई इस तरह देखते हैं मानो यह कोई आश्चर्य जैसी वस्तु है; कोई इसे आश्चर्य जैसीही बताते हैं; कोई इसे सुनकर आश्चर्यसी वस्तु समझता है; पर इसे कोई ठीक ठीक नहीं समझता।

यह आत्मा सब किसीके शरीरमें है; इसलिये किसीके लिये भी तुम्हें शोक न करना चाहिये।

अपना धर्म देखकर इस तरह हिम्मत न हारो: धर्म-युद्धसे बढ़कर और कोई धर्म क्षत्रियका नहीं है।

हे पार्थ! युद्ध करनेका ऐसा मौका मानो खुला हुआ स्वर्गका द्वार है। ऐसा मौका भाग्यवान् क्षत्रियों के ही हाथ लगता है।

इस युद्धमें जूझना तुम्हारा धर्म है और यह धर्म तुम छोड़ दोगे तो स्वधर्म और कीर्तिसे हाथ धोकर पापके भागी बनोगे।

केवल तुम कीर्त्तिसे ही हाथ न धोओगे; पर सब लोग सदाही तुम्हारी निन्दा किया करेंगे (कहेंगे, अर्जुन कायर की भाँति युद्धसे प्राण ले भागा) भले आदमी को तो निन्दासे मृत्यु ही अच्छी है।

महारथी लोग समझेंगे कि अर्जुन डर कर रणसे भाग गया। जो लोग तुम्हें आज मानते हैं उन्हीं की दृष्टिमें तुम गिर जाओगे।

तुम्हारे शत्रु तुम्हारी सामर्थ्य की निन्दा करते हुए तुम पर गालियों की बौछार करेंगे, ताना मारेंगे और तरह तरह की बातें सुनावेंगे; इससे बढ़कर और क्या दुःख होगा?

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३० ॥

युद्धमें यदि तुम्हारे प्राण निकल जायँ तो कोई हरज नहीं, तुम्हें स्वर्ग मिलेगा और यदि जीत जाओ तो तुम्हें पृथिवी का राज्य मिलेगा ; इसलिये हे अर्जुन ! उठो, युद्धकी तैयारी करो ।

सुख दुःख, लाभ हानि और हार जीतको समान समझ कर युद्धकी तैयारी करो ।

यह मैंने तुम्हें आत्मज्ञान बताया ; अब कर्म्मयोग सुनो ; जिससे ज्ञान प्राप्त होकर तुम्हारे कर्म्म-बन्धन छूट जायँगे ।

श्रीकृष्ण भगवान्ने अबतक जो कुछ कहा वह शरीर और आत्माके भेदके सम्बन्ध में कहा है । यह शरीर अनित्य है, इसलिये यह सत्य नहीं है । इस शरीरको ही अपना सब कुछ मान लेना निरी मूर्खता है । यह शरीर, शरीरके भीतर रहनेवाले उस आत्मा की पोशाक है । यदि कोई मर जाता है या मारा जाता है तो वह जीवात्मा नहीं, पर शरीर ही मरता और मारा जाता है । यह शरीर स्वयं नष्ट होता है यह स्वाभाविक बात है । संसारमें जितने पदार्थ हैं उनमें दो बातें होती हैं ; एक उसका रूप और दूसरी उसकी शक्ति । शरीरके भीतर रहनेवाला आत्मा दिखायी नहीं देता ; परन्तु उसीके कारण यह शरीर है, नहीं तो इस शरीर में जो मिट्टी, पानी, रोशनी, हवा और आकाश है वह किसके लिये और किसके सहारे है ? जीवात्माने ही तो पृथिवी आदि पाँच महा भूतोंसे यह शरीर तैयार कर लिया है । कपड़े बहुत दिन नहीं चलते, फट जाते हैं ; पुराने हो जाते हैं ; उसी प्रकार जीवात्मा की यह स्वाभाविक पोशाक भी फट जाती

है, पुरानी हो जाती है ; फिर वह जीवात्मा के रहने योग्य नहीं रहती । तात्पर्य, श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि इस शरीरके लिये शोक करना वृथा है ; क्योंकि यह सत्य नहीं है—आज न सही कल अवश्य नष्ट होनेवाला है आत्मा सत्य है, अमर है । आत्माको सत्य जान शरीरका मोह तोड़ डाल-नेका उपदेश दे, अब श्रीकृष्ण भगवान् 'कर्मयोग' की शिक्षा देते हैं ।

साधारण लोग जब कोई कार्य्य करते हैं तो उस कार्यसे उन्हें या तो नामवरी, या धन या अधिकार या और प्रकारके भोग भोगनेकी इच्छा होती है । हम कोई मन्दिर बनवाते हैं तो चाहते हैं कि इस काम से हमारा नाम मशहूर हो । इसी प्रकार सब काम किसी न किसी प्रकार से किया जाता है । ऐसी इच्छा दुःख देनेका कारण भी बनती है । क्योंकि जब हम किसी इच्छा से कोई कार्य्य करते हैं और वह कार्य्य सफल नहीं होता तो हमारी इच्छा भी पूर्ण नहीं होती और हम असन्तुष्ट होते हैं ; हमें दुःख होता है । क्या इस दुःखका कारण इच्छा ही नहीं है ? यदि इच्छा दुःख ही देनेवाली हो तो उसे छोड़ देना ही अच्छा है । परन्तु इच्छा छोड़ने पर भी कार्य्य छोड़ना अच्छा नहीं ; प्रत्युत, इच्छा छोड़ कार्य्य करना ही सब सुखोंका मूल है और इसलिये ऐसे कार्य्य करने की अर्थात् कर्म्मयोग' की शिक्षा अब दीजाती है ।

इच्छा विशेषसे जो कार्य होता है वह अधूरा रह जाय तो उसमें इच्छा पूरी नहीं होती और इसलिये करनेवाला दुःखका भागी होता है । परन्तुः—

इस कर्मयोगमें ऐसी बात नहीं है । कार्य अधूराही क्यों न हो वह निकम्मा नहीं हो जाता । इसके अति-रिक्त ऐसे कार्यमें कोई बाधा भी नहीं पड़ती । सबसे बड़ी बात यह है कि ऐसा थोड़ासा ही कार्य यदि बन जाय तो बड़ी बड़ी कठिनाइयों से बचाव होता है ।

हे अर्जुन! ऐसे कार्य जो मनुष्य करता है उसकी बुद्धि स्थिर हुआ करती है (क्योंकि एक परमात्मा पर ही सारा विश्वास रख कर, सारी इच्छाओंको त्याग कर जब कार्य किया जाताहै तब मन इधर उधर नहीं दौड़ता।) परन्तु जो लोग आत्मा और शरीर का भेद न जान कर अपने मनको सच्चे झूठे विषयों में लगा देते हैं उनकी बुद्धि एक जगह नहीं रहने पाती; उसकी कई शाखाएँ हो जाती हैं और वे शाखाएँ दूर दूर फैलती हैं।

जो लोग वेदोंके बाहरी अर्थमेंही लगे रहते हैं अर्थात् सच्चे ज्ञानको छोड़ अपने अपने मतलब का अर्थ वेदों की ऋचाओंसे निकालते हैं और कहते हैं कि इससे बढ़कर और कोई बात नहीं है, वे मूर्ख हैं। जो लोग अपनी इच्छाको ही अपना आत्मा बनाये हुए हैं अर्थात् जो अपनी इच्छासे परे कोई चीज़ नहीं देख सकते और तरह तरहके भोग भोगने की इच्छासे यह कहते हैं कि अमुक काम करने से अमुक फल मिलता है। अथवा यह कर्म करने से स्वर्ग मिलता है वे मीठे वचनवाले भी मूर्ख हैं। ऐसे लोग भोग और ऐश्वर्य्य में फँस कर अपनी बुद्धि खो बैठते हैं। ऐसे लोगोंकी बुद्धि कभी स्थिर नहीं होती।

ये लोग अपनी बुद्धि खोकर वेदोंका मन-माना अर्थ किया करते हैं। जहां आत्मज्ञान की बातें लिखी हैं वहां ये लोग भोग, ऐश्वर्य और स्वर्ग-

हिकी कपोल कल्पित कल्पनाएं किया करते हैं। वेदोंमें जो परमार्थ ज्ञान है उसे इन्होंने कर्मकाण्ड समझ लिया है। जहाँ इच्छा छोड़ कार्य्य करने का उपदेश दिया गया है वहाँ ये स्वर्गादिका लालच दिया करते हैं। वास्तव में, वेद ज्ञानका समुद्र है ; परन्तु संसारी जनोंने उसे अपना मतलब-सिन्धु बना लिया है। वेदोंको वे सत्व रज और तम, इन गुणोंसे भरे ही देखते हैं। इसलिये भगवान श्रीकृष्ण को यह कहना पड़ा :—

वेद सत्व, रज, तम, इन तीनोंसे बने इस संसार की बातें ही बताते हैं ; परन्तु इन तीनोंसे अलग हो जाओ और इच्छाको एकबारगी ही छोड़ दो, सुख दुःख छोड़ सात्विक बनो, कोई काम करो तो उसमें अपना मतलब न देखो, उसे यह समझ कर करो कि उसे करना ही उससे लाभ उठाना है और न करनाही दुःखमें गिरना है, इस प्रकार कर्म करते हुए अपने आत्माकाही चिन्तन करो।

जिस प्रकार महासागरके रहते भी लोग अपना काम ताल तलैयोंसे निकाल लेते हैं उसी प्रकार वेदोंका अथाह ज्ञान-समुद्र रहते भी ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण वेदोंसे जो काम निकलना चाहिये वह काम अपने ज्ञानसे निकाल लेता है।

यह सुन कर अर्जुनके हृदयमें यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि यदि ज्ञान-मार्गको यह महिमा है तो फिर कर्मको क्या ज़रूरत ? इसे श्रीकृष्ण पूछनेसे पहलेही कहते हैं :

तुम्हारा केवल कर्म करनेका अधिकार है ; फलसे

तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं। जो कर्म तुम करोगे उसके फलकी इच्छा मत करो ; उसी प्रकार कर्म न करनेको भी अच्छा न समझो।

हे धनञ्जय ! ईश्वर पर पूर्ण विश्वास रखकर और सारी इच्छाओंको परित्याग कर, लाभ हानिका विचार छोड़, योगी बनकर कर्म करो : लाभ हानि, सुख दुःख, हार जीत आदि को एकही दृष्टिसे देखना 'योग' कहाता है। इस प्रकार जो कर्म किया जाता है वह श्रेष्ठ है और जो कर्म इस प्रकार नहीं किया जाता अर्थात् किसी विशेष मतलबसे किया जाता है वह इस कर्मके मुक़ाबले बहुत नीचे दर्जेका ठहरता है। इसलिये हे अर्जुन ! तुम बुद्धियोग की शरण लो (अर्थात् निष्काम कर्म करो) जो लोग फल पानेको इच्छासे कर्म करते हैं वे मूर्ख हैं।

सुख दुःख और सब प्रकारके लाभ हानिको एकसा समझनेवाला मनुष्य क्या इस लोकमें और क्या परलोक में कभी पाप पुण्य का भागी नहीं होता ; वह जिस प्रकार अच्छे कर्म कर पुण्यकी आशा छोड़ देता है उसी प्रकार उसके हाथों यदि कोई बुरा भी काम हो जाय तो उसका पाप भी उसे नहीं लगता ; इसलिये तुम सुख दुःखका विचार छोड़, दोनोंको एकसा समझ लो। सुख दुःख आदिको एकही समझ कर या सुखमें न सुखी

होकर और दुःखमें न दुःखी होकर कार्य्य करने को ही 'योग' कहते हैं ।

बुद्धिमान् और ज्ञानी लोग कर्मसे उत्पन्न होनेवाले फलों को अर्थात् स्वर्गादिके सुखसे लेकर नरकमें मड़नेके दु.ख तक सब कुछ परित्याग कर देते हैं जिससे जीने मरने से भी वे मुक्त हो जाते हैं और इस प्रकार उन्हें परब्रह्मकी प्राप्ति होती है ।

निष्काम होकर, कर्म करते करते जब तुम्हारी बुद्धि अज्ञानका दलदल पार कर जायगी, तब आजतक कर्मके स्वर्गादिके फलोंके सम्बन्धमें जो कुछ तुमने सुना है और जो कुछ तुम सुनने योग्य समझते हो या सुनोगे उससे तुम्हारा मन हट जायगा अर्थात् तुम वैराग्य प्राप्त करोगे ।

नाना प्रकारके फलोंका लोभ दिलानेवाले मन्त्रोंको सुनकर तुम्हारी बुद्धि मारी गयी है ; (उसे ठीक करने का यत्न करो) जब वह स्थिर हो लेगी, नाना प्रकारके विषयोंसे हटकर जब तुम्हारी बुद्धि एकही बात पर जम जायगी ; तब तुम्हें आत्माका साक्षात्कार होगा—तब तुम आत्माको समझ सकोगे ।

अर्जुनने पूछा:—हे केशव ! ऐसी स्थिर बुद्धिवाले—स्थितिप्रज्ञ—मनुष्यके क्या लक्षण हैं ?

भगवान्‌ने कहा:—जब कोई मनुष्य अपने मनको

सारी इच्छाओंको छोड़ देता है और आत्माके ध्यानसेही संतुष्ट रहता है तब उसे स्थितप्रज्ञ या स्थिर बुद्धिवाला कहते हैं।

जिस मनुष्यको दुःख आ-पड़ने पर क्लेश नहीं होते और सुखके समयमें कोई भोग भोगनेकी इच्छा नहीं होती; जिस मनुष्यको कोई लोभ लुभा नहीं सकता; जो किसीसे नहीं डरता और जिसे क्रोध नहीं आता वह मनुष्य 'स्थितधी' कहाता है।

जो मनुष्य सर्वत्रही एक सा उदासी है—जो किसी वस्तु पर भी स्नेह नहीं करता; जो कोई अच्छी वस्तु पाकर न सुखी होता है और न बुरी वस्तु पाकर दुःखी होता है, और न कभी उससे घृणा करता है—जो भले बुरेको एकही निगाहसे देखता है—उस मनुष्यकी बुद्धि स्थिर कहाती है।

जो मनुष्य कछुएकी तरह अपनी सारी इन्द्रियोंको बाहरी भुलावोंसे अपनी ओर खींच लेता है, वह मनुष्य* स्थिर बुद्धिवाला कहा जाता है।

*ऐसे तो इन्द्रियोंको वे लोग भी अपने क़ाबूमेंही समझते हैं जो भोग भोगकर अपनी इन्द्रियोंको निर्बल कर चुके हैं; या ऐसी दशा में पड़े हैं अब उन्हें भोगके विषय ही नहीं मिलते हैं; या ऐसे काममें लगे हैं जिसके बोझसे इन्द्रियों की ओर उनका ध्यान अभी नहीं है। ऐसे लोग स्थिर-बुद्धिवाले नहीं कहे जाते। श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं:—

वह मूर्ख भी विषयोंको अपनी इन्द्रियोंके पास नहीं फटकने देता जो अपनी इन्द्रियोंसे काम लेना बन्द कर देता है। परन्तु विषय चाहे पास न आने पावें, विषयोंकी प्रीति उसके मनसे नहीं हटती। (जैसे वेश्याके यहाँ जाना पाप समझनेवाला ब्रह्मचारी वेश्याकी ओर देखना भी पाप समझता है। आँखसे ही उस विषयको न देखेंगे तो उस वस्तुको क्या सामर्थ्य है जो हमें लुभा सके! आँखसे न देखना, कानसे न सुनना, जीभसे न चखना आदि ही इन्द्रियोंसे काम न लेना कहाता है। इन इन्द्रियोंसे यदि काम लिया जाय, अथवा ब्रह्मचारी यदि आँख उठा कर स्त्रीकी ओर देखे तो उसको उस विषयकी प्रीति जाग उठेगी। इसलिये कहा कि इन्द्रियोंसे काम लेना बन्द करने पर भी उसकी प्रीति एका एक नहीं हटती। यह प्रीति भी उखड़ जानी चाहिये। यह कैसे उखड़े?) ज्ञानी पुरुष सत्यको देख कर इस प्रीति-मोह-मायाको उखाड़ फेंकता है।

हे अर्जुन! बड़े बड़े पराक्रमी और बुद्धिमान् मनुष्योंकी मदमाती इन्द्रियाँ उनके भी मनको ज़ोर ज़बर्दस्तीसे अपने क़ाबूमें कर लेती हैं।

उन सब इन्द्रियोंको अर्थात् मन, आँख, कान, नाक, जीभ बदन और पाँचों कर्मेन्द्रियोंको अपने बसमें लाकर, चित्तको सर्वथा झुककर, मेरेही ध्यानमें मगन हो जाना

मङ्गलकर है। जिसने इस प्रकार इन्द्रियोंको अपने आधीन कर लिया है उसीकी बुद्धि स्थिर है।

जो मनुष्य विषयोंके भोगकी इच्छा नहीं छोड़ सकता, उसकी बड़ी दुर्गति होती है। वह विषय न पाकर मनही मन उन विषयोंका ध्यान किया करता है।

मनही मन विषयोंका ध्यान करनेवाले मनुष्यका यह हाल होता है कि पहले तो उन विषयों पर उसकी प्रीति जम जाती है; फिर प्रीतिसे उस विषयकी भूख लगती है, उसे पानेकी बड़ी बलवती इच्छा उत्पन्न होती है; इस इच्छासे क्रोध उत्पन्न होता है। (क्योंकि इच्छा सफल होनेकी राहमें विघ्न आते हैं और इन विघ्नोंको देख किसका मन ठिकाने रहता है?) क्रोधसे अविचार उत्पन्न होता है। फिर यह नहीं सूझता कि हम वास्तवमें क्या कर रहे हैं। (फिर जो कुछ हमने ज्ञान प्राप्त किया है उसपर पानी फिर जाता है) स्मृति जब उठ गयी तब विवेक बुद्धि भी जाती रहती है (अर्थात् कर्तव्य अकर्तव्यका ज्ञान भी नहीं रहता) और जिस मनुष्यकी विवेक बुद्धि नष्ट होती है वह कोई पुरुषार्थ नहीं कर सकता।

धनके अभावसे, बलके न होनेसे अथवा और किसी कारणसे, जो लोग मनमाने भोग नहीं भोग सकते वे यदि मनही मन विषयोंको चिन्तन करते हों तो उन्हें

सावधान हो जाना चाहिये। नहीं तो वे भी किसी पुरुषार्थके योग्य न रहेंगे। बाहर तो वैरागी बनना और भीतर, लुभाने वाली वस्तुओंका ध्यान करना बहुतही बुरा है। इससे अच्छा तो यही है विषयोंको भले ही सेवन करें ; पर उनका मनमें ध्यान न करें। श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं:—

इन्द्रियाँ कुछ वस्तुओं पर जो प्रेम करती हैं और कुछ वस्तुओं पर जो घृणा करती है वह ठीक नहीं है। यह चाहना और घृणा दोनोंही छोड़ कर आत्माके आधीन हो जब इन्द्रियाँ विषयोंको सेवन करती हैं तब उस शुद्ध बुद्धिवाले पुरुषको शान्ति प्राप्त होती है।

इस शान्ति से क्या लाभ है ?

ऐसी शान्ति प्राप्त होनेसे इसके सारे दुःख मिट जाते हैं ; और उसको बुद्धि स्थिर होनेमें देर नहीं लगती।

बुद्धि स्थिर होनेसे जो लाभ है वे अस्थिर बुद्धिवालेको नहीं मिल सकते।

जिसकी बुद्धि स्थिर नहीं है वह अपने आपको नहीं पहिचान सकता ; वह अपने आपका विचार भी नहीं करसकता; और ऐसे बे विचारवालेको शान्ति नहीं मिल सकती। जिसे शान्तिही नही मिली, उसे सुख कहाँसे मिलेगा ?

जिसका मन भटकनेवाली इन्द्रियोंके पीछे पीछे चलता है वह मनके सरोवरमें वैसेही धक्के खाता है,

वैसेही निराशाकी चट्टानसे टकराता है; जैसे कोई बेपतवारकी नाव हवाके धक्के खाती है और हवाके ज़ोर से चल कर किसी चट्टानसे टकरा कर टूक टूक हो जाती है।

इस लिये हे वीर अर्जुन! उसीकी बुद्धिको हम स्थिर कहते हैं जिसकी इन्द्रियाँ विषयोंसे सर्वथा अलग रहती हैं अथवा उनमें कभी नहीं फँसतीं।

ऐसी स्थिर बुद्धिवाले मनुष्य ज्ञानी होते हैं; अज्ञानी जहां जिसे देख नहीं सकते उसीको वहीं ये ज्ञानी देख लेते हैं। अज्ञानी जिसे अन्धकार समझते हैं उसीको ये प्रकाश मानते हैं। अज्ञानियोंके लिये, आत्म-विचारकी दृष्टिसे, यह सारा समय रातकैसा है; क्योंकि वे आत्माको देख नहीं सकते; आत्माको देखनेके लिये उनको यह रातही है—परन्तु यही रात ज्ञानियोंके जागनेका दिन है। इसी अभिप्रायसे भगवान् कहते हैं:

सब प्राणियोंको जो रात है उसमें मनको जीतनेवाले लोग जागते हैं और जिस समय सब प्राणी जागते हैं उस समयको मुनि लोग रात समझते हैं। (ठीकही है क्योंकि जागते हुए लोग वास्तवमें जागते नहीं हैं; जागते होते तो जैसे कार्य्य वे करते हैं वैसे कदापि न करते।)

जिस समुद्रमें चारों ओरसे पानी आकर मिल रहा है परन्तु जिसकी सीमा ज्योंकी त्यों बनी रहती है; उस

समुद्रके समान ही गम्भीर रहता हुआ जो मनुष्य नाना प्रकारकी इच्छा-नदियोंके आ-मिलनेसे घटता बढ़ता नहीं, वही शान्ति प्राप्त करता है। जो इन इच्छाओंके फेरमें पड़ता है उसे शान्ति प्राप्त नहीं होती।

जो सन्यासी मनुष्य सारी इच्छाओंको छोड़कर, संसारको तृणवत् समझता हुआ रहता है और जिसे अपना पराया मोह नहीं है और जो निजको भी सबके समान समझता है उसका मन स्थिर होता है—उसे शान्ति मिलती है—उसीको मोक्ष प्राप्त होता है।

अर्जुनने श्रीकृष्ण भगवानसे स्थितप्रज्ञ—स्थिर बुद्धिवालेके लक्षण पूछे थे, इसलिये उन्हीं लक्षणोंका अबतक वर्णन हुआ। इस वर्णनके अन्तमें भगवानने अर्जुन से कहा :–

हे पार्थ! मैंने अबतक ब्राह्मी स्थितिका (अर्थात् ब्रह्मके पास पहुँचाने वाली दशाका) वर्णन किया। यह दशा ऐसी है कि इसमें रहने वाला कभी माया मोह में नहीं फँसता। इसी दशामें रहते हुए यदि शरीर छूट जाय तो उसे ब्रह्मनिर्वाणकी प्राप्ति होती है अर्थात् पूर्ण ज्ञानी हो जानेके कारण जीने मरनेकी उपाधिसे मुक्त हो जाता है।

दूसरा अध्याय समाप्त।

हे कृष्ण! अगर आप कर्मयोग से ज्ञानयोग को अच्छा समझते हैं; तो मुझे आप इस भयानक काममें क्यों लगाते हैं?

पहिले कृष्णने ज्ञानयोग का उपदेश दिया; पीछे कर्मयोग का उपदेश दिया और सबसे पीछे निष्काम कर्म करने का उपदेश दिया। इच्छाओं को छोड़ देने यानी निष्काम होजाने की बात सुनकर, अर्जुन श्रीकृष्ण से कहता है कि यदि आपकी राय मे कर्म करने से ज्ञानयोग ही अच्छा है तो आप मुझे इस घोर कर्म—युद्ध—में क्यों लगाते हैं? जब मुझे राजपाट, धन दौलत की इच्छा ही न रखनी चाहिये तब युद्ध करने की क्या आवश्यकता है? आपके कथन का सारांश तो मुझे यही मालुम होता है कि अब मुझे युद्ध वगैर: कुछ भी न करना चाहिये।

आपकी पेचीली—उलझनदार—बातों के सुनने से, मेरी बुद्धि चक्कर खारही है; इसलिये निश्चय करके ऐसी एक राह बताइये कि जिस पर चलनेसे मेरी भलाई हो।

कभी आप कर्म को अच्छा बताते हैं और कभी ज्ञान को कर्म से श्रेष्ठ बताते हैं। कभी इच्छाओं के छोड़ देने में मेरी भलाई कहते हैं और कभी कहते हैं कि हे अर्जुन! उठ और युद्ध कर। आप की ऐसी पेचदार और उलझन में डालनेवाली बातों से उलटी मेरी अक्ल गुम होगई है। मैं अब तक यह निश्चय नहीं कर सका हूं कि मुझे क्या करना चाहिये।

अतः अब कृपा करके, ऐसी एक बात बताइये जिसके अनुसार चलने से मेरा भला हो।

अर्जुन की यह बात सुन कर कृष्ण कहते हैं :—

हे अर्जुन! मैं पहिले कह चुका हूँ कि इस जगत् में दो प्रकार की राह हैं :—सांख्यवालों को ज्ञान-योग की और योगियों के लिये कर्मयोग की।

काम न करने से कोई कर्म के बन्धनों से रिहाई नहीं पासकता और न केवल कर्मों के छोड़ देनेसे ही सिद्धि प्राप्त होसकती है।

इसका खुलासा मतलब यह है, कि काम न करने से मनुष्य निष्काम तत्व-ज्ञान को नहीं पासकता; क्योंकि केवल सन्यास लेने से बिना चित्त की वृत्तियों के शुद्ध किये कोई सिद्धि नहीं पासकता।

असल में, कोई क्षण भर भी बिना काम किये नहीं रह सकता; क्योंकि प्रकृतिके सत्व, रज और तमोगुण के कारणसे, मनुष्य को लाचार होकर काम करना ही पड़ता है।

यदि कोई मनुष्य किसी प्रकार काम करना ही न चाहे, तो यह बात मनुष्य की इच्छानुसार हो ही नहीं सकती। उसे प्रकृति के सतोगुण, रजो-गुण और तमोगुण की वजह से काम करना ही पड़ेगा; क्योंकि मनुष्य प्रकृति के उक्त तीनो गुणों के आधीन है। अगर मनुष्य बिलकुल काम करना छोड़ देना भी चाहेगा तो प्रकृति के उपरोक्त गुण उसे कायिक, मानसिक या वाचिक कर्म करने को लाचार करेंगे और उससे कोई न कोई काम अवश्य करायेंगे। सारांश यह है, कि काम छोड़ देना मनुष्य के हाथ की बात नहीं है।

जो मनुष्य कर्मेन्द्रियों को वश मेंकरके, कुछ काम तो नहीं करता ; किन्तु मनमें इन्द्रियोंके विषयोंका ध्यान किया करता है,—वह मनुष्य झूँठा और पाखण्डी है ।

इसका खुलासा मतलब यह है कि मनुष्य को हाथ, पाँव, मुँह, गुदा और लिङ्गको वशमे कर लेने और इन से काम न लेने से कुछ भी लाभ नही है । इन इन्द्रियो से तो इनका काम लेना ही चाहिये ; किन्तु आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा—चमडे—को वश मे करना चाहिये । आँख, कान आदि पाँच ज्ञान-इन्द्रियाँ हैं । इन्ही का वश करना या इनको अपने अपने विषयो से रोकना जरूरी है । सारांश यह है कि हाथ पाँव आदि कर्म-इन्द्रियो* के रोकने से कोई फायदा नही है । फायदा है, आँख कान आदि ज्ञान-† इन्द्रियो के रोकने से ।

---

* हाथ, पाँव, मुँह, गुदा और लिङ्ग—ये पाँच कर्मन्द्रियाँ हैं । इन पाँचों के पाँच विषय हैं । हाथका विषय काम करना, पैर का विषय चलना, मुँह का विषय बोलना, गुदा का विषय मल त्याग करना और लिङ्ग का विषय पेशाब करना है ।

† आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा—चमडा—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ है । इन पाँचो के भी पाँच विषय हैं । आँखो का विषय देखना, कानों का विषय सुनना, नाक का विषय सूँघना, जीभ का विषय स्वाद चखना और पाँचवा ज्ञानेन्द्रिय त्वचा यानी चमड़ा है । इसका विषय छूना है । चमड़े से ही हमे स्पर्श-ज्ञान होता है । अगर कोई शख्स हमारे शरीर पर आग का अङ्गारा रखदे तो हमे त्वचा इन्द्रिय यानी चमड़े से ही उसकी गरमी का ज्ञान होगा ।

गीता के दिल से समझनेवालो को दसों इन्द्रियोंके नाम और उनके विषय यानी काम, भली भाँति, हृदयङ्गम कर लेने से गीता पढ़ने समझने में बड़ी भारी आसानी होगी ।

बहुत से लोग दिखावट के लिये अथवा ज़ाहिरमें सिद्ध बनने के लिये हाथ पाँव आदि कर्मेन्द्रियों से काम नहीं लेते, बिलकुल निकम्मे बैठे रहते हैं; किन्तु मनमें भाँति भाँति के इन्द्रिय-विषयों की इच्छा किया करते हैं। श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि जो ऐसा करते हैं, वह पाखण्डी हैं। वह लोगों में सिद्धाई फैलाने या अपने तईं पुजाने के लिये झूँठा ढोंग करते हैं। सब से अच्छा और सिद्ध पुरुष वही है, जो ज़ाहिरा तो काम किया करता है किन्तु अन्दर से अपने मन और ज्ञानेन्द्रियों को विषय-वासना से रोकता है।

हे अर्जुन! जो मन से आँख, कान आदि इन्द्रियों को वश में करके और इन्द्रियों के विषयों में मन न लगा कर, कर्म-योग करता है वही श्रेष्ठ है।

हे अर्जुन! तू अपना नियत कर्तव्य-कर्म कर; क्योंकि काम न करने से काम करना अच्छा है। अगर तू काम करना छोड़ देगा यानी कुछ काम न करेगा; तो तेरा यह शरीर भी क़ायम न रहेगा।

श्रीकृष्ण के कहने का खुलासा मतलब यह है, कि मनुष्य को हाथ पर हाथ धरे निकम्मा हरगिज़ न रहना चाहिये। हाथ, पाँव, मुँह, गुदा और लिङ्ग-इन पाँच कर्मेन्द्रियों से अवश्य ही काम लेना चाहिये। अगर मनुष्य इन से कुछ भी काम न लेगा तो उसकी काया ही नाश हो जायगी। जब काया ही नाश होजायगी तब वह ज्ञान-योग कैसे कर सकेगा? इसलिये मनुष्य को कर्मेन्द्रियों से काम लेना परमावश्यक है।

मनुष्य, यज्ञ अथवा भगवान् के लिये जो कर्म करता है वह ठीक है। यज्ञ अथवा ईश्वर-प्राप्तिके सिवाय जो कर्म किया जाता है उससे मनुष्य कर्म-बन्धन में बँध

जाता है; इसलिये अर्जुन! तू निष्काम होकर—मनमें कुछ इच्छा न रख कर—यज्ञके लिये कर्म कर।

प्राचीन समय—सृष्टि-रचनाकाल—में, प्रजापतिने यज्ञ सहित प्रजा को पैदा करके कहा :—"इससे तुम्हारी बढ़ती हो और यह तुम्हारी इच्छाओं को पूर्ण करे।

इसका खुलासा यह है, कि सृष्टि रचने के ज़माने में, ब्रह्माने मानव जाति को पैदा करके कहा :—"तुम लोग यज्ञ करो; यज्ञ करने से तुम्हारी वृद्धि होगी और उससे तुम्हें मन-चाहे पदार्थ मिलेंगे। यानी जिस तरह इन्द्र की काम-धेनु गाय माँगनेवाले को मन-माँगे पदार्थ देती है; वैसेही यह यज्ञ तुम्हारे लिये काम-धेनु की तरह काम देगा।

यज्ञ से तुम देवताओं की पूजा करो और उन्हें बढ़ाओ। देवता लोग तुम्हारी वृद्धि करेंगे। इसतरह, आपस में, एक दूसरेकी वृद्धि करने से तुम्हारा सबका भला होगा।

यज्ञ से सन्तुष्ट होकर, देवता तुमको तुम्हारे मनोवाञ्छित सुख देंगे। जो कोई उनके दिये हुए पदार्थों को, उन को बिना दिये ही, स्वयँ भोग करता है वह निश्चय ही चोर है।

मतलब यह है, कि यज्ञ करने से देवता प्रसन्न होते हैं और खुश होकर वर्षा करते हैं; जिससे अन्न पैदा होता है। अन्न से मनुष्यों की जीवन-रक्षा और उनकी वृद्धि होती है। किन्तु जो मनुष्य देवताओंसे वृष्टि द्वारा अन्न आदि पाकर, फिर उनकी वृद्धि—प्रसन्नता—के लिये यज्ञ नहीं करते, वह चोर हैं।

जो यज्ञ से बचे हुए अन्न को खाते हैं वे सारे पापों से छूट जाते हैं ; किन्तु जो अपने लिये ही अन्न पकाते हैं, वे पापी निश्चय ही पापों का भोजन करते हैं।

इसका खुलासा मतलब यह है, कि जो मनुष्य बलिवैश्वदेव आदि पञ्च-यज्ञ करने के पीछे जो अन्न बच रहता है उसे खाते हैं, वे पापों से छुटकारा पाजाते हैं ; किन्तु जो बिना यज्ञ किये आप ही खालेते हैं, वे दुःख भोग करते हैं।

अन्न से सब प्राणी होते हैं ; अन्न वर्षा से होता है ; वर्षा यज्ञ से होती है ; यज्ञ कर्म से होता है।

इसका साफ मतलब यह है, कि अन्न खाने से मनुष्यों की जीवन रक्षा होती है। अन्न जब पेट में पहुँचता है तब उसका रस खिंचता है। रस से रक्त बनता है। रक्त से माँस, मेद, अस्थि मज्जा आदि धातुएँ बनती हैं। यही सातों धातुएँ शरीरको धारण करती हैं। इन सबकी वृद्धि से मनुष्य की जिन्दगी कायम है और इनके नाश से मनुष्य का नाश हो जाता है, किन्तु इन सब धातुओं की पुष्टि और कमी पूरा करने वाला अन्न है, अतः प्राणि-योंकी प्राण रक्षा के लिये अन्न ही प्रधान चीज़ है। अन्न वर्षा होने से पैदा होता है। अगर मेह न बरसे तो अन्न पैदा ही न हो। इसलिये अन्न का पैदा होना मेह पर निर्भर है। मेह यज्ञ से होता है। अगर यज्ञ न किया जाय तो बादल न बने और जब बादल ही न बनें तो वर्षा कहाँ से हो? मतलब यह है कि वर्षा होने के लिये यज्ञ करना ज़रूरी है। लेकिन यज्ञ कर्म से होता है। अगर कर्म हो न किया जाय तो यज्ञ कहाँ से हो? इस विचार का यही तत्व है कि सब में "कर्म" प्रधान है। बिना कर्म जगत् का कोई काम नहीं चल सकता। कर्म किये बिना यह सृष्टि ही नहीं रह सकती।

श्रीकृष्ण भगवान् का यह उपदेश हम भारतवासियों के लिये—नहीं नहीं समस्त जगत् के लिये ही—कैसा अच्छा और सुखदायी है। आजकल, हमारे देश में, जो हर साल अकाल पर अकाल पड़ते हैं। लाखों जीव बिना मौत कालके गाल में समा जाते हैं। यह सब दुःख हम भारतवासियों को कृष्ण भगवान् की आज्ञा न पालन करने से ही भोगने पड़ते हैं। एक ज़माना था, जब इस आर्य्यभूमि के वन वन और घर घर में नित्य यज्ञ हुआ करते थे और यहां कभी अकाल देवता के दर्शन ही न होते थे। आज वह ज़माना है, कि लोग यज्ञों का नाम भी नहीं लेते; इसी से अकाल हर साल मुँह बाये खाने के लिये खड़ा रहता है। ख़ाली गीता की मणि का हार बनाने से, कृष्ण कृष्ण की रटना लगाने से, कुछ न होगा। जो होगा वह गीता में लिखे हुए कृष्णके वचन जानने और तदनुसार चलने से।

कर्म, ब्रह्म—सजीव शरीर—से होता है, और ब्रह्म—शरीरी—अक्षय परब्रह्म से पैदा होता है। अतः यज्ञ में अनन्त, सर्व व्यापक परब्रह्म सदा मौजूद रहता है।

हे अर्जुन! जो इस चक्र के अनुसार नहीं चलता है, वह इन्द्रियों के विषयों में लगा हुआ अपनी ज़िन्दगी खोता है। उस का जीना व्यर्थ है।

जिस चक्र का ऊपर ज़िक्र आया है उसे हम पहले समझा आये हैं। अन्न से शरीर, अन्न वर्षा से, वर्षा यज्ञ से, यज्ञ कर्म से और कर्म शरीर से होता है, यही ईश्वर का चक्र है। जो मनुष्य यज्ञ नहीं करता। अपनी इन्द्रियों के सुख देने में ही लगा रहता है उसका जीवन निष्फल है; यहां यज्ञकी महिमा बढ़ाते हुए भी, कृष्ण भगवान् 'कर्म की प्रधानता' ही सिद्ध कर रहे हैं।

अबतक श्रीकृष्ण भगवान् कर्म न करनेवाले को दोषी कहते आये हैं।

आगे चलकर वह यह भी दिखा देते हैं कि किसे कर्म न करने से दोष नहीं लगता ।

जो मनुष्य आत्मा में ही मग्न रहता है यानी आत्म-स्वरूप में ही आनन्द मानता है ; आत्मा से ही तृप्त रहता है और आत्मा से ही सन्तुष्ट रहता है ; उसके लिये, निस्सन्देह, कुछ भी काम नहीं करना है । उसके लिये काम करने या न करने से कुछ भी लाभ नहीं है । उसे प्राणी मात्र का आश्रय लेने की भी जरूरत नहीं है ।

जिस मनुष्य की आत्मा से ही प्रीति है । जिसकी आत्मासे ही तृप्ति हो जाती है यानी अन्न वगैरः की ज़रूरत नहीं होती । जो आत्मा से ही खुश रहता है अर्थात् जो सदा ईश्वर-प्रेम में मगन रहता है और जिसे खाने पीने आदि की इच्छा नहीं होती, वह कोई काम करने के लिये मजबूर नहीं है । अगर वह काम करे तो उसे पुण्य नहीं होता, अगर न करे तो कोई पाप नहीं लगता । उसे किसी प्रकार की इच्छा नहीं होती ; अतः उसे किसी प्रकार के मनुष्य का आश्रय टटोलने की ज़रूरत नहीं पड़ती ।

हे अर्जुन ! तू इन्द्रियों के आधीन न होकर, अपना कर्त्तव्य-कर्म कर । इन्द्रियों को जीत कर, काम करने वाला परमात्मा तक पहुँच जाता है ।

यहां श्रीकृष्ण कहते हैं, कि हे अर्जुन ! आत्मानन्दी पुरुष सब काम छोड़-कर निर्दोष रह सकता है परन्तु तू वैसा आत्मानन्दी या तत्वज्ञानी नहीं है । तू तो धन दौलत, राज-पाट और कुटुम्ब परिवारमें फंसा हुआ है । तुझसे वैसा नहीं हो सकता और तुझे वैसा करना भी न चाहिये । अगर कोई शख्स ज्ञानेन्द्रियों को आधीन करके या कर्मों में आसक्त न होकर अपना कर्त्तव्य

छोड़कर काम करे; तो वह परमपद या परमात्माको पासकता है। तू भी उसी तरह इस युद्ध को कर।

जनक वगैरः ज्ञानी लोग, कर्म करते करते ही, परम पद पागये हैं। इसलिये तुझे भी, संसार की भलाई पर नज़र रख कर, काम करना चाहिये।

बड़े लोग जिस चाल पर चलते हैं दूसरे लोग भी उन्हीं की चाल पर चला करते हैं। बड़ा आदमी जिस बात को चला देता है दुनिया उसी पर चलने लगती है।

हे अर्जुन! तीन लोक में ऐसा कोई काम नहीं है जो मुझे करना ही चाहिये; ऐसी कोई चीज़ नहीं है जो मुझे नहीं मिल सकती और न मुझे किसी चीज़ के हासिल करने की इच्छा ही है; तथापि मैं काम करने में लगा रहता हूँ।

हे पृथांपुत्र अर्जुन! यदि मैं निरालस्य होकर कामों में न लगा रहूँ; तो सब लोग मेरी नक़ल करेंगे यानी काम करना छोड़ देंगे।

अगर मैं कर्म न करूँगा तो दुनिया कहने लगेगी कि यदि कर्म श्रेष्ठ होता, तो श्रीकृष्ण ही करते। काम करना अच्छा नहीं था तभी कृष्ण ने कर्म नहीं किया।

यदि मैं कर्म न करूँ तो त्रिलोकी नष्ट हो जायगी। मैं वर्णसंकर करनेवाला और इन प्रजाओं को नष्ट करनेवाला ठहरूँगा।

मेरी ओर देखकर प्रजा कर्म को तुच्छ समझेगी और बिलकुल कर्म न करेगी। कर्मके लोप होने से धर्म नष्ट हो जायगा। धर्मके नाश होनेसे तीनो लोक नष्ट हो जायेंगे। किसी को भय न रहेगा। सब मनमानी करने लगेंगे। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत चरितार्थ होने लगेगी। मर्य्यादा नाश हो जायगी। संसार में कुकर्म और दुराचार बढ़ जायँगे। दुराचार से वर्ण सङ्कर जन्म लेने लगेंगे। अपनी ही प्रजाका आप ही नाश करने और वर्णसङ्कर पैदा करने का दोष मेरे ही सिर पर रहेगा। इन्हीं दोषों से बचने और प्रजा को मर्य्यादा पर चलाने के लिये ही मैं कर्म करता हूँ।

जिस भाँति मूर्ख लोग, कर्म में आसक्त होकर, कर्म करते हैं; उसी भाँति विद्वान लोगों को भी, लोगों की भलाई की इच्छा से, कर्मों में आसक्त न होकर, कर्म करना चाहिये।

इसका खुलासा मतलब यह है कि अज्ञानी लोग तो कामों में आसक्त होकर यानी कर्मों में मोह रखकर काम करते हैं, किन्तु ज्ञानियों को कर्मों में मोह न रखकर, लोगोंको शिक्षा देने के लिये, कर्म करना चाहिये, जिस से धर्म-मार्ग चलता रहे और लोक मर्य्यादा बनी रहे।

हे अर्जुन! जिन अज्ञानी लोगों का मन काम में फँसा हुआ है उनका मन ज्ञानवानों को काम से हरगिज़ न फेरना चाहिये। उन को उचित है, कि आप काम करें और उन को उपदेश देकर उन से भी कर्म करावें।

खुलासा यह है, कि ज्ञान-योगी मनुष्य को कर्मों में फँसे हुए लोगोंको आत्मज्ञानका उपदेश देकर, उनका दिल कामसे न फेरना चाहिये; बल्कि वह आप, कर्मों में मोह न रखकर, काम करे और दूसरोंसे भी करावे। क्योंकि यदि कर्मों में फँसे हुए लोगों का दिल काम से हट गया और उनको आत्म-

ज्ञान भी न हुआ तो वही मसल होगी कि 'दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम'। वे बिचारे धोबीके कुत्तेकी तरह घर और घाट कहीं के न रहेंगे।

सारे काम प्रकृति के सत्व, रज और तम,—इन तीन गुणों द्वारा होते हैं ; किन्तु जिस का आत्मा अहङ्कार से मूढ़ हो गया है वह समझता है :—"मैं कर्त्ता हूँ।"

लेकिन जो शख्स सत्व आदि गुण और उन के कर्मों के विभाग को जानता है, वह यही समझता है कि सत्व आदि गुण स्वयं काम करा रहे हैं और इसीलिये वह उनमें आसक्त नहीं होता।

पहिले भगवान्‌ने कहा था कि जो अज्ञानी मनुष्य काममें आसक्त हैं, उन्हें ज्ञानी कामसे बन्द न करे ; बल्कि आप काम करे और उनसे भी करावे। इस पर यह विचार उठता है, कि यदि ज्ञानी भी अज्ञानीके समान काम करेगा तो ज्ञानी और अज्ञानी मे क्या फर्क रहेगा? इसी सन्देह के निवारण करने के लिये भगवान् ने कहा है, कि प्रकृति इन्द्रियोंके ज़रियेसे आप काम कराती है; आत्मा कुछ नहीं करता है ; किन्तु जो मूर्ख हैं, जिनकी मति अहङ्कारसे मारी गई है, वे समझते हैं कि सब काम हमही करते हैं ; किन्तु, वास्तवमें, वे कुछ भी नहीं करते। प्रकृति ही सब कुछ कराती है। अज्ञानियोंकी इस भूल का कारण यही है, कि वे लोग इन्द्रियों को आत्मा समझते हैं ; किन्तु ज्ञानी लोग इन्द्रियों से आत्मा को जुदा समझते हैं और प्रकृति द्वारा इन्द्रियों से कराये हुए कामको अपना किया काम नहीं समझते यानी अपने तईं कर्मों से अलग समझते हैं। जो लोग इन्द्रियों और कर्म से अपने तईं अलग समझ कर, तत्व को जानते हैं वेही तत्वज्ञानी हैं। सारांश यह है, कि तत्वज्ञानी प्रकृति द्वारा इन्द्रियोंको कर्म करती हुई समझते हैं। इन्द्रियोंके कर्मोंको अपना किया हुआ नहीं समझते। लेकिन अज्ञानी इन्द्रियोंके कामोंको अपना समझते हैं।

* हे अर्जुन ! सब कर्मों को मुझ पर छोड़ कर, आत्मा में चित्त लगा कर, आशा और अहङ्कार को त्याग कर, शोक सन्ताप से रहित हो कर, युद्ध कर ।

इसका खुलासा मतलब यह है, कि श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तुम अपने क्षत्रिय-स्वभाव के अनुसार युद्ध करो। मन में ऐसा मत समझो कि मैं युद्ध करता हूँ; बल्कि यह समझो, कि मैं भगवान् के आधीन होकर जो वह कराते हैं सो करता हूँ। न मेरा यह काम है और न मैं इसका करनेवाला हूँ। साथ ही, यह आशा भी मत करो कि मुझे इस से यह फल मिलेगा। न अपने भाई बन्धु इष्ट मित्र और सम्बन्धियों के मरने का शोक सन्ताप ही मन में रक्खो।

जो मनुष्य मेरे इस उपदेश पर सदा विश्वास रख कर चलते हैं और इस में दोष नहीं निकालते हैं, वे कर्म-बन्धन से छुटकारा पाजाते हैं।

जो मनुष्य मेरे उपदेश की बुराई करते हैं और मेरी शिक्षानुसार नहीं चलते हैं, उन हिये के अन्धों और अज्ञानियों को नष्ट हुए समझो।

उपरोक्त दोनों श्लोकों से, श्रीकृष्णने उपदेश मानने और न मानने-वालों के हानि लाभ बताये हैं। उन्हों ने कहा है, कि जो मनुष्य मेरे उपदेश पर सदा विश्वास और श्रद्धा से चलेंगे और उसमें ऐबजोई या नुकता-चीनी न करेंगे, वे कर्म करते करते ही कुछ दिनों में कर्म मुक्त हो जायेंगे; किन्तु जो मेरे मत में दोष निकालेंगे और उसके अनुसार न चलेंगे, वे अज्ञानी, मन्दमति अज्ञानताके गढ़े में पड़े पड़े किसी काम के न रहेंगे और सदा कर्मों की बेड़ियों में फंसे रहेंगे।

ज्ञानी मनुष्य भी अपनी प्रकृति—स्वभाव—के अनुसार

चलता है; समस्त प्राणी प्रकृति के अनुसार चलते हैं। इन्द्रियों के रोकने से क्या होगा?

अगर कोई शङ्का करे, कि जब इन्द्रियों के वश करने और इच्छा के त्यागने सेही सिद्धि होती है तब सब संसार ही ऐसा क्यों न करे? । इस शङ्काके दूर करने के लिये, भगवान् कहते हैं कि ज्ञानीसे ज्ञानी भी अपनी प्रकृतिके अनुसार काम करता है। प्रकृति बलवान है। जब ज्ञानी का ही प्रकृति—स्वभाव—पर वश नहीं चलता तब बेचारे अज्ञानियों को क्या दोष है? समस्त जगत् को ही अपनी प्रकृतिके अनुसार चलना पड़ता है। स्वभाव या प्रकृति के मुकाबले में इन्द्रियों को कोई रोक नहीं सकता।

हरेक इन्द्रिय को अपने २ अनुकूल विषय में प्रेम और प्रतिकूल विषय में द्वेष है। राग द्वेष के वशीभूत होना ठीक नहीं हैं; क्योंकि राग और द्वेष ही मोक्ष में विघ्न करने वाले हैं।

इसका खुलासा यह है, कि कोई इन्द्रिय किसी चीज को चाहती है और किसीको नहीं, यानी किसी चीज़से उसे प्रेम होता है और किसीसे विरक्ति। मतलब यह है कि हरेक इन्द्रिय अपनी अनुकूल वस्तुसे प्रेम करती है और प्रतिकूलसे वैर करती है। इन्द्रियों का राग और द्वेषके आधीन होना अथवा किसी चीज से प्रेम करना और किसी से नफरत करना, मोक्षके रास्तेमें विघ्न कारक है। यद्यपि राग और द्वेष स्वभाव सिद्ध हैं; तथापि इनके वशीभूत न होना ही भला है। हे अर्जुन! तुम में जो इस समय दयाभाव पैदा हो गया है उसे छोड़ो और युद्ध करो।

श्लोक

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

पराये सर्वगुण सम्पन्न धर्मसे अपना गुणहीन धर्म भी अच्छा है। अपनेही धर्म में मरना भला है; क्योंकि पराया धर्म भयकारी है।

मनुष्य के चित्त में जब राग द्वेष पैदा होता है तब उसे अपना धर्म बुरा और पराया धर्म भला लगता है। अर्जुन ने जब अपने रिश्तेदारोंको देखा, तब उसे उनकी तरफ़ से मोह हुआ; अथवा यों कह सकते हैं कि नेत्र इन्द्रियको राग उत्पन्न हुआ। तब अर्जुन कहने लगे कि मैं अपना क्षत्रिय धर्म छोड़ दूंगा और भीख माँग खाऊँगा; यानी युद्ध न करूँगा चाहे भीख ही क्यों न माँगनी पड़े। इसी पर, श्रीकृष्ण ऊपर कह आये हैं कि इन्द्रियों का राग द्वेष के वश मे होना अनुचित है और फिर कहते हैं कि राग द्वेष के आधीन होकर अपना धर्म छोड़ना और पराया धर्म ग्रहण करना ठीक नहीं है। तुम क्षत्रिय हो। युद्ध करना तुम्हारा धर्म है। अगर तुम अपने क्षत्रियोचित धर्म को छोड़ दोगे तो निस्सन्देह नरक में जाओगे और जो अपने ही धर्म का काम करते हुए प्राणत्याग करोगे तो मोक्षपद पाओगे। यहाँ श्रीकृष्ण अर्जुन को इन्द्रियों के स्वाभाविक दोष, राग द्वेष से हटा कर उस के क्षत्रिय-धर्म मे लगाते हैं।

उपरोक्त बात सुनकर अर्जुनने पूछा :—

हे कृष्ण! यह मनुष्य पाप करना नहीं चाहता; तो भी किस के ज़ोर देने से—किसकी प्रेरणा से—पाप-कर्म करने लगता है? ऐसा मालुम होता है मानो कोई इस से ज़बरदस्ती पाप कराता है।

अर्जुन ने श्रीकृष्ण का उपदेश सुनकर कहा कि आप कह चुके हैं कि राग द्वेष के आधीन न होना चाहिये। परन्तु, मैं आप से यह पूछता हूँ कि ज्ञानी चाहे जो इन सब बातों को जानता समझता है और ज्ञान-बल से

काम क्रोधको रोककर भी विषयों में फंस जाता है और पाप करने लगता है, इससे ऐसा ज्ञान पड़ता है कि मनुष्यसे कोई, उसकी इच्छा पाप-कर्मों में न होने पर भी, ज़बरदस्ती पाप कराता है। हे कृष्ण ! वह पाप-कर्मों में प्रेरणा करनेवाला, विषयासक्त होने के लिये मनुष्य को उकसानेवाला, कौन है ?

हे अर्जुन ! वह काम है, वह क्रोध है जो रजोगुण से पैदा हुआ है। काम सब कुछ खाजाने पर भी नहीं अघाता ! वह बड़ा पापी है। इस जगत् में काम ही हमारा शत्रु है।

अर्जुनने भगवान्से यह पूछा था कि मनुष्य की इच्छा न होनेपर भी कौन उस को ज़बरदस्ती पाप-कर्म में लगाता है। उसके जवाब में भगवान् कहते हैं, कि हे अर्जुन ! मनुष्य को पापों में लगानेवाला और ज़बरदस्ती विषयोंमें फंसानेवाला "काम" है। काम का सीधा सरल अर्थ "इच्छा" है। यह इच्छा जगत् को अपने आधीन रखती है। जब इस इच्छा के विरुद्ध काम होता है या इच्छानुसार मतलब नहीं बनता अथवा इच्छानुसार पदार्थ या भोग की वस्तुएं नहीं मिलतीं, तब यह इच्छा "क्रोध"में बदल जाती है। इस "इच्छा" के पेट की कुछ थाह नहीं है। इस के पेट में चाहे जितना भरे जाओ, यह कभी नहीं अघाती। अर्थात् इसे ज्यों ज्यों भोग भोगने को मिलते हैं त्यों त्यों इसकी भूख बढ़ती ही जाती है। हम देखते हैं, कि जिस मनुष्य को पेट भर भोजन नहीं मिलता, वह पहिले पेट भर भोजन चाहता है। जब उसे उसको इच्छानुसार रूखा सूखा पेट भर भोजन मिलने लगता है, तब वह अच्छे अच्छे स्वादिष्ट पदार्थों की इच्छा करता है जब वह भी मिल जाते हैं तब वह महल मकान गाडी घोड़े आदि की इच्छा करता है। और जब वह इच्छा भी पूरी होजाती है तब वह राजकी इच्छा करता है। राज्य मिल जानेपर, चक्रवर्ती राजा होना चाहता है। चक्रवर्ती राजा होनेपर स्वर्ग

का राज्य चाहता है। मतलब यह है, कि ज्यों ज्यों इच्छानुसार भोग मिलते जाते हैं त्यों त्यों इच्छा बढ़ती जाती है। यही इच्छा जब पूरी नहीं होती; तब इच्छा पूरण करने के लिये मनुष्य अनेकानेक पाप करने लगता है। जिस के ऊपर "इच्छा" का राज्य नहीं है, जो इच्छा के आधीन नहीं है, वही मनुष्य ज्ञानी है, वही मनुष्य श्रेष्ठ है। खूब सोच विचार कर देख लो, कि इच्छाही मनुष्य की परम वैरिणी है। यही मनुष्य को मोक्ष मिलने की राह में कण्टक स्वरूप है। श्री कृष्ण के कहने का सारांश यही है, कि केवल कामना—इच्छा—ही मनुष्य से ज़ोर देकर पाप कराती है।

जिस तरह धूएँ से आग ढकी रहती है; धूल से दर्पण ढका रहता है और झिल्लीसे गर्भ ढका रहता है; उसी तरह 'ज्ञान' भी कामना—इच्छा—से ढका रहता है।

हे कुन्तीपुत्र! इस "काम" ने ज्ञानियों की बुद्धि पर परदा डाल रक्खा है। यह उनका सदा दुश्मन है। यह अग्नि की तरह कभी नहीं अघाता।

उपरोक्त दोनों श्लोकों से श्री कृष्ण अपनी पहली बातकी पुष्टि करते हैं और कहते हैं कि सब अनर्थों की मूल "कामना" ही है। जिस तरह आग में जितना ईंधन डालो उतना ही वह और भस्म कर सकती है। जितना ईंधन उसे मिलेगा उतनी ही शक्ति बढ़ती जायगी। यही हाल इच्छा का है। एक इच्छा पूरी होगी तो दूसरी दस इच्छाएँ आकर घेर लेंगी। मनुष्य चाहे जितना विषय भोग क्यों न भोग ले, उसकी इच्छा उसकी ओरसे कदापि कम न होगी, वरन बढ़ती ही जायगी। अगर इच्छा पूर्ण नहीं होती तो दिलमें दुःख होता है। अपनी विषय-वासना पूरी करनेके लिये, मनुष्य घोर पाप करने पर उतारू हो जाता है। इच्छा के कारण मनुष्य को पैंड पैंड पर शोक

सन्ताप के वशीभूत होना पड़ता है। इच्छा ही की प्रेरणा से मनुष्य बन्धन में फँसता है। अगर मनुष्य इच्छा के आधीन न रहे तो उसके लिये मोक्ष सहज में मिल जावे। इस इच्छा ने मनुष्य के "ज्ञान" पर परदा डालरक्खा है। अगर मनुष्य इच्छा रूपी गर्द को झाड़ पोंछ कर साफ कर दे ; तो उसे ज्ञान का चांदना दिखने लगे और वह ज्ञान रूपी उजियालेमें सत् और असत् कर्मको देखकर अपनी भलाई कर सके।

इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि,—ये तीनों "इच्छा"के रहने के स्थान हैं। 'इच्छा' इन्हीं तीनोंके द्वारा बुद्धिको ढककर, शरीर के भीतर रहनेवाले प्राणी को भुलावे में डालती है।

अबतक श्रीकृष्ण ने अर्जुन को वह शत्रु बताया था जो मनुष्य की इच्छा न होने पर भी, उसे लाचार करके, उससे पाप-कर्म कराता है। जब किसी शत्रुको जीतना होता है तब उसके रहने के स्थान का पता लगाना होता है। इसीलिये, पहिले श्रीकृष्ण "काम" नामक शत्रु के रहने का स्थान बताते हैं और आगे के श्लोक से उस के जीतने का उपाय बतलावेंगे, भगवान कहते हैं कि मनुष्य इन्द्रियों द्वारा विषयों को भोगता है, मन से सङ्कल्प करता है, बुद्धि से निश्चय करता है कि मैं फलाँ काम करूँगा। इसलिये "कामना" इन तीनोंके सहारे से ही अपना काम करती है। यही तीनो "कामना" यानी इच्छाके रहने की जगह है। इन्हीं तीनोंके बल से, मदद से, कामना ज्ञान को ढकलेती है और मनुष्य को मोहित करती है।

इसलिये, हे अर्जुन ! सबसे पहिले, तू इन्द्रियों को रोक और इस ज्ञान तथा बुद्धि के नाशक, पापी "काम" को मार डाल।

सारांश यह है, कि श्रीकृष्ण अर्जुनको इन्द्रियों के रोकने और "इच्छा" के

त्याग देने की सलाह देते हैं। क्योंकि "इच्छा" आत्मज्ञान और विज्ञान दोनों को नाश करनेवाली है।

हे अर्जुन! शरीर से इन्द्रियाँ श्रेष्ठ हैं; इन्द्रियों से मन श्रेष्ठ है; मन से बुद्धि श्रेष्ठ है; बुद्धि से भी परे और श्रेष्ठ आत्मा है।

इस श्लोक से श्रीकृष्ण यह दिखाते हैं, कि इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इनसे आत्मा परे है, जुदा है। इन्द्रियाँ तो प्रबल हैं ही, मन उनसे भी ज़ोरावर है। बिना मन चले इन्द्रियाँ कुछ नहीं कर सकतीं और मनसे भी बुद्धि बलवान है; क्योंकि वह मन के विचार को रोकना चाहे तो रोक सकती है। आत्मा इन सबसे अलग है। इसी आत्मा को "काम" भुलावे में डालता है।

हे महाभुज अर्जुन! इस भाँति आत्मा को बुद्धि से भी परे जानकर और मन को निश्चल करके, इस 'कामना' रूपी अजेय शत्रुको नाश कर डाल।

इसका खुलासा यह है, कि बुद्धि तो इन्द्रियों और उनके विषयोंसे विकार युक्त हो जाती है; किन्तु आत्मा निर्विकार है और वह बुद्धि से अलग है। मनुष्य बुद्धि से इस बातका निश्चय कर ले कि आत्मा सब से श्रेष्ठ और सब से अलग है फिर मन को चलायमान न करे और बड़ी कठिनता से जीते जाने योग्य काम—इच्छा—को नाश कर डाले।

तीसरा अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले:—यह कर्मयोग पहिले मैंने सूर्यसे कहा था; सूर्यने मनुसे कहा; मनुने इक्ष्वाकुसे कहा।

यह कर्मयोग इसी तरह पीढ़ी दर पीढ़ी चला आया। इसे राजर्षि जानते थे। हे परंतप! वही कर्म-योग, बहुत समय बीत जाने पर, संसारसे नष्ट हो गया।

वही पुराना योग आज मैंने तुझसे कहा है; क्योंकि तू मेरा भक्त और मित्र है। यह बड़ा भारी रहस्य है।

इन तीनों श्लोकोंमें श्रीकृष्ण यह कहते हैं, कि हे अर्जुन! तू यह मत समझना कि यह योग मैंने तेरा उत्साह बढ़ाने या तुझे युद्धमें लगानेके लिये आज ही कहा है। यह योग बहुत प्राचीन कालसे चला आता है। मैंने इसे पहिले कल्पके आदिमें, सूर्यवंशके मूल पुरुष सूर्यसे कहा था। सूर्यने अपने बेटे मनुको सिखाया और मनुने इसे अपने पुत्र इक्ष्वाकुको बताया। इसी तरह यह योग एकसे दूसरेने और दूसरेसे तीसरेने सीखा। अब, बहुत काल बीत जानेसे, उसे संसारमें जानने वाला कोई न रहा। उसी पुराने योगको मैंने आज तुझसे कहा और तुझसे इसलिये कहा कि तू मेरा प्रेमी और मित्र है।

अर्जुन बोला:—हे कृष्ण! सूर्यका जन्म पहिले हुआ

था और आपका जन्म अब हुआ है ; कहिये, मैं किस तरह समझूँ कि आपने यह कर्मयोग शुरूमें सूर्यसे कहा था ?

श्रीकृष्ण भगवान् बोले:—हे अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुतसे जन्म हो चुके हैं। मैं उन सब जन्मोंकी बात जानता हूं लेकिन तू नहीं जानता।

इन दोनों श्लोकोंका खुलासा मतलब यह है, कि जब श्रीकृष्णने कहा कि मैंने यह कर्मयोग आदि कालमें सूर्यसे कहा था ; तब अर्जुनके मनमें सन्देह हुआ कि कृष्णने तो इस समयमे जन्म लिया है और सूर्यको जन्म लिये तो लाखों वर्ष बीत गये। यह किस तरह सम्भव है कि आजके कृष्णने लाखों वर्ष पहिले जन्म लेनेवाले सूर्यको कर्मयोगका उपदेश दिया हो ? अर्जुनको समझमें यह बात असम्भव सी जान पडी। अत: उसने कृष्णसे अपना शक दूर करनेके लिये प्रश्न किया। उसका सन्देह दूर करनेके लिये भगवान्ने कहा कि हे अर्जुन ! मैंने और तैंने अनेक बार जन्म लिये और देह छोड़ी। मेरी ज्ञान:शक्ति सदा बनी रहती है इसलिये मुझे अपने जन्मोंकी बात याद है, किन्तु तुम्हारी ज्ञान-शक्ति मेरी तरह अखण्ड नहीं है, तुम पर अज्ञानका पर्दा पड़ा हुआ है, इससे तुम अपने जन्मोंकी बात भूल गये हो।

श्रीकृष्णके उपरोक्त वचनोंसे दो बात सिद्ध होती हैं:—(१) यह कि जीव अविनाशी है और वह बारम्बार चोला बदलता है। पुराना चोला छोड़ कर जब नयेमें आता है तब पुराने चोलेकी बात भूल जाता है। भूल जानेका कारण यह है, कि जीवात्माके ऊपर अज्ञान अथवा अविद्याका परदा पड़ा रहता है ; इससे उसे अपने पहिले जन्मकी बात याद नहीं रहती ; (२) भगवान् भी अनेक बार जन्म या अवतार लेते हैं।

अब यहां शंका पैदा होती है कि भगवान् तो अजन्मा, या जन्म कर्मसे

रहित और अविनाशी हैं। उनका जन्म बारम्बार कैसे हो सकता है और उन्हें जन्म लेनेकी क्या ज़रूरत है? इन शङ्काओंका उत्तर श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं आगेके श्लोकोंसे देते हैं:—

यद्यपि मैं अजन्मा हूँ, अविनाशी हूँ और सब प्राणियोंका स्वामी हूँ; तथापि मैं प्रकृतिका सहारा लेकर जो मेरीही है, मैं अपनीही माया—शक्ति—से जन्म लेता हूँ।

खुलासा यह है, कि मैं जन्म रहित और अविनाशी स्वभाव हूं तथा कर्मके आधीन नहीं हूं। मैं सबका ईश्वर हूं, तथापि लोक-रक्षाके लिये अपनी ही सात्विकी प्रकृतिका आश्रय लेकर अपनीही इच्छासे अवतार लेता हूं।

श्लोक।

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥

हे भारत! जब जब धर्मकी घटती होती है और अधर्मकी बढ़ती होती है; तब तब मैं जन्म लेता हूँ।

सज्जन लोगोंके बचाने, दुष्ट लोगोंके नाश करने और धर्मको कायम रखनेके लिये, मैं युग युगमें जन्म लेता हूं।

खुलासा यह है, कि जो लोग अपने धर्म पर चलते हैं उनकी रक्षा करनेके लिये और जो अपना धर्म छोड़कर अधर्मके मार्ग पर चलते हैं उनको नाश डालनेके लिये तथा बढे हुए अधर्मका नाश करके, फिरसे प्रजाको धर्म-मार्ग पर चलानेके लिये मैं जन्म लेता हूं। मैं सब सृष्टिका पिता हूँ। पिताका काम है कि अपनी सन्तानको कुराहसे हटाकर सुराह पर लावे और जो उसके सन्मार्ग पर न चले उसे दण्ड दे। यों तोभी अपनी सारी सृष्टि—

अपनी बुरी भली सभी सन्तानोंको एकही नज़रसे देखता हूं ; परन्तु कुराह पर चलनेवालोंको सुराहपर न लाना, उन्हें खड्डे में पड़ने देना, एक नज़रसे देखना नहो है। मेरी किसीसे शत्रुता और किसीसे मित्रता नहीं है, तथापि पिताकी भांति भलोंकी रक्षा करना और दुष्टोंको दण्ड आदि देकर सुराह पर लाना मेरा काम है।

हे अर्जुन! जो मेरे अलौकिक जन्म और कर्मके तत्वको जानता है, वह देह छोड़ने पर, फिर जन्म नहीं लेता और मुझमें ही मिल जाता है।

खुलासा यह है कि जो शख्स मेरे ईश्वरीय जन्मके तत्वको जानता है, उसको शरीरका अभिमान नहो रहता, इसीसे वह फिर जन्म मरणके झगड़े से छूटकर मोक्ष पाजाता है।

प्रीति, भय और क्रोधको छोड़कर, मुझमेंही सब तरह मन लगाकर, मेरेही आश्रय रहकर और ज्ञान रूपी तपसे शुद्ध होकर, अनेक लोग मुझमें मिल गये हैं।

इसका खुलासा यह है, कि जो मनुष्य किसीसे मोह नहीं रखता, किसीसे भय नहीं रखता, किसी पर गुस्सा नहीं होता। माधही मुझ में ही मन रहता है; सब जगह और सब प्राणियोंमें मुझेही देखता है। हर तरह मेरेही आश्रय और भरोसे पर रहता है तथा ज्ञान रूपी तपसे पवित्र हो जाता है, वह मुझमेंही मिल जाता है यानी उसे फिर जन्म मरणके झंझटमें नहीं पड़ना होता।

मुझे जो लोग जिस तरह भजते हैं उनको उसी तरह फल देता हूँ। मनुष्य कोई सा मार्ग क्यों न पकड़ें, सब मेरेही मार्ग हैं।

अगर कोई शख्स शङ्का करे, कि भगवान् क्यों अपने आश्रय रहने वालों-को ही अपने रूपमें मिलाते हैं दूसरोंको क्यों नहीं मिलाते। इसीके लिये भगवान्ने कह दिया है, कि मनुष्य चाहे मुझे इच्छा रखकर भजे और चाहे इच्छा त्यागकर, मैं दोनों तरह ही फल देता हूं। जो मुझे सकाम यानी मनमें इच्छा रखकर भजते हैं, उन्हें धन पुत्र आदि फल देता हूं और जो मुझे निष्काम होकर यानी किसी भाँतिकी फलेच्छा न रखकर भजते हैं, उन्हें मैं अपने स्वरूपमें मिला लेता हूं। उनको जन्म मरणके झगड़े से छुटा देता हूं। सकाम—इच्छा रखकर—भजने वालोंकी वनिस्वत निष्काम—इच्छा न रखकर—भजनेवाले श्रेष्ठ हैं ; अत: उन्हें परमपद देता हूं ; लेकिन सकाम—फलाभिलाषा रखकर—भजने वाले अपने भजनका प्रतिफल चाहते हैं और उनका भजना निष्काम होकर भजने वालोंसे नीचे दरजेका हैं ; अत: उन्हें उनका चाहा हुआ वैसाही फल देता हूं। दूसरी बात यह है, कि मनुष्य मेरे पास टेढ़ी सीधी चाहें जिस राहसे पहुंचनेका उद्योग करें, मैं उन्हें अवश्य मिलता हूं ; क्योंकि सभी मनुष्य मेरीही राह पर चलते हैं।

इस दुनिया में, जो लोग कर्मोंकी सिद्धि चाहते हैं, वे देवताओं को पूजा किया करते हैं ; क्योंकि इस मनुष्य-लोक में कर्मों को सिद्धि जल्दी होती है।

यहाँ यह शङ्का पैदा होती है, कि जो "मोक्ष" परमपद है, सब से ऊंचा स्थान है, सभी लोग उस जन्म मरण के फन्दे से छुटानेवाली "मोक्ष" के लिये, परमेश्वरकी ही पूजा आराधना क्यों नहीं करते ? देवताओं की पूजा की क्या जरूरत है ?

संसार में दो तरह के आदमी हैं :—(१) सकाम ; (२) निष्काम। जो फल की चाहना रखते हैं, उन्हें "सकाम" कहते हैं ; और जो फलों की चाहना नहीं रखते, उन्हें "निष्काम" कहते हैं। अपनी पूजा का फल चाहनेवालों की संख्या अधिक है और किसी तरह का फल न चाहनेवालों

की संख्या बहुतही कम है। देवताओं के सन्तुष्ट करने से स्त्री, पुत्र और धन आदि सांसारिक अनित्य—हमेशा न रहनेवाले—पदार्थ जल्दी ही मिल जाते हैं, किन्तु साक्षात पूर्ण ब्रह्म शुद्ध सच्चिदानन्द आत्मा की पूजा करनेसे जो ज्ञान का उदय होता है, उस ज्ञान का फल "मोक्ष" बडी कठिनता से और देर में मिलती है। दूसरे, साधारण विद्या बुद्धि के मनुष्यों का मन ज्ञान में कम लगता है, क्योंकि ब्रह्मज्ञान के लिये बहुत सी विद्या, बुद्धि और विचार-शक्ति की जरूरत है। इसीलिये साधारण बुद्धि के लोग, हाथों हाथ फल पाने की इच्छा से, परमात्मा की आराधना छोड़ कर, इन्द्र, अग्नि और सूर्य आदि देवताओं की आराधना किया करते हैं। ऐसे, फलों की इच्छा रखनेवाले, लोग साकार देवताओंकी पूजा करके, अनित्य—हमेशा न रहनेवाले—स्त्री, पुत्र और धन वगैर की कामना रखते हैं और उन्हें वह शीघ्रही मिल भी जाते हैं, इसीलिये वे ब्रह्मज्ञान को, जिससे नित्य—हमेशा रहनेवाला—परमपद मिलता है, अच्छा नहीं समझते। एक बात और भी है, कि "मोक्ष" चाहनेवालोंको स्त्री, पुत्र, धन आदि को छोडकर वैराग्य लेना पडता है, किन्तु देवताओं को भज कर, स्त्री पुत्र आदि की अभिलाषा रखनेवालोंको इनके छोडने की आवश्यकता नहीं होती। वास्तवमें, मोक्ष ही सब से ऊँचा और सब से श्रेष्ठ फल है; किन्तुउसके पाने का मार्ग कठिन है। जो तुच्छ सांसारिक पदार्थों की इच्छा रखते हैं, उन्हें वैसेही तुच्छ पदार्थ मिलते हैं, किन्तु जो, कुछ भी अभिलाषा न रखकर, परमात्मा में ध्यान लगाते हैं उन्हें "मोक्ष" मिलती है।

हे अर्जुन! मैंने, गुण और कर्मोंके विभाग के अनुसार, चार वर्ण पैदा किये हैं; यद्यपि मैं उनका कर्त्ता हूँ, तथापि मुझे अकर्त्ता और अबिनाशी समझ।

कृष्ण कहते हैं, कि मैंने जिस जीव में जैसा गुण देखा, उसके उसी गुणके अनुसार उसके कर्म नियत कर दिये और उसका वैसा ही नाम रख

दिया। मैंने जिस जीव में सतोगुण की प्रधानता देखी, उसके शम दम आदि कर्म नियत कर दिये और उसका नाम "ब्राह्मण" रख दिया। जिसमें सत्व गुण अप्रधान यानी गौण रूप से और रजोगुण प्रधान रूप से देखा, उसके प्रजा-पालन, पृथ्वी-रक्षा, युद्ध करना आदि कर्म मुकर्रर कर दिये और उसका नाम "क्षत्रिय" रख दिया। जिसमें रजोगुण गौण रूप से और तमोगुण प्रधान रूप से देखा, उसके खेती, पशुपालन, वाणिज्य व्यौपार आदि कर्म नियत कर दिये और उसका नाम "वैश्य" रख दिया। जिसमें केवल तमोगुण की प्रधानता देखी, उसके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन वर्णों की सेवा करनेका काम नियत किया और उसका नाम "शूद्र" रक्खा।

अगर कोई शङ्का करे कि भगवान्‌ने चार वर्ण चार तरह के बनाकर पक्षपात किया, किसी को ऊँचा बनाया और किसी को नीचा, किसी को निष्काम और किसी को सकाम बनाया। अगर भगवान् को पक्षपात नहीं था, अगर उनकी नजरमें सबही समान थे, तो उन्होंने चार वर्ण चार तरह के क्यों बनाये? सबको समान न बनाने का दोष भगवान् पर ही है। मनुष्यों के सकाम और निष्काम होनेका कारण भगवान् ही हैं। भगवान् इस शङ्का के निवारण करने के लिये, यह काफी जवाब ऊपर दे चुके हैं। कि मैंने जिसमें जैसा गुण देखा, उसके वैसेही कर्म मुकर्रर किये। यद्यपि मैं चार वर्ण करनेवाला हूँ, तथापि मैं कुछ भी कर्म करनेवाला नहीं हूँ, क्योंकि मैं अविनाशी हूँ, मुझमें किसी तरह का विकार नहीं होता। मैं सब कुछ करके भी "अकर्त्ता और निर्व्विकार" हूँ।

न तो कर्मही मुझ पर असर करते हैं और न मुझे कर्म-फल की इच्छा ही होती है। जो मुझे इस तरह समझता है, वह कर्मोंके बन्धन में नहीं पड़ता।

सभी जानते हैं, कि ईश्वर अकर्त्ता—निर्व्विकार—है, अर्थात् ईश्वर कुछ नहीं करता। ईश्वर पूर्णकाम है; उसे कर्म-फलकी इच्छा नहीं होती।

लेकिन ज्ञानी ईश्वर को अकर्त्ता, कर्मों में लिप्त न होनेवाला और कम-फल न चाहनेवाला, समझने से मनुष्यको मोक्ष नहीं मिल सकती। मनुष्य को मोक्ष उसी हालत में मिल सकती है, जब वह स्वयं अपने आत्मा को "अकर्त्ता" और "निर्व्विकार" समझे। इसका खुलासा यह है, कि जो शख्स यह समझता है, कि मुझे कर्म नहीं बांधते, मैं कुछ नहीं करता, मुझे कर्मों के फल की अभिलाषा नहीं है, वह शख्स कर्म-बन्धन में नहीं फंसता, उसको जन्म मरण का झंझट नहीं भोगना पड़ता यानी उसको मोक्ष होजाती है।

हे अर्जुन! ऐसा समझ कर ही, पहिले मोक्ष चाहनेवालोंने कर्म किये; इसवास्ते तुम भी पूर्व्व पुरुषों की तरह कर्म करो।

द्वापर में, राजा ययाति, यदु आदि हुए। यह सब मोक्ष की इच्छा रखते थे। त्रेतामें जनक आदि राजा हुए, वे भी मोक्ष की अभिलाषा रखते थे। उनसे पहिले, सतयुग में, जो राजा हुए वे भी मोक्ष लाभ करना चाहते थे। उन सबने सन्यास नहीं लिया यानी कर्म नहीं छोड़े, तोभी मोक्ष पागये। इसका कारण यह है, कि पूर्व्वोक्त राजा लोग अपने वर्णाश्रम धर्मके सब कर्म तो करते थे, किन्तु वे अपने लिये उन किये हुए कर्मों का करनेवाला और भोगनेवाला नहीं समझते थे। जो मनुष्य कर्म करके भी, अपने तईं कर्मों का करनेवाला और उनका भोगनेवाला नहीं समझता है वह कर्मों के बन्धनमें नहीं बंधता; इसीलिये पूर्व्वोक्त राजा कर्म-बन्धन में न फंसे और परमपद पागए। कर्म किये बिना अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होती। उन पूर्व्वोक्त राजाओं ने अन्तःकरण शुद्ध करने के लिये या दुनिया की भलाई के लिये काम किया। हे अर्जुन! उनकी ओर देखकर तुम भी कर्मकरो। अगर तुमको ब्रह्मज्ञान होगया है तो दुनिया की भलाई के लिये कर्म करो; यदि ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ है, तो अपने अन्तःकरण की शुद्धि के लिये कर्म करो। हे अर्जुन। मेरे कहने का सारांश यह है, कि तुम पहिले मोक्ष चाहनेवालों को

देखकर, कर्म अवश्य करो ; यदि तुम अपने को "कर्त्ता और भोक्ता" न समझोगे तो कर्म करने पर भी तुम्हारी मोक्ष हो जायगी।

क्या कर्म है और क्या अकर्म है यानी कौनसा काम करना चाहिये और कौन सा न करना चाहिये, इस विषयमें बुद्धिमानों की बुद्धि भी चक्कर खाने लगती है ; इसवास्ते मैं तुझसे उस कर्मको कहता हूँ, जिसके जानने से तू दुःख से छूट जायगा।

क्या कर्म है और क्या अकर्म है, इसका जानना, वास्तव मे, कठिन है। कितने लोग कहते हैं, कि जिस कामके करने की आज्ञा वेद और धर्मशास्त्रोंमें है वही 'कर्म' है और जिसकी आज्ञा उनमें नहीं है वह 'अकर्म' है। बहुत से यह कहते हैं, कि धर्मशास्त्रोंमें जिस कामके करने की आज्ञा है वह 'कर्म' है और शास्त्रों मे लिखे हुए कर्मों के छोड देने को 'अकर्म' कहते हैं। कोई कोई यह कहते हैं कि शरीर और इन्द्रियों का जो व्यापार है यानी शरीर और इन्द्रियाँ जो कुछ करती हैं, उसी को 'कर्म' कहते हैं। इन्द्रियों का सब व्यापार बन्द करके, चुप चाप बैठ जानेको 'अकर्म' कहते हैं। मतलब यह है, कि कर्म और अकर्मके विषय में बडे बडे पण्डित और ज्ञानियों में भी मतभेद है, क्योंकि कर्म और अकर्म का ज्ञान होना कठिन है। आगे, श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं अर्जुन को कर्म और अकर्म का खुलासा भेद समझाते हैं।

कर्म को जानना, विकर्म को जानना और अकर्म को जानना ज़रूरी है ; क्योंकि कर्म-मार्ग बड़ा कठिन है।

मतलब यह है, कि शास्त्र में जिस काम के करने की आज्ञा है उसे 'कर्म' कहते हैं ; लेकिन उसका जानना भी ज़रूरी है ; क्योंकि

बिना जाने मनुष्य शास्त्रानुसार कर्म कर नहीं सकता। धर्मशास्त्र में, जिस कामके करने की मनाही है उसे 'विकर्म' कहते हैं; लेकिन उसका भी जानना आवश्यक है; क्योंकि बिना जाने मनुष्य न करने योग्य कर्मों को किस तरह छोड़ेगा? तत्वज्ञान होजाने पर, सब इन्द्रियों के व्यापार को बन्द करके, चुपचाप बैठ जाने को 'अकर्म' कहते हैं। अकर्म को भी अच्छी तरह जानना जरूरी है। सारांश यह, कि कर्म, विकर्म और अकर्म,—ये तीन भाँतिके कर्म हुए। इन तीनों का असली मतलब जानना कठिन है; इसलिये भगवान् आगे तीनों तरह के कर्मों का असल भेद समझाते हैं।

जो कर्म में अकर्म देखता है और अकर्म में कर्म देखता है, वह मनुष्यों में बुद्धिमान है; वह सब कर्म करता हुआ भी युक्त योगी है।

पहिले लिख आये हैं, कि प्रकृति के सत्व, रज और तमोगुण के कारण, इन्द्रियाँ अपना अपना कर्म करती ही रहती हैं; इन्द्रियों के कर्मों को कोई रोक नहीं सकता; इन्द्रियों का काम चलता ही रहता है। जो मनुष्य इन्द्रियों के काम को आत्माका काम नहीं समझता यानी इन्द्रियों के काम को इन्द्रियों का ही समझता है; अथवा यों समझता है कि यह कर्म जो इन्द्रियाँ कर रही हैं, इनका करनेवाला आत्मा नहीं है, वही कर्म मे अकर्म देखनेवाला है। यह पहिली अवस्था की बात है। सिद्धान्त यह है, कि आत्मा कुछ नहीं करता। यही बात दूसरे अध्यायके २० वें और २४ वें श्लोक में समझा दी गई है और आगे फिर भी समझाई जायगी। मन का स्वभाव पड़ गया है, कि वह कुछ कर्म न करनेवाले आत्मा को भी काम करता हुआ समझता है; लेकिन काम करना आत्माके स्वभाव के विरुद्ध है; यानी आत्माका स्वभाव ही कर्म करने का नहीं है। कामका सम्बन्ध देहसे है; लेकिन मनुष्य आत्मा को वृथा कर्ममें लपेटता है और समझता है "मैं अमुक कामका करनेवाला हूँ, यह मेरा किया हुआ काम है, उस कर्म का

फल मुझे मिलेगा।" इसीतरह जब मनुष्य को ज्ञान हो जाता है और वह कर्म करना छोड़ देता है तब कहता है, कि "मैंने (आत्माने) अब कर्म छोड़ दिया है, मैं आजकल कुछ नहीं करता, मैं शान्त और सुखी हूँ, अथवा यों कहता है कि अब मैं कुछ भी काम न करूँगा, ताकि मुझे बिना दिक्कत और काम करने के सुख मिले।" लेकिन ऐसी बात कहने या मनमें विचारने-वाले का यह झूठा खयाल है। वास्तवमें, आत्माने न तो कर्म करना छोड़ाही और न वह सुख ही भोगेगा। अगर कर्मों का त्याग किया है तो देह और इन्द्रियोंने किया है। आत्मा न तो पहिले कर्म करता ही था और न अब उसने कर्म छोड़े ही हैं। देह और इन्द्रियाँ ही काम करती थीं और अब कुछ ज्ञान होजाने से उन्होंने ही कर्म करना छोड़ा है। जिस तरह मनुष्य काम करने का दोष आत्मा पर वृथा लगाता है, उसी तरह काम बन्द करने का दोष भी आत्मा पर वृथा ही लगाता है। मतलब यह है, कि न तो आत्मा कभी कर्म करता ही है और न कभी कर्म छोड़ता ही है। देह और इन्द्रियाँ ही काम करती हैं और कुछ ज्ञान होनेपर वे ही कर्म छोड़ती हैं। काम करते हुए, आत्मा को कामों का कर्त्ता न समझना ही 'कर्म में अकर्म" देखना है। काम छोड़ देनेकी हालत में, आत्मा को कर्म त्याग करनेवाला न समझना ही "अकर्म में कर्म" देखना है।

यों तो कर्म सभी के लिये कर्म है। कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म कौन देख सकता है? कर्म कभी अकर्म नहीं हो सकता और न अकर्म ही कर्म हो सकता है। कर्म सदा कर्म ही है, वह किसी को भी और तरह नहीं दीख सकता। ऐसे विचार मन में उठते हैं। किन्तु मनुष्य को बहुत ही जलदी भ्रम होता है, उसे और का और दीखने लगता है। जहाज़ में सवार मनुष्य चलते हुए जहाज़ या नाव से, किनारे के वृक्षोंको चलते हुए देखता है; किन्तु, वास्तव में, यह उसकी भ्रान्ति और भूल है। चलता जहाज़ है और समझता है वृक्षों को। इसीतरह मनुष्य की देह और इन्द्रियाँ तो काम

बिना इच्छा और सङ्कल्प के काम करता है, जिस के कर्म, ज्ञान रूपी अग्नि से नाश हो गये हैं, जो पहिले कहे हुए कर्म और अकर्म के तत्व को समझ गया है, उसे ब्रह्मज्ञानी विद्वान् लोग "पण्डित" कहते हैं।

ज्ञानी आदमी, किसी कामके शुरु करने के पहले, किसी तरह का सङ्कल्प नहीं करता और न उस काम से किसी प्रकार का फल भोगने की इच्छा करता है। ज्ञानी जो कर्म करता है वह स्वाभाविक तौर से या तो दुनिया की भलाई के लिये करता है या खाली अपनी देह कायम रखने के लिये करता है। वह किये हुए कामों को आत्मा के काम नहीं समझता और कोई हुए कामों से भी आत्मा का सम्बन्ध नहीं समझता। ऐसा मनुष्य सचमुच "पण्डित" है।

जो कर्म-फलों की इच्छा नहीं रखता, सदा सन्तुष्ट रहता है, किसीके आश्रय नहीं रहता,—वह चाहें कामों में भी लगा रहे; तथापि वह कुछ भी कर्म नहीं करता है।

जिसने कर्मों से सब तरहका सम्बन्ध छोड दिया है, जो देह और इन्द्रियों के कर्मों को आत्मा के कर्म नहीं समझता, जिसने कर्मों के फलों की इच्छा त्याग दी है, जो हमेशा सन्तुष्ट रहता है, जिसे इन्द्रियों के विषयों के भोगने की इच्छा नहीं है, जिसे इस जन्म या अगले जन्म के लिये किसी तरह की अभिलाषा नहीं है, जिसे अपने आत्मामें ही आनन्द मालुम होता है, जो आत्मा के सिवाय और किसी का आश्रय नहीं पकड़ता, जो संसार की भलाई या देहके कायम रखने के लिये ही काम करता है,—वह काम करता हुआ भी बिल्कुल काम नहीं करता, क्योंकि उसे ज्ञान है, कि आत्मा कुछ नहीं करता। संसार में, बिना कर्म किये, देहका कायम रखना भी असम्भव है और सब कर्मों को त्याग देना भी असम्भव है, अतः उपरोक्त विधिसे काम

करना, काम न करने के ही समान है। इस तरह काम करनेवाला सच्चा सन्यासी है।

जो किसी प्रकार की आशा नहीं रखता, जिसने अन्त:करण और शरीर को वश में कर लिया है, जिसने सब तरहके परिग्रह—विषय भोगनेके साधन धन वगैर:—छोड़ दिये हैं, वह मनुष्य शरीर के निर्वाह के लिये कर्म करता हुआ पापका भागी नहीं होता।

जिसे इस लोक और परलोकके किसी पदार्थको इच्छा नहीं है, जिसे स्वर्ग वगैर भी दरकार नहीं है जिसने तृष्णा को बिल्कुल ही त्याग दिया है, जिसने मन और इन्द्रियों को अपने अधीन कर लिया है, जिसने विषय भोगों के साधन धन दौलत महल, मकान, जमीन, जायदाद, स्त्री पुत्र आदि को छोड दिया है, अगर वह मनुष्य केवल शरीर कायम रखने के लिये कर्म करे, तो कर सकता है, ऐसे मनुष्य को शरीर निर्वाह मात्र के कर्म करने से पाप नहीं लगता। क्योंकि अगर मनुष्य रूखा सूखा अन्न न खायगा, फटे पुराने कपड़ों से शरीर न ढकेगा, तो उसकी काया काम न देगी, उस की विचार शक्ति घट जायगी या नष्ट हो जायगी, अत. ब्रह्म-विचार में विघ्न न होने देने के लिये, शरीर को कायम रखना जरूरी है। शरीर कायम रखने के लिये, शीत काल में मोटा झोटा कपड़ा पहिनना और नित्य थोड़ा बहुत रूखा सूखा अन्न खाना भी जरूरी है। इसलिये भगवान आज्ञा देते हैं, कि सब विषय भोगों की सामग्री छोड कर, शरीर-निर्वाह के लिये जरूरी जरूरी काम करने में हर्ज नहीं है।

बिना कोशिश के मिली हुई चीज पर सन्तोष कर लेनेवाला; सुख दु:ख, हर्ष विषाद, गर्मी सर्दी, मान अप-मान को समान समझनेवाला; किसी से ईर्षा द्वेष न

रखनेवाला : कार्य की सिद्धि और असिद्धि में समान रहनेवाला मनुष्य, काम करता हुआ भी, कर्म-बन्धन में नहीं पड़ता ।

वह मनुष्य जो दैव-योग से मिली हुई, बिना माँगे या बिना उद्योग से मिली हुई, चीज़ से राजी रहता है ; जिस पर गर्मी सर्दी, मान अपमान, सुख दुःख, खुशी और रञ्ज वगैर: द्वन्दों का असर नहीं पड़ता; यानी जिसे गर्मी सरदी आदि द्वन्द दुःखी नहीं करते ; जो किसी से वैरभाव या ईर्षा द्वेष नहीं रखता ; जो काम के सिद्ध हो जाने और सिद्ध न होने में एकसा रहता है ; जो शरीर रक्षार्थ भोजन मिलने पर सुखी नहीं होता और न मिलने पर दुःखी नहीं होता ; जो कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म को देखता है ; जो आत्मा को कर्त्ता नहीं समझता ; जो यह समझता है कि आत्मा कुछ नहीं करता, आत्मा शरीरके निर्व्वाह के लिये भिक्षा भी नहीं माँगता,—वह शरीर-निर्वाह के लिये भिक्षादि कर्म करता हुआ भी बिल्कुल कर्म नहीं करता ; इसीसे वह कर्म-जालमें नहीं फँसता ।

जिस मनुष्य की आसक्ति छूट होगई है, जो बन्धनके कारण धर्म अधर्म से छुटकारा पागया है, जिसका चित्त ब्रह्मज्ञान में लगा हुआ है, जो यज्ञ—परमेश्वर—के लिये ही कर्म करता है, उसके सारे कर्म ब्रह्ममें लीन होजातेहैं

जिसका स्त्री पुत्र धन दौलत आदि में प्रेम नहीं रहा है, जो धर्म अधर्म के झगड़े से छूट गया है, जिस का चित्त हर समय ब्रह्म-ज्ञान में ही लगा रहता है, जो नारायण के लिये अथवा यज्ञ के लियेही कर्म करता है, उसके सारे कर्म ब्रह्म में लीन हो जाते हैं यानी बिल्कुल नाश हो जाते हैं। धर्म-रक्षा अथवा यज्ञ के लिये किये हुए कर्म, ज्ञानी को बन्धन में नहीं जकड़ते ।

ज्ञानयज्ञ ।

जो यह समझता है कि स्रुवा जिस से हवन किया जाता है ब्रह्म है, घी वगैर: हवन की सामग्री भी ब्रह्म है, जिस अग्निमें हवन किया जाता है वह भी ब्रह्म है, हवन करनेवाला भी ब्रह्म है और जिसके लिये हवन किया जाता है वह भी ब्रह्म ही है तथा जो कर्ममें सदा ब्रह्म को देखता है, वह अवश्य ब्रह्म को प्राप्त होगा ।

जिसे ब्रह्म-ज्ञान होगया है, वह समझता है कि स्रुवा, जिस से हवनकी सामग्री घी वगैर: अग्नि मे डाली जाती है, ब्रह्म है, यानी वह ब्रह्म से उसी तरह जुदा नहीं है जिस तरह सीपी चाँदीसे अलग नहीं है । भ्रान्तिसे सीपी चाँदी सी जान पड़ती है ; किन्तु वास्तवमे वह सीपी ही है । लोग जिस स्रुवे को अग्निमें हवन-सामग्री डालने का यन्त्र समझते हैं, वह ब्रह्मज्ञानी की समझ में यन्त्र नहीं है बल्कि ब्रह्म है । घी वगैर: हवन के पदार्थ भी ब्रह्मज्ञानी की समझमें ब्रह्म हैं । इसी तरह अग्नि, जिसमें घी वगैर: हवन-पदार्थ डाले जाते हैं, ब्रह्मज्ञानीकी समझ में ब्रह्मही है । हवन करनेवाला भी ब्रह्मज्ञानी की समझ में ब्रह्म है । हवन करने का काम भी ब्रह्म के सिवाय और कुछ नहीं है । जो मनुष्य हर काम में ब्रह्म को देखता है उस कामका फल भी ब्रह्म के सिवाय और कुछ नहीं है ।

अगर कोई यह शङ्का करे, कि कर्म-फल तो बिना भोगे नाश नहीं होता, यानी कर्म-फल तो भोगना ही पड़ता है । उसे समझना चाहिये, कि जिसके ये क्रिया, कर्ता, कर्म, कारण और अधिकरण सब ही ब्रह्म हैं, जिस के लिये ऐसा ज्ञान है, उसके सारे कर्म ब्रह्म में ही लय हो जाते हैं । ऐसे ज्ञानी को कर्म-फल नहीं भोगना पड़ता । अगर यह कहा जाय, कि कर्म-फल है ही ; तो वह फल सिवाय ब्रह्म-प्राप्ति के और कुछ नहीं है ।

कितने ही कर्म-योगी देवताओं के लिये देवयज्ञ करते हैं; कितने ही तत्वज्ञानी अग्निमें आत्मा को आत्मा द्वारा हवन करते हैं।

इस श्लोक से पहिले, भगवान ने ज्ञान-यज्ञ कहा था और यहाँ भगवान् ने उस ज्ञान-यज्ञ को, उपरोक्त देव-यज्ञ के साथ, ज्ञान-यज्ञ की प्रशंसा करने की गरज़ से कहा है। ज्ञान-यज्ञ की महिमा बढ़ाने के लिये तथा और यज्ञों से उस की श्रेष्ठता दिखाने के लिये, भगवान और ग्यारह यज्ञों का ज़िक्र करते हैं। इन ग्यारह यज्ञों से (जिन में से एक ऊपर कहा गया है और बाकी दश आगे कहेंगे) ज्ञान-यज्ञ की प्राप्ति होती है। ज्ञान-यज्ञ ही मुख्य यज्ञ है; ज्ञान-यज्ञ से ही मोक्ष होती है।

खुलासा यह है, कि ब्रह्म ज्ञानी लोग ब्रह्मरूपी अग्निमें आत्मा को ब्रह्मज्ञान के सहारे से हवन करते हैं। यह तो ज्ञान-यज्ञ की बात हुई। कुछ लोग ऐसे हैं जो ज्ञान-यज्ञ नहीं करते; किन्तु हमेशा देव-यज्ञ करते हैं यानी इन्द्र, वरुण, रामचन्द्र आदि साकार देवताओं की उपासना करते हैं। जिस यज्ञ में साकार देवताओं की उपासना की जाती है, उसे देव-यज्ञ कहते हैं। ज्ञानी और उपासकों में यही फर्क है, कि उपासक तो सब देवताओं को, असल में, मूर्तिमान समझते हैं; वे देवताओं को निराकार निर्विकार नहीं समझते; किन्तु ज्ञानी लोग सब देवताओं को निराकार निर्विकार समझते हैं और मूर्त्तियों को कल्पित समझते हैं।

सारांश में भगवान यह समझाते हैं, कि ऊपर बयान किये हुए दोनों यज्ञों में ज्ञान-यज्ञ श्रेष्ठ है। ज्ञान-यज्ञ और देव-यज्ञ का मुकाबला करके यह दिखाते हैं, कि जीव और ब्रह्म में भेद नहीं है।

कितने ही योगी अपनी आँख, कान, नाक, आदि इन्द्रियोंको संयम रूपी अग्निमें होम देते हैं और कित-

कोई इन्द्रियोंके शब्द आदि विषयोंको इन्द्रियरूप अग्निमें होम देते हैं।

पहिले भगवान् कृष्णचन्द्रने दो यज्ञ कहे थे। अब इस जगह और दो यज्ञ फिर कहे हैं। तीसरा यज्ञ उन्होंने इन्द्रियोंको संयम करना अर्थात् जीतना कहा है और चौथा शब्द, रस, रूप आदि इन्द्रियोंके विषयोंको इन्द्रियरूपी अग्निमें हवन करना कहा है।

खुलासा मतलब यह है, कि इन्द्रियोंको जीत लेना, उनको अपने विषयोंकी तरफ़ न झुकने देना,—तीसरा यज्ञ है और वेदोक्त विषयोंका भोगना अथवा शास्त्रमें जिन विषयोंके भोगनेकी मनाही नहीं है उनका भोगना.—चौथा यज्ञ कहा है। मतलब यह है, कि जो वेद या शास्त्रकी आज्ञानुसार चलते हैं यानी नियमानुसार इन्द्रियोंके विषयोंको भोगते हैं उनका ऐसा करना भी "यज्ञ" अथवा इन्द्रिय-दमन ही है।

कितने ही योगी सारी इन्द्रियोंके कर्मों और प्राण, अपान आदि वायुओंके कर्मोंको, ज्ञान से प्रज्वलित, आत्म-संयम योगाग्निमें हवन करते हैं।

इस स्थानमें यह पाँचवाँ यज्ञ कहा गया है। इसका खुलासा मतलब यह है, कि कुछ योगी ज्ञानेन्द्रियोंकी वृत्तियोंको रोक कर तथा कर्मेन्द्रियों और प्राण, अपान आदि दस वायुओंको अपने अपने कर्मोंसे रोककर आत्माके ध्यानमें मशगूल हो जाते हैं। और भी साफ़ मतलब यह है, कि कुछ योगी संसार की विषय वासनाओंसे अपना मन हटाकर, केवल आत्म-स्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। इसे यों भी कह सकते हैं कि जब योगी सब जगह से अपना मन हटाकर, आत्म-स्वरूप ब्रह्ममें लीन हो जाता है तब इन्द्रियों और प्राण अपान आदि के कर्म एक दम नष्ट हो जाते हैं।

कितने ही धनसे यज्ञ करते हैं; कितनेही तपस्या

से यज्ञ करते हैं; कितने ही योग से यज्ञ करते हैं; कितने ही वेद शास्त्रोंके पढ़नेसे यज्ञ करते हैं और कितने ही ज्ञानकी प्राप्ति से यज्ञ करते हैं। ये यज्ञ करनेवाले बड़े दृढ़व्रती हैं।

इस जगह भगवान् ने, इस एक ही श्लोकमें, पाँच यज्ञ कहे हैं। खुलासा मतलब यह है, कि कुछ लोग उनको धन दान करते हैं जिनको कि उसकी आवश्यकता है अर्थात् अपने धनसे दीन दुखियोंका दुःख दूर करते हैं। कुछ लोग चान्द्रायण व्रत आदि करते हैं अथवा मौन व्रत धारण करते हैं। कुछ लोग अष्टाङ्ग योगका साधन करते हैं अर्थात् प्राणायाम और प्रत्याहार वग़ैरः करते हैं यानी प्राण वायु आदिको रोकते हैं और बाहरी चीज़ोंसे मनको हटा लेते हैं। कुछ लोग नियमानुसार वेद पाठ करते हैं और कुछ लोग शास्त्रोंके विचारमें निमग्न रहकर ज्ञान उपार्ज्जन करते हैं। मतलब यह है, कि धन दान करना, तपस्या करना, योग साधन करना, वेद पढ़ना और शास्त्र विचार से ज्ञान प्राप्त करना,—ये पाँचों भी यज्ञ ही हैं।

कितने ही प्राणको अपान में होमते हैं और अपान को प्राणमें होमते हैं। प्राण और अपान की चाल रोककर प्राणायाम में तत्पर हो जाते हैं।

इस जगह यह ग्यारहवाँ यज्ञ कहा है। इसका खुलासा मतलब यह है, कि कितने योगी अपानमें प्राणवायु को मिलाते हैं यानी पूरक * करते हैं और कितने ही प्राणवायुमें अपान वायुको होमते या मिलाते हैं यानी रेचक* करते हैं। इसी भाँति कुछ प्राण और अपान वायुकी चालको रोक कर, प्राणोंमें प्राणको होमते हैं यानी कुम्भक प्राणायाम* करते हैं।

---

*पूरक = अन्दर भरना। *रेचक = खाली करना। *प्राणायाम—साँस रोकना।

इसीको ज़रा साफ़ करके यों भी कह सकते हैं, कुछ लोग तो अपानवायु में प्राणवायुको मिलाकर पूरक करते हैं। कुछ प्राणवायुमें अपानवायुको मिलाकर रेचक करते हैं और कुछ लोग नाक और मुखको बन्द कर, हवाके बाहरी रास्तोंको रोक देते हैं और उधर सामने से हवाके अन्दरूनी रास्तोंको भी बन्द करके कुम्भक प्राणयाम करते हैं।

बहुत ही साफ़ मतलब यह है, कि प्राणकी गति रोकनेसे मन फ़ौरन ही रुकता है यानी प्राणकी गतिके रुकनेके साथ ही मन की गति रुक जाती है ; इसी लिये सिद्ध योगी लोग प्राणायाम में तत्पर रहते हैं।

कुछ नियमित आहार करके प्राणोंको प्राणोंमें होमते हैं ; ये सब यज्ञके जाननेवाले हैं। इनके पाप यज्ञसे ही नाश हो जाते हैं।

यहाँ आधे श्लोकमें बारहवां यज्ञ कहा है और आधेमें यज्ञ करनेवालोंके लिये यज्ञका फल कहा है।

इसका खुलासा मतलब यह है, कि कुछ लोग थोड़ा सा खाकर प्राणोंमें प्राणोंको होमते हैं। थोड़ा भोजन करने यानी कम खाने से प्राणकी गति कम हो जाती है और प्राणकी चाल कम होनेसे मन रुकता है। इसीसे रेचक, पूरक और कुम्भक करनेवाले अल्प भोजन करते हैं। जो लोग नाक तक ठूंस लेते हैं, जिनके पेटमें हवा जानेको भी जगह नहीं रहती, उनसे किसी प्रकारका प्राणायाम हो नहीं सकता और प्राणायाम न होसकनेसे मन भी नहीं रुक सकता। मनकी गति न रुकनेसे मनुष्य आत्मस्वरूप ब्रह्ममें लीन नहीं हो सकता। ब्रह्मज्ञान में लवलीन होनेवालोंके लिये थोड़ा खाना ही उचित है। क्योंकि अल्पभोजी ही प्राणकी गतिको संकुचित अथवा कम कर सकेगा और प्राणकी गति रुकनेसे ही मनकी चाल बन्द होगी।

जो यज्ञसे बचे हुए अमृत रूपी अन्नका भोजन करते

हैं, वे सनातन ब्रह्मको प्राप्त हो जाते हैं। हे अर्जुन ! जो यज्ञ नहीं करते, उनको न तो यह लोक है न परलोक ।

इसका खुलासा मतलब यह है, कि जो लोग पहिले बयान किये हुए यज्ञ करते हैं। समय पर, पहिले बयान की हुई रीति से भोजन करते हैं यानी यज्ञसे बचमें बची हुई अमृत समान सामग्री खाते हैं, वे उचित समय पर यदि मोक्ष चाहते हैं तो ब्रह्ममें पहुँच जाते हैं। लेकिन जो पहिले कहे हुए यज्ञोंमें से किसीको भी नहीं करते, उनके लिये यह दुनिया भी नहीं है, तब दूसरी दुनियाकी तो बात ही क्या है जो केवल बड़े बड़े कठिन कर्मों से मिलती है ?

वेदमें इस तरह के बहुत से यज्ञोंका वर्णन है, उन सबकी उत्पत्ति कर्मसे समझ। ऐसा समझनेसे तेरी मुक्ति हो जायगी ।

इसका खुलासा मतलब यह है, कि भगवान् अर्जुन से कहते हैं—"हे अर्जुन ! वेद में बहुत तरह के यज्ञ कहे गये हैं। उन सबकी पैदायश शरीर, मन और वाणीसे है। आत्मा से उनका कुछ भी सरोकार नहीं है ; क्योंकि आत्मा कर्म-रहित है यानी आत्मा कुछ कर्म नहीं करता। अगर तू यह समझेगा कि "ये मेरे कर्म नहीं हैं, मैं कर्म रहित हूँ,मेरा कर्मों से कुछ सरोकार नहीं है ;" तो इस श्रेष्ठ ज्ञानके बलसे,तू दुःखोंसे छुटकारा पाकर, संसारके बन्धन से छूट जायगा।

सब यज्ञोंसे ज्ञान-यज्ञ श्रेष्ठ है।

हे अर्जुन ! सब प्रकारके द्रव्य-यज्ञोंसे ज्ञान-यज्ञ श्रेष्ठ है। फल सहित सब कर्म ज्ञानमें ही शामिल हैं।

मतलब यह है, कि सब प्रकारके द्रव्यों द्वारा किये हुए यज्ञोंसे ज्ञान-यज्ञ श्रेष्ठ है ; क्योंकि सबका निचोड़ "ज्ञान" है। जो यज्ञ द्रव्य आदिसे किये जाते हैं उनका फल भी वही है किन्तु ज्ञानका फल वह नहीं है। ज्ञानका फल मोक्ष है। अतएव ज्ञानयज्ञ सब से ऊँचा है और उसमें सारे कर्म समाप्त हो जाते हैं ; यानी ब्रह्मज्ञानसे ही दुःखरूपी कर्म नाश होते हैं और किसी उपाय से कर्मों की जड़ नाश नहीं हो सकती।

तत्वज्ञानकी प्राप्ति किनसे और किस तरह होसकती है ?

हे अर्जुन ! जब तू तत्वज्ञानी लोगोंके पास जाकर उनको प्रणाम करेगा, उनसे पूछेगा और उनकी सेवा करेगा ; तब वे लोग तुझे तत्वज्ञान सिखावेंगे।

मतलब यह है, कि जिन्हें सर्व श्रेष्ठ ज्ञान—ब्रह्मज्ञान—की शिक्षा लेनी हो, उन्हें पूर्ण तत्वज्ञानी पण्डित और विरक्त सन्यासियोंके पास जाना चाहिये। उनको सादर साष्टाङ्ग दण्डवत प्रणाम आदि करना चाहिये। उनकी तन मन से सेवा करनी चाहिये। जब वह लोग सेवा टहल और आदर सत्कार से प्रसन्न हो जायें तब उनसे ऐसे ऐसे प्रश्न करने चाहियें—बन्धनका कारण क्या है ? बन्धनसे छुटकारा पानेका उपाय क्या है ? विद्या क्या है ? और अविद्या क्या है ? जब महात्मा लोग प्रसन्न होंगे तब अपने अनुभव किये हुए तत्वज्ञान का उपदेश करेंगे।

याद रखना चाहिये "ब्रह्मज्ञान" सहजमें नहीं मिलता। ब्रह्मज्ञान प्राप्तिके लिये ऐसे गुरुको तलाश करना चाहिये जो सर्व शास्त्रोंके जानने और उनके समझनेवाला हो और साथही जो ब्रह्म को भी प्रत्यक्ष में जानता हो। क्योंकि जो पुरुष ब्रह्मज्ञान रहित होगा वह अनुभव सहित उपदेश न कर सकेगा और जो केवल ब्रह्म-ज्ञानी होगा किन्तु शास्त्रोंको न जानता होगा वह दृष्टान्त, युक्तियों और प्रमाणों सहित उपदेश न कर सकेगा। वह,

आत्मज्ञान न होनेसे पूछनेवाले की शंकाओं का समाधान न कर सकेगा। अतः ब्रह्मज्ञान उपार्जन करने के लिये ऐसा गुरु तलाश करना चाहिये, जो शास्त्र में पारदर्शी हो एवं ब्रह्म-ज्ञान का पूर्ण अनुभवी हो।

उस (तत्वज्ञान) के जान जाने पर, तू ऐसी भूल न करेगा। उसी ज्ञानसे समस्त जीवोंको अपनी आत्मामें और मुझमें देखेगा।

मतलब यह है, कि तत्वज्ञानी लोगों से तत्वज्ञान पाकर तुझे अब की भाँति मोह न होगा, तेरी घबराहट जाती रहेगी। उस ज्ञान के बल से तू ब्रह्म से लेकर चींटी तक को अपनी आत्मा में देखेगा। तब तू समझेगा कि "यह सारा संसार मुझ में मौजूद है।" पीछे तू सब जीवों को मुझ वासुदेव में देखेगा और इस तरह आत्मा और परमात्मा की एकता समझेगा। यह विषय सभी उपनिषदों में खूब अच्छी तरह समझाया है।

आगे चलकर ज्ञानकी उत्तमता और भी देखिये :—

ज्ञान समस्त पाप और कर्मोंका नाशक है।

अगर तू सारे पापियोंसेभी अधिक पापी हो जायगा; तो भी तू इस ज्ञानरूपी नावसे पाप-समुद्रके पार हो जायगा।

मतलब यह है, कि यह संसार समुद्र की भाँति अथाह पाप-रूपी जल से भरा हुआ है। इस पाप-सागर का पार कर जाना सहज काम नहीं है; किन्तु जो मनुष्य तत्वज्ञान को जान जाता है वह अपने ज्ञान-बलसे, बिना प्रयास ही, पाप-सागरके पार हो जाता है।

ज्ञान से पापों का नाश किस भाँति होता है?

हे अर्जुन! जिस तरह जलती हुई अग्नि सूखी लकड़ियोंको जलाकर राख करदेती है; उसी तरह ज्ञानरूपी

अग्नि सारे कर्मों को जलाकर ख़ाक कर देती है ।

इस जगत्में ज्ञानके बराबर पवित्र वस्तु और नहीं है । कर्म-योगमें निपुण पुरुषमें, कुछ समय में ही, यह ज्ञान अपने आप आ जाता है ।

मतलब यह है, कि ज्ञान के समान चित्तको शुद्ध करनेवाला दूसरा उपाय नहीं है । मोक्ष के लिये ब्रह्मज्ञान ही सब से श्रेष्ठ है । जिसने कर्म-योग और समाधि योगका खूब अभ्यास किया है, उसे थोड़े समयमें ही, अभ्यास करते करते, अपने भीतरही अपने आप वह ज्ञान हो जायगा ।

ज्ञान प्राप्त करने के निश्चित उपाय ।

जिसमें श्रद्धा है, जिसे ज्ञानकी चाह है, जिसने अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है, उसे ज्ञान मिलता है । जिसे ज्ञान हो जाता है, उसे परम शान्ति जल्दी ही मिलती है ।

जिस में श्रद्धा और विश्वास है, उसे ज्ञान प्राप्त हो जाता है ; किन्तु यदि वह आलसी हो तो कुछ नहीं हो सकता ; इसी से यह कहा गया है कि उसे हमेशा ज्ञान को चाह होनी चाहिये अर्थात् उसे ज्ञान प्राप्त करनेके लिये अपने गुरुओं के पास हरदम डटा रहना और उनके उपदेश ध्यान पूर्व्वक सुनने चाहियें । लेकिन जिसमें श्रद्धा है और जो रात दिन ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा करता रहता है, यदि उसने अपनी इन्द्रियोंपर अधिकार न जमाया हो यानी अपनी इन्द्रियोंको अपने वश न किया हो, तो ज्ञान प्राप्त हो नहीं सकता । इसी से कहा गया है, कि उसे अपनी इन्द्रियाँ अपने वशमें कर लेनी चाहियें । मतलब यह है, कि जिसमें विश्वास या श्रद्धा है, जिसे ज्ञान पानेकी चाह है और जिसने अपनी इन्द्रियों को अपने आधीन कर लिया है उसे निश्चय ही ज्ञान प्राप्त हो जाता है । ज्ञान प्राप्त करनेके ये तीन

साधन हैं। जिसमें इन तीनोंमेंसे एक भी नहीं है, उसे ज्ञान मिल नहीं सकता। इसी अध्यायके ३४वें श्लोकमें जो दण्डवत प्रणाम, गुरु-सेवा आदि जो उपाय बताये हैं वे सब बाहरी साधन हैं। सम्भव है कि उनसे ज्ञान प्राप्ति न हो; क्योंकि उनको पाखण्डी लोग भी कर सकते हैं। लेकिन जिस में श्रद्धा वगैर: श्लोकमें कहे हुए तीन साधन हों उससे कपट नहीं हो सकता। इससे उपरोक्त तीन साधन ज्ञान प्राप्त करने के निश्चित उपाय हैं। ज्ञान लाभ करनेका फल क्या है? इस प्रश्नका उत्तर यह है :—मनुष्य को ज्ञान प्राप्त होने पर शीघ्र ही परम शान्ति—मोक्ष—मिलजाती है। शुद्ध ज्ञान से मोक्ष हो जाती है, यह बिलकुल सच है। यही बात सब शास्त्रों में खोल खोल कर समझायी गयी है।

ज्ञान सन्देह नाशक है।

जो अज्ञानी है, जो श्रद्धा-रहित है, और जिसे आत्मा में सन्देह है, वह नाश हो जाता है। जिसे आत्मामें सन्देह है, उसे इस लोकमें और परलोकमें कहीं भी सुख नहीं मिलता।

जिसपर अज्ञान का पर्दा पड़ा है यानी जो आत्मा को नहीं पहचानता वह, जिसे अपने गुरुओं के उपदेशों या वेदान्त शास्त्र पर विश्वास नहीं है वह, तथा जो सन्देहोंमें डूबा रहता है वह, ये तीनों ही नष्ट हो जाते हैं। अज्ञानी और श्रद्धा-हीन निःसन्देह नष्ट होजाते हैं; किन्तु उतने नहीं जितना कि संशयों में डूबा रहनेवाला नष्ट होता है। सारांश यह कि अज्ञानी और श्रद्धा-हीनोंको ज्ञान नहीं होता। तथापि सम्भव है, कि मूर्ख बुद्धिमान हो जाय और अविश्वासी विश्वासी होजाय, लेकिन सन्देह में डूबा रहनेवाला नष्ट हुए बिना न रहेगा। मतलब यह है कि जो मूर्ख होता है उसका गुरु और शास्त्रोंमें विश्वास होता है वह समय पाकर सुधर सकता है। इसी भांति

श्रद्धा रहित और मूर्ख भी समय पाकर श्रद्धावान और बुद्धिमान हो सकता है लेकिन जो जान बूझकर सन्देह और तर्क किया करता है वह कभी सुधर नहीं सकता ; इसी से उसे कभी सुख न होगा। भगवान् अर्जुन को समझाते हैं कि तू सन्देह न कर ; क्योंकि सन्देह बड़ा भारी पाप है।

हे धनञ्जय! जिसने योग-रीतिसे कर्मोंको छोड़ दिया है, जिसके सब संशय ज्ञानसे छिन्न भिन्न होगये हैं, जो आत्म-निष्ठ है, वह कर्म-बन्धनमें नहीं फँसता।

वह मनुष्य जो परमात्मा को समझता है, योग-रीति अथवा परमात्मा के ज्ञानसे, तमाम कर्मों—धर्म और अधर्म—को त्याग देता है। मनुष्य इस दर्जे पर उस वक्त पहुँचता है जब उसके सन्देह आत्मा और परमात्मा की एकता समझनेसे छिन्नभिन्न हो जाते हैं। जब वह यह समझने लगता है, कि समस्त कर्म सतोगुण आदि गुणोंके कारण से होते हैं ; मैं कोई कर्म नहीं करता, तब कर्म उसे बन्धनमें नहीं बांधते। जो सब कर्मों को त्याग देता है और सदा अपने आत्मा में मग्न रहता है उस पर, उस के योगाभ्यास के कारण, कर्मों का बुरा या भला प्रभाव नहीं पड़ता।

हे भारत! तेरे दिलमें अज्ञानसे जो सन्देह आत्माके विषयमें उठ खड़ा हुआ है,उसे ज्ञानरूपी तलवारसे काट डाल और योगका सहारा लेकर उठ खड़ा हो।

भगवान् कृष्णचन्द्र अर्जुन से कहते हैं :—"सन्देह करना सब से बड़ा पाप है। सन्देह मूर्खता अथवा अज्ञान से पैदा होता है और बुद्धि में रहता है। बुद्धि और आत्मा के शुद्ध ज्ञान से सन्देह को नष्ट कर दे।

ज्ञान ही अज्ञान और शोकादि का नाशक है। हे अर्जुन! तेरे नाश का कारण सन्देह है। तू उस सन्देह का नाश करके, कर्म-योग में लग जा, जिस के ज़रियेसे शुद्ध ज्ञानकी प्राप्ति होती है। अब उठ और युद्ध कर।

अर्जुन ने कहा;—

हे कृष्ण! आप कर्मों के छोड़ने को अच्छा कहते हैं, फिर कर्मों के करनेको अच्छा कहते हैं। मुझे निश्चय करके यह बताइये कि, इन दोनों में से कौन अच्छा है।

खुलासा—अर्जुन ने कहा—"हे कृष्ण! आप कर्म-संन्यास यानी कर्मों के छोड़ने की भी तारीफ़ करते हैं और साथ ही यह भी उपदेश देते हैं कि कर्मोंका करना ज़रूरी और अच्छा है। आपके दो बातें कहने से मेरे मनमें सन्देह उठ खड़ा हुआ है कि उन दोनों में कौन अच्छा है, कर्म-संन्यास या कर्म-योग। कर्म-संन्यास और कर्म-योग यानी कामों का त्याग और उनका करना दोनों एक दूसरे से विरुद्ध हैं। अत: एक ही समय में, एक ही आदमीसे, कर्म-संन्यास और कर्म-योग नहीं हो सकते। अतएव कृपा करके मुझे उनमें से एक को बताइये। अगर आप कर्म संन्यासको उत्तम समझें तो उसी की सलाह दीजिये और अगर आप कर्म-योग को अच्छा समझें तो उसके करने की सलाह दीजिये। मतलब यह है, कि दोनोंमें जो श्रेष्ठ हो मुझे उसे ही बताइये।

अज्ञानीके लिये कर्म-योग संन्याससे श्रेष्ठ है।

भगवान ने कहा ;—

हे अर्जुन! संन्यास और कर्म-योग दोनों से ही मोक्ष मिलती है; पर इन दोनों में संन्यास से कर्म-योग श्रेष्ठ है।

पाठकों को खूब समझ लेना चाहिये कि "संन्यास" कामों के छोड़ने को और "कर्म-योग" कामों के करने को कहते हैं।

भगवान् अर्जुन के दिलका शक दूर करनेके लिये कहते हैं कि संन्यास और कर्म-योग, कामों का छोड़ना और कामों का करना, दोनों ही मोक्ष के देनेवाले हैं ; क्योंकि दोनों ही से ब्रह्म-ज्ञान होता है। यद्यपि दोनों ही से मोक्ष होती है तथापि मोक्ष प्राप्ति के लिये खाली कर्म-संन्यास—ज्ञानरहित कर्म-संन्यास—से कर्म-योग ही श्रेष्ठ है।

भगवान् ने यद्यपि कर्म-योग को कर्म-संन्यास से अच्छा बतलाया है तथापि भगवान् का यह आशय नहीं है, कि सच्चे कर्म-संन्यास से कर्म-योग श्रेष्ठ है। उनका आशय है कि सच्चा कर्म-संन्यास, जो ज्ञान सहित है, कर्म-योग से बहुत ऊँचे दर्जे पर है। उनके कहनेका मतलब यह है, कि कर्म-योग कर्म-संन्यास से आसान है और इसीलिये ज्ञानरहित कर्म-संन्यास से अच्छा है।

कर्म करते करते चित्त के शुद्ध होने से संन्यास होता है। बिना चित्त के शुद्ध हुए संन्यास अच्छा नहीं है। जिन की सीख [illegible] नहीं है, जिन को ज्ञान हो गया है, उनके लिये तो कर्म-संन्यास यानी कर्मों का त्याग ही अच्छा है ; किन्तु रजोगुणी तमोगुणी पुरुषों को, ज्ञान प्राप्त करने के लिये, कर्म-योग यानी कर्म करना ही अच्छा है। मतलब यह, कि अज्ञानीको ज्ञान प्राप्त करने के लिये कर्म-योग ही अच्छा है। हे अर्जुन! तू क्षत्रिय है। क्षत्रियोंका धर्म युद्ध करना है। अतः तुझे युद्ध करना ही अच्छा है ; क्योंकि बिना कर्म-योग के तेरा कल्याण कभी न होगा।

संन्यासी के लक्षण।

हे महाबाहो! जो न किसी से घृणा—नफ़रत—करता है, न किसी चीज़ की इच्छा करता है, वही पक्का संन्यासी है। वह सुख दुःख से रहित संन्यासी, सहज ही में, संसारी बन्धनों से छुटकारा पा जाता है।

जो कर्म-योगी किसी से नफ़रत नहीं करता और किसी से प्रेम नहीं करता, किसी वस्तु की चाहना—ख्वाहिश—नहीं रखता, सुख और दुःख को समान भाव से देखता है, वह चाहे काम करता रहे तथापि वह पक्का संन्यासी है। सारांश यह, कि राग द्वेष छोड़कर निष्काम कर्म करनेवाला संन्यासी ही है।

सांख्य और योगमें भेद नहीं है।

(शंका) संन्यास और कर्म-योग जो दो प्रकार के लोगोंके लिये बताये गये हैं और जो आपस में एक दूसरे के विरुद्ध हैं, अगर ठीक ठीक विचार किया जाय, तो दोनोंके फल भी जुदे जुदे होने चाहियें। उन दोनोंके ही अनुष्ठानसे मोक्षका मिलना संभव नहीं जान पड़ता। इस शंकाका उत्तर भगवान् आगे देते हैं—

सांख्य और कर्म-योग को बालक ही अलग अलग कहते हैं किन्तु बुद्धिमानोंकी रायमें ऐसी बात नहीं है। जो इन दोनों में से एक का भी साधन अच्छी तरह करता है, उसे दोनोंका फल मिल जाता है।

भगवान् कृष्णचन्द्र कहते हैं कि बालक यानी मूर्ख लोग ही "सांख्य और योग" को दो चीज़ और उनके जुदे जुदे फल समझते हैं। लेकिन बुद्धिमान—ज्ञानी—समझते हैं," कि उन दोनों से एक ही फल निकलता है

यानी सांख्य (ज्ञान बूझकर कर्मों का त्याग) और कर्मयोग (कर्मों का करना) दोनोंसे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है। भगवान् कहते हैं जो अच्छी तरहसे सांख्य (संन्यास) अथवा कर्म-योग दोनोंमेंसे एक का भी आश्रय लेते हैं उनको दोनों के ही फल मिलते हैं। दोनों का फल एक ही "मोक्ष" है। अतः सांख्य (संन्यास) और कर्म-योग दोनों में कुछ फ़र्क नहीं है।

(शङ्का) अभी तक तो "संन्यास" और "कर्म-योग" शब्दोंसे ही सिलसिला चल रहा था, अब 'सांख्य" और "योग" जिनसे हमारा अभी कुछ मतलब नहीं है, क्यों एक ही फल के देनेवाले कहे गये हैं?

(उत्तर) इस में कुछ भी भूल नहीं है। अर्जुन ने, वास्तवमें, साधारणतया, संन्यास और कर्म-योग के विषय में ही प्रश्न किया था। भगवान्, संन्यास और कर्म-योग को बिना छोड़े ही, उनमें अपने और और विचार मिलाकर, सांख्य (ज्ञान) और योग दूसरे नामों से उत्तर देते हैं भगवान् की राय में संन्यास और कर्म-योग ही सांख्य और योग हैं जबकि उनमें क्रमसे आत्मा का ज्ञान और समबुद्धित्व मिला दिये जावें। अतएव यह प्रसंग बेमेल नहीं है।

अब यह सवाल पैदा होता है, कि संन्यास और कर्म-योग दोनों में से केवल एक का भली भांति साधन करने से दोनों का फल किस तरह मिल सकता है? इस का जवाब नीचे है—

जो फल सांख्यवालों को मिलता है वही योगियोंको मिलता है। जो सांख्य और योग को एक देखता है, वही देखता है।

सांख्य-योगी वे हैं, जिनका ध्यान और प्रेम ज्ञान की तरफ़ है और जिन्होंने संसारको त्याग दिया है। वे उस स्थान को पहुँचते हैं जो 'मोक्ष' कहलाता है। योगी भी उसी स्थान को पहुँचते हैं,—लेकिन ज़रा देर लगाकर, यानी ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके और कर्मों को करके। खुलासा यह है कि,

जो योगी शास्त्रों में लिखी हुई रीति के अनुसार, ज्ञान प्राप्त करने के लिये, कर्म करते हैं और अपने कर्मों को ईश्वर के लिये समर्पण कर देते हैं एवं अपने स्वार्थ के लिये किसी फल की आशा नहीं रखते, वे शुद्ध ज्ञान के ज़रियेही 'मोक्ष' पाजाते हैं।

(प्रश्न):—अगर यही बात है, तो 'संन्यास' 'योग' की अपेक्षा श्रेष्ठ और ऊंचा है। फिर यह बात क्यों कही गयी है कि कर्म-योग कर्म-सन्यास से अच्छा है ?

(उत्तर) भगवान् कहते हैं अर्जुन ! तुमने शुरू से जो प्रश्न किया था कि कर्म-योग और कर्म-संन्यास इन दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है। तुम्हारा वह प्रश्न साधारण कर्म-योग और साधारण कर्म-संन्यास के विषय में था। जैसा तुम्हारा प्रश्न था, वैसा ही मैंने उत्तर भी दिया। मैंने जो कर्म-योग को कर्म-संन्यास से अच्छा कहा है वहां "ज्ञान" का लिहाज़ नहीं रखा है। लेकिन वह संन्यास जिसकी नींव "ज्ञान" पर है, मेरी समझमें, सांख्य है और सांख्य ही सच्चा योग अथवा परमार्थ है। वेद-रीति से काम करनेवाला कर्म-योगी ज्ञान प्राप्त करके सच्चा योगी (सांख्य) होजाता है यानी कर्म-योग ही मनुष्यको सच्चा योगी या संन्यासी बनाता है; इसीलिये कर्म-योगको कर्म संन्यासकी अच्छा कहा है।

फिर सवाल पैदा होता है कि कर्म-योग संन्यास मिलने का वसीला किस तरह है ? इसका जवाब नीचे दिया जाता है—

कर्मयोग सन्यासका वसीला है ।

हे महाबाहो अर्जुन ! बिना कर्मयोग के संन्यास का मिलना कठिन है ; योग-युक्त मुनि ब्रह्म (संन्यास) को बहुत जल्द पा जाता है।

नोट—इस जगह "ब्रह्म" शब्द "संन्यास" के लिये इस्तेमाल हुआ है।

ऊपर के कथन का खुलासा मतलब यह है कि बिना कर्म-योग किये संन्यास होना कठिन है। जब तक राग द्वेष आदि न छूटेंगे, जबतक चित्त शुद्ध न होगा, तबतक संन्यास होना कठिन है। कर्म-योग करते करते जब अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा, तभी कर्मों का संन्यास—त्याग—होगा। इसीसे भगवान् ने कर्म-योग को श्रेष्ठ ठहराया है और उसे संन्यास मिलनेका द्वार या वसीला कहा है।

ज्ञानी कर्म-बन्धनोंसे अलग रहता है।

जो कर्मयोगी है, जिसका चित्त बिल्कुल शुद्ध है, जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है, जो अपने आत्मा को समस्त प्राणियों के आत्मासे अलग नहीं मानता, वह कर्म करता हुआ भी कर्म-बन्धनोंसे अलग रहता है, यानी उनके बन्धनमें नहीं आता।

अगर कोई यह शंका करे कि कर्म-योगी कर्म-बन्धन में फँस जाता है। तो इसी की शंका दूर करनेको भगवान् कहते हैं कि शास्त्रानुसार कर्म करने वाले का चित्त शुद्ध हो जाता है, फिर वह अपने तईं अपने आधीन कर लेता है, और सब जीवोंको अपने समान समझता है, यानी ब्रह्मासे लेकर घास के गुच्छे तक को अपनी आत्मा के समान समझता है। ऐसी दशा में, वह लोक-रक्षा के लिये काम करता हुआ अथवा स्वभाव से काम करता हुआ कर्मों के बन्धनों मे नहीं बंधता।

ज्ञानीके कर्म वास्तवमें कर्म नहीं हैं।

कर्म करनेवाला तत्वज्ञानी देखता है, सुनता है, छूता है, सूँघता है, खाता है, चलता है, सोता है, साँस लेता है, बोलता है, छोड़ता है, पकड़ता है और आँखों

को खोलता तथा बन्द करता है;मगर वह यही समझता है कि "मैं कुछ भी नहीं करता"—वह समझता है कि इन्द्रियाँ ही अपनी अपनी विषयोंमें लगी हुई हैं।

ऊपर इस अध्याय के आठवें और नवें श्लोकका अर्थ एक साथ ही दिया है। तत्वज्ञानी उसे कहते हैं जिसे आत्मा का सच्चा ज्ञान हो।

ऊपरके दो श्लोकोंका खुलासा मतलब यह है, कि तत्वज्ञानी लोग देखना सुनना, खाना, पीना, छूना आदि सब काम तो करते हैं किन्तु अपने तईं इन कामों का करनेवाला नहीं समझते, वे इन सब कामों को इन्द्रियों का काम समझते हैं। उनका ख्याल है कि देखना 'आँख' का धर्म है आत्मा का नहीं। चलना 'पैरों' का धर्म है आत्मा का नहीं। सुनना 'कानों' का धर्म है आत्मा का नहीं। बोलना 'जीभ' का धर्म है आत्माका नहीं। इसी तरह मल त्यागना 'गुदा' का धर्म है आत्मा का नहीं। मतलब यह कि वे सारे कामोंको आँख, कान, नाक, जीभ आदि इन्द्रियोंका काम समझते हैं। आत्मा को वे किसी काम का करनेवाला नहीं समझते ; इसी से वे कर्म-फांस में नहीं फँसते। किन्तु अज्ञानी लोग सब कामों को अपने आत्मा का काम समझते हैं इसीसे वे कर्म-बन्धनमें फँसते हैं।

काम तो अज्ञानी भी करते हैं और ज्ञानी भी; लेकिन ज्ञानी लोग आत्माका सच्चा स्वभाव जानने—उसे अकर्त्ता, असंग, निर्विकार और शुद्ध समझने से कर्मों के बन्धन में नहीं फँसते ; किन्तु मूर्ख लोग इस असल तत्व के न समझने से ही कर्म-बन्धन में बंधते और जन्म मरण के दुःख बारम्बार भोगते हैं।

अब यह शंका पैदा होती है कि जो पुरुष कर्म तो करता है किन्तु तत्वज्ञानी नहीं है उस का भला कैसे होगा? तत्वज्ञान न होने से उसके दिल में अभिमान रहता है। वह अपने तईं सब कामों का कर्त्ता समझता है। वह आत्मा को कुछ भी न करनेवाला और इन्द्रियों को काम करनेवाला नहीं समझता, ऐसा ब्रह्मज्ञान रहित पुरुष कर्म-बन्धन में फँसता है ; क्योंकि

उसको ब्रह्मज्ञान न होने से, अशुद्ध अन्तःकरण होने से, कर्मों के संन्यास का अधिकार नहीं है। ऐसे ही पुरुष के लिये भगवान् आगे के श्लोक में ऐसी तरकीब बताते हैं जिससे उस के कर्म-फल (पाप और पुण्य) उस पर अपना प्रभाव न डाल सकें।

जो मनुष्य कर्म करता है, अपने कर्मों को ईश्वर के अर्पण कर देता है और अपने कर्म-फलोंकी इच्छा नहीं रखता, उस पुरुष को पाप इस तरह नहीं छूते जिस तरह कमलके पत्ते पर जल नहीं ठहरता।

इसका खुलासा यह है, कि वह तमाम कामों को ईश्वर के अर्पण करता है। उसका विश्वास है कि जिस भांति नौकर अपने मालिक के लिये. काम करता है उसी तरह मैं सब कर्म अपने मालिक -ईश्वर—के लिये करता हूं। वह अपने किये कामोंके फल की इच्छा नहीं रखता, यहां तक कि मोक्ष को भी नहीं चाहता। इस भांति जो कर्म किये जाते हैं उनका फल अन्तःकरण की शुद्धि है। इसके सिवा और कुछ नहीं।

क्योंकि,—

शरीरसे, मनसे, बुद्धिसे और केवल इन्द्रियोंसे योगी लोग, कर्म-फलकी इच्छा छोड़कर, आत्माकी शुद्धिके लिये कर्म करते हैं।

इसका आशय यह है, कि योगी लोग केवल शरीर से, केवल मन से, केवल बुद्धि से और केवल इन्द्रियों से काम करते हैं और उनके मन में यह अटल विश्वास होता है कि हम सब कर्म अपने मालिक—ईश्वर—के लिये करते हैं। वह अपने कामों को अपने लिये नहीं समझते और उनके फलों की चाहना नहीं रखते। वे अन्तःकरण की शुद्धि के लिये ही, काम

करते हैं। इस के सिवाय और किसी फल की इच्छा करने से बन्धन में फंसना पड़ता है।

जो स्थिर चित्त पुरुष कर्म-फलकी चाहना छोड़कर काम करता है उसे परम शान्ति मिल जाती है; लेकिन जो स्थिरचित्त नहीं है और फलोंकी कामना में मन लगाकर काम करता है वह कर्म-बन्धनमें बँध जाता है।

यहां यह शंका होती है, कि कर्म तो एक ही है, फिर यह क्या वजह है कि कोई कर्म करनेवाला तो मोक्ष पा जाता है और कोई कर्म-बन्धन में बंध जाता है। इसी शंका के उत्तरमें भगवान् ने ऊपर जो वचन कहा है उसका आशय यह है—

जो लोग ऐसा दृढ़ विचार रखते हैं कि "जो कुछ हम करते हैं वह सब ईश्वर के लिये करते हैं, अपने लिये कुछ नहीं करते" और साथ ही कर्मों के फल-स्वरूप स्वर्ग, स्त्री, पुत्र, धन आदि की वासना नहीं रखते, वह मोक्ष रूपी शान्ति को पा जाते हैं। उनको ईश्वर की भक्तिमें रहते रहते परम शान्ति, दर्जे बदर्जे, इस भांति मिलती है —पहिले अन्तःकरण की शुद्धि होती है; उसके बाद उनको नित्य अनित्य वस्तुका ज्ञान होता है इसके भी पीछे, तीसरे दर्जे पर, उन्हें पूर्ण संन्यास हो जाता है; सब से पीछे, उन्हें परम शान्ति रुपी मोक्ष मिल जाती है। किन्तु जो अनस्थिर-चित्त हैं, जो अपने कर्मों को ईश्वरके लिये नहीं समझते, जो अपने कर्मों को अपने लिये समझते हैं, अपने कर्मों के फलोंकी चाहना रखते हैं, यानी जिनके ख्याल ऐसे हैं कि हम ये कर्म अपने फ़ायदेके लिये करते हैं, इन कर्मों से हमें स्वर्ग या स्त्री, धन वगैरः मिलेंगे, वह लोग कर्म-बन्धनमें मज़बूती से जकड़ जाते हैं, उन लोगों को जन्मना और मरना पड़ता है; क्योंकि उनकी मोक्ष नहीं होती।

इन सब का खुलासा यह है, कि मनुष्य को कर्म छोड़ने से कुछ लाभ

नहीं है। उसी कर्म करके, अपने कर्मों के फलकी इच्छा न रखने और अपने सभी कर्मों को ईश्वरके लिये समझने में लाभ है। इस रीतिसे कर्म करनेवाला, उपरोक्त विधिसे, दर्जे बदर्जे,मोक्ष पाजाता है।

यहाँ तक भगवान् ने यह कहा है, कि जिसका अन्त:करण शुद्ध नहीं है उसी कर्म-संन्यास से कर्म-योग अच्छा है। आगे, वह जिसका अन्त:करण शुद्ध है उसके लिये कर्म-संन्यासको अच्छा बतावेंगे।

शुद्ध अन्त: करणवाला देहका मालिक—जीव—मनसे सारे कर्मोंको त्याग कर, न तो कुछ करता हुआ और न कुछ कराता हुआ नौ द्वारके नगर—शरीर—में सुखसे रहता है।

कर्म चार प्रकारके होते हैं :—नित्य, नैमित्तिक, काम्य, प्रतिषिद्ध। वह पुरुष जिसने अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है, मन, वाणी और कर्म से सारे कर्मों को त्याग देता है और विवेक बुद्धि से कर्म में अकर्म देखता हुआ सुखसे रहता है। उसके सुखसे रहनेका कारण यह है कि उसने मन, वाणी और कर्म से सारे कर्म त्याग दिये हैं। उसने किसी प्रकार का झंझट अपने साथ नहीं रक्खा है। उसका चित्त शान्त है, उसने आत्मा के सिवाय और सबसे अपना सरोकार छोड़ दिया है।

सब झंझटोंसे अलग हुआ सन्यासी शरीरमें रहता है। शरीर में नौ सूराख हैं। दो छेद दोनों कानोंमें हैं, दो दोनों आँखों में, दो नाकमें और एक मुंह में है। इस तरह यह सात छेद तो सिर में हैं। दो छेद नीचे हैं—एक पेशाब का और एक मलत्याग करने का। इस तरह कुल नौ छेद हुए। इन्हीं नौ छेदों को नौ द्वार और शरीर को नगर कहते हैं। शरीर रूपी नगर में ही सन्यासी का निवास है।

[शंका] संन्यासी, असंन्यासी सभी शरीरमें रहते हैं; केवल

संन्यासी भी तो शरीरमें नहीं रहता। फिर भगवान् केवल संन्यासी को ही नौ द्वार के नगर रूपी शरीर में रहनेवाला क्यों कहते हैं?

[उत्तर] भगवान् अर्जुन को उपरोक्त शंका निवारण करने के लिये कहते हैं कि विद्वान संन्यासी इस शरीरमें रहता हुआ भी अपनी आत्मा को देहसे अलग समझता है। वह अपनी देहको आत्मा नहीं मानता। इसी से कहते हैं कि वह शरीरमें निवास करता है। किन्तु मूर्ख तो बिलकुल उल्टा समझता है। वह अपनी देहको आत्मा मानता है। इसीसे समझता है कि मैं घर में रहता हूं, जमीन पर आराम करता हूं अथवा चौकी पर बैठता हूं। वास्तव में आत्मा देहमें रहता है। देह ही जमीन पर सोती, बैठती और चलती फिरती है। आत्मा तो उस के अन्दर जैसा सदा से है वैसा ही रहता है।

(शंका) जब ज्ञानी पुरुष सब कर्म छोड़ देता है तो काम करने अथवा करानेकी शक्ति तो उसके आत्मा मे रहती होगी?

(उत्तर) भगवान् कहते हैं—वह न तो स्वयं काम करता है और न शरीर तथा इन्द्रियोंसे काम कराता है।

(प्रश्न) क्या आपका यह मतलब है कि काम करने और काम कराने की शक्ति आत्मामें है और वह कामोंके छोड़ देने यानी संन्यासी होने से बन्द हो जाती है, अथवा यह मतलब है कि आत्मामें कर्म करने और कराने की शक्ति ही नहीं है।

(उत्तर) काम करने अथवा करानेकी शक्ति आत्मामें नहीं है; क्योंकि ईश्वर ने (२ अ० के २५वें श्लोक में) उपदेश दिया है कि आत्मा निर्विकार और अपरिवर्तनीय है। यद्यपि वह देहमें बैठा है, तथापि वह कुछ काम नहीं करता और न वह कर्म-फल में लिप्त होता है।

ईश्वर न कर्त्तापन को उत्पन्न करता है, न कर्मों को

उत्पन्न करता है, और न कर्म-फलके सम्बन्धको उत्पन्न करता है ; किन्तु प्रकृति ही सब कुछ करती है ।

आत्मा—शरीरका ईश्वर—कर्त्तापन को उत्पन्न नहीं करता अर्थात् वह खुद किसी को काम करने की तरग़ीब नहीं देता यानी यह नहीं कहता, "यह काम करो" न आत्मा स्वयं महल, मकान, गाड़ी, इत्यादि ज़रूरी चीज़ों को तय्यार करता है और न आत्मा उससे सम्बन्ध रखता है जो महल, मकान गाड़ी इत्यादि बनाता है ।

(*प्रश्न*) अगर शरीर में रहनेवाला आत्मा न कुछ कर्म करता है और न किसी से कराता है, तो वह क्या है जो काम करता है और दूसरों से कराता है ?

(*उत्तर*) वह प्रकृति अथवा स्वभाव है जो काम करती और कराती हैं। इस प्रकृति को ईश्वरीय माया भी कहते हैं। यह सतोगुण आदि गुणों से बनी हुई है। (देखो सातवें अध्याय का १४ वाँ श्लोक)

एक बात और समझने की है, कि इस श्लोकसे पहिले जीव निर्विकार ठहराया जा चुका है। यहाँ ईश्वर भी निर्विकार ठहराया गया है। परमार्थ में जीव और ईश्वर दोनों ही निर्विकार हैं। जीव और ईश्वर नाम से ही दो हैं। असल में दोनों एक ही हैं।

असल मतलब यह है,कि ईश्वर न तो कुछ करता है और न किसीसे कुछ कराता है, न किसी को फल भुगाता है और न आप भोगता है। अज्ञान या अविद्यारूपी दैवी माया जिसे प्रकृति भी कहते हैं कार्य करती और कराती है, ईश्वर सूर्यकी तरह चमकनेवाला है। किसी से कुछ कराता नहीं। जिस चीज़ का जैसा स्वभाव है वह अपने स्वभाव अनुसार ही काम करती है। सूर्य एक है। उसके उदय होने पर कमल खिल जाते हैं और कुमुद मुकड़ जाते हैं। सूर्य न किसी को खिलाता है और न किसी को संकुचित करता है। इसी तरह ईश्वर किसी से कुछ नहीं कराता। अनेक पदार्थ की

चेष्टा नहीं करते, किन्तु मनुष्य आदि अनेक प्रकारकी चेष्टा करते हैं। कह चुके हैं कि ईश्वर और जीवमें फ़र्क नहीं है। जिस तरह ईश्वर कुछ नहीं करता और किसी से कुछ कराता भी नहीं, उसी तरह शरीर में रहनेवाला आत्मा भी कुछ नहीं करता और न कराता है; किन्तु शरीर और इन्द्रियां प्रकृति के आधीन होकर यानी स्वभावसे ही सब प्रकार की चेष्टाएं करती हैं; इसी से कहते हैं कि आत्मा शरीर से अलग है। शरीर और इन्द्रियों के कामों और कामों के फल से उसका कुछ सम्बन्ध नहीं है।

ज्ञान और अज्ञान।

हे अर्जुन! ईश्वर न किसीके पापको ग्रहण करता है और न पुण्यको ग्रहण करता है। इस जीवके ज्ञान पर अज्ञानका पर्दा पड़ा है; इसीसे प्राणी मोहको प्राप्त होता है।

मतलब यह है, कि ईश्वर न किसी के पापसे सरोकार रखता है और न पुण्य से। "किसी के" से मतलब यह है कि वह अपने भक्तोंके पाप पुण्य से भी सरोकार नहीं रखता।

(प्रश्न) तब भक्त लोग हवन, पूजा, यज्ञ और अन्यान्य पुण्य-कर्म किस लिये करते हैं?

(उत्तर) इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं—ज्ञानको अज्ञान ने ढक रक्खा है; इसीसे अज्ञानी लोग संसार में धोखा खाते और समझते हैं, "मैं करता हूं, मैं कराता हूं, मैं भोगता हूं, मैं भुगाता हूं" इत्यादि।

हे अर्जुन! जिनका अज्ञान आत्मज्ञानसे नष्ट हो गया है उनका आत्मज्ञान उनके लिये सूर्यकी भांति पर-ब्रह्म को प्रकाशित करता है।

जब कि पहले कहा हुआ अज्ञान, जिसने जीवों के ज्ञान पर पर्दा डाल रक्खा है और जिस से लोग धोखा खाते हैं, आत्मज्ञान से नाश होजाता है, तब वही आत्मज्ञान परब्रह्म को उसी भाँति दिखा देता है जिस भाँति सूर्य, अन्धकार को नाश करके, दीखने योग्य चीजोंको दिखा देता है।

यहाँ अर्जुन के मन में यह शंका होती है कि आत्मज्ञान द्वारा परब्रह्म के दीखने पर क्या फल मिलता है? उसीका जवाब भगवान् नीचे देते हैं—

आत्मज्ञानी को और जन्म नहीं लेने पड़ते।

उस परब्रह्ममें ही जिनकी बुद्धि है, उसमें ही जिनका आत्मा है, उसमें ही जिनकी निष्ठा है, उसमें ही जो तत्पर रहते हैं, वही जिन का परम आश्रय है, जिन के पाप ज्ञान से नाश होगये हैं, वे जाकर फिर नहीं आते।

ऊपर आत्मतत्व के जाननेवालों के लक्षण और ज्ञान का फल कहा गया है।

जो ब्रह्मज्ञान में लगे रहते हैं, जो अपने आत्मा को ही परब्रह्म समझते हैं, वे तमाम कर्मों को त्याग देते हैं और एकान्त ब्रह्म मे ही निवास करते हैं। उस समग्र परब्रह्म ही उनका परम आश्रय होता है और वे अपने आत्मा में ही प्रसन्न रहते हैं, ऐसी दशामें, उनके समस्त पाप और संसार में आने यानी जन्म लेनेके कारण, ऊपर कहे हुए ज्ञान से, नाश हो जाते हैं। वे इस चोलेको त्याग कर फिर देह धारण नहीं करते; अर्थात् जन्म नहीं लेते। फिर जन्म न लेनेसे ही उनको सुख दुःखसे छुटकारा मिल जाता है; क्योंकि जन्म मरण के साथ ही दुःख सुख का मेल है। आत्मा से दुःख सुख का कुछ भी सरोकार नहीं है।

अब यह सवाल पैदा होता है, कि जिनका आत्माके विषय का अज्ञान नाश हो जाता है यानी जो आत्माकी असलियत को समझ जाते हैं उन ज्ञानियोंकी समझ कैसी हो जाती है? इसका जवाब नीचे है—

ज्ञानी सब जीवोंको अपने समान समझता है ।

ज्ञानी लोग विद्या और नम्रतासे युक्त ब्राह्मण में, गायमें, हाथीमें तथा कुत्ते और चाण्डालमें समान भावसे देखते हैं ।

मतलब यह है, कि वे ब्राह्मण को, जिसने अच्छी शिक्षा पाई है, जो संस्कारों से शुद्ध है और जिस में सतोगुण प्रधान है, अपने आत्माके समान समझते हैं अथवा यों कहिये कि उसमें वह परमात्माको देखते हैं । दूसरे दर्जे पर गाय को, जो न तो संस्कारों से शुद्ध है और जिस में रजोगुण की प्रधानता है, अपने आत्माके समान देखते हैं यानी उसमें भी परब्रह्म को देखते हैं । तीसरे दर्जेपर, हाथी को लीजिये जिसमे तमोगुण प्रधान है । वे लोग हाथी को भी अपने आत्माके समान देखते हैं यानी उस में भी उसी एक परमात्मा को देखते हैं ।

सब का सारांश यह है, कि ज्ञानी लोग ऊँचे दर्जे के ब्राह्मण से लेकर नीचे दर्जे के चाण्डाल और कुत्ते को भी अपने समान समझते हैं । उनका ख्याल है कि जो आत्मा हममें है वही उन सब में है ; अतः उनमें और हम में छुटाई बड़ाई और कुछ भेद भाव नहीं है ।

जिनका मन समानता पर डटा हुआ है अर्थात जो सबको सम दृष्टिसे देखते हैं, उन्होंने जीते जी ही संसार जीत लिया है ; क्योंकि ब्रह्म दोष-रहित और समान है; इसी कारण से वे ब्रह्म में स्थित हो जाते हैं ।

इस का खुलासा यह है कि संसार दोषों से भरा हुआ और विषम है ; किन्तु ब्रह्म निर्दोष और सम है । बस इसी कारणसे, वे ब्रह्ममें स्थित रहते हैं । ब्रह्म में स्थिति होने के कारण से ही, उन्होंने जग जीत लिया है । अगत्

सदोष है और ब्रह्म निर्दोष है। निर्दोष ब्रह्म में रहकर ही ज्ञानी इसी देह से संसार को जीत लेते हैं।

जरा साफ करके यों कह सकते हैं, कि जिन ज्ञानियों की समझ में एक परब्रह्म है और जो समस्त प्राणियों में एक ब्रह्म मानते हैं यानी सब प्राणियों के ब्रह्म को, चाहे वह ब्राह्मण हो, चाहे चाण्डाल, समान भावसे देखते हैं, किसी ब्रह्म को पवित्र अपवित्र, नीचा ऊँचा, नहीं समझते, वे, जीवित दशा में ही, जन्म लेनेके झंझटसे छुटकारा पाजाते हैं। जब उन्होंने जीते हुए दो भाव नहीं रक्खे यानी जीते हुए ही सब प्राणियों के ब्रह्म को समान समझ लिया तब वे शरीर छोड़ने पर क्यों दो भाव समझेंगे? क्योंकि परब्रह्म निर्दोष और सम है, वह जन्म मरण आदि विकारों से रहित, अद्वितीय रूप है तथा सदा एक सा रहनेवाला है, इसी से समदर्शी विद्वान उस अद्वितीय ब्रह्म मे कुछ फ़र्क न समझकर, निश्चल भाव से, उस में स्थित रहते हैं।

लेकिन मूर्ख अथवा अज्ञानी लोगोंका ख्याल है, कि कुत्ता और चाण्डाल वगैर: प्राणियों के अपवित्र शरीर में जो ब्रह्म है वह उनकी अपवित्रता से दूषित हो जाता है। लेकिन वास्तव में ब्रह्म तो निर्विकार है। उसमें उन चाण्डाल वगैर: की अपवित्रता से कुछ दोष नहीं लग सकता। ब्रह्म अनादि काल से है। वह आरम्भ से जैसा है सदा वैसा ही रहता है। उस म कुछ भी तबदीली नहीं होती। भगवान् ने जो इच्छा वगैर: के विषय में कहा है उन का सम्बन्ध क्षेत्र—शरीर—से है; आत्मा से इच्छा वगैर: का कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्हों ने इसी गीता के तेरहवें अध्याय के ३१वें श्लोक में कहा है—"यह परब्रह्म अनादि है, गुणरहित है, अविनाशी है, हे अर्जुन! यह शरीर में रहता हुआ भी न तो कुछ कर्म करता है और न कर्म-फलों से दूषित होता है।"

चीज़ों में अपवित्रता दो भाँति की होती है—स्वभाव से ही जो चीज़ें

पवित्र होती हैं वे अपवित्र चीज़ों के साथ मिलने से अपवित्र हो जाती हैं : जिस तरह "गङ्गाजल"। मतलब यह कि गङ्गाजल पवित्र है किन्तु पेशाबके मटे में डाल देने से अपवित्र होजायगा। लेकिन कुछ चीजें स्वभाव से ही अपवित्र होती हैं जैसे "पेशाब"। किन्तु ब्रह्म के विषय में यह बात नहीं है। मूर्खों का ख्याल है कि कुत्ते और चाण्डाल वगैर: अपवित्र प्राणियों के संसर्ग से ब्रह्म भी अपवित्र हो जाता है। परन्तु ब्रह्म के विषय में उनका ऐसा ख्याल करना उनकी अज्ञानता है। ब्रह्म तो आकाश की भाँति असंग है। उस असंग ब्रह्म को किसी का दोष नहीं लग सकता।

ज्ञानीको रञ्ज और खुशी नहीं होती।

मोह-हीन, सन्देह रहित, ब्रह्मको जाननेवाला और ब्रह्ममें स्थित रहनेवाला प्यारी चीज़को पाकर खुश नहीं होता और अप्यारी अथवा बुरी चीज़को पाकर रञ्ज नहीं करता।

खुलासा यह है कि जो पुरुष अच्छी वस्तुके मिलनेसे खुश नहीं होता और बुरी वस्तु के मिलने से दुःखी नहीं होता, वही ब्रह्मज्ञानी है, वही मोह रहित और स्थिर बुद्धिवाला है।

और भी साफ़ मतलब यह है,—

चित्त को प्रसन्न और अप्रसन्न करनेवाली चीजें उसी पुरुषका चित्त प्रसन्न और अप्रसन्न कर सकती हैं जो शरीरकोही आत्मा समझता है; किन्तु जो शरीरसे आत्मा को जुदा समझता है उसे बुरी और भली चीजें दुःखी और सुखी नहीं कर सकतीं। जो सबकी आत्मा को एक और एक सा तथा निर्दोष समझता है वह भ्रम रहित है। वह उपरोक्त विधि से ब्रह्म में स्थित रहता है; यानी वह कर्म नहीं करता है, उसने सारे कर्म छोड़ दिये हैं; यही कारण है कि ऐसे ज्ञानी को रञ्ज और खुशी नहीं होती।

ज्ञानीका अक्षय सुख।

जो अपनी बाह्य इन्द्रियों*—कान आँख आदि—को अपने आधीन करके, इन्द्रियोंके विषय—शब्द, रूप, रस आदि में मोह नहीं रखते, वे अपने अन्तःकरणमें शान्ति रूप सुखका अनुभव करते हैं। इस शान्तिसे—तृष्णा रहित होकर—ब्रह्ममें ध्यान लगा कर, वे अक्षय सुख पाते हैं।

खुलासा—जब कि पुरुष का अन्तःकरण इन्द्रियों के विषय शब्द रूप रसादि से प्रेम नहीं रखता और उन इन्द्रियों के विषयोंसे दूषित नहीं होता; तब उस के अन्तःकरण में सुख होता है—चित्त एक दम शान्त हो जाता है। इस प्रकार की शान्ति प्राप्त हो जाने के बाद, जब वह योग द्वारा समाधि लगा कर ब्रह्मके ध्यान में लवलीन हो जाता है तब उसे अक्षय—नाश न होनेवाला—सुख मिलता है। अतः जिसे आत्मा के अमित या अनन्त आनन्द की इच्छा हो, वह क्षणिक सुख देनेवाले विषयों से इन्द्रियों को हटा ले।

नीचे लिखे कारण से भी पुरुषके लिये अपनी इन्द्रियोंको विषयों से रोक लेना चाहिये—

क्योंकि इन्द्रियोंके विषयोंसे जो सुख होते हैं वे सिर्फ दुःखके पैदा करनेवाले हैं। हे कुन्ती पुत्र अर्जुन! उन सुखोंका आदि और अन्त है; इसी से ज्ञानी लोग विषयों में सुख नहीं समझते।

---

* आँख, कान, नाक, जीभ, और त्वचा, ये बाह्य इन्द्रियां हैं। आँखका विषय रूप देखना, कान का विषय शब्द सुनना, नाक का विषय गन्ध सूंघना, जीभ का विषय रस चखना और त्वचा यानी चमड़े का विषय छूना है।

इन्द्रियों के संयोग और उन के विषयों से जो सुख मिलते हैं वे केवल दुःख के पैदा करनेवाले हैं, वास्तव में, उनमें सुख नहीं है। अविद्या—अज्ञान—से उन में सुख जान पड़ते हैं। खूब छानबीन और खोज करने से मालूम होता है, कि जितने दुःख हमें इस काया में उठाने पड़ते हैं उन सब का कारण वही एक मात्र विषयों से उत्पन्न हुए सुख हैं। यह देख कर कि संसार में सुख का लेश भी नहीं है, ज्ञानी लोग अपनी इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषयों से हटा लेते हैं। एक बात और भी है, कि उन सुखों से दुःख ही नहीं होता; बल्कि उन में एक दोष और भी है। वह दोष यह है, कि उनका आदि और अन्त भी है; यानी वह सुख पैदा भी होते हैं और नाश भी हो जाते हैं। इन्द्रियों के साथ विषयों का संयोग होने से सुख का आरम्भ होता है और जब विषय और इन्द्रियों की जुदाई हो जाती है तब सुख का अन्त हो जाता है। जिस सुख का इस तरह आरम्भ और अन्त होता है वह क्षणस्थायी है। वह पुरुष जिस में विचार बुद्धि है, और जिसने परम आत्मा तत्वको समझ लिया है, वह ऐसे चन्दरोज़ा - क्षण स्थायी---सुखों में सुख नहीं समझता। वह बिल्कुल अज्ञानी पशु हैं, जो इन्द्रियों के विषय भोगों में सुख समझते हुए देखे जाते हैं।

निर्वाण पथ ।

जो महापुरुष जीतेजी, शरीर छुटनेके समय तक, काम और क्रोध के वेगोंको सह सकता है, वही योगी और वही सुखी है।

मौतके समय तक की हद बांध कर, भगवान् उपदेश देते हैं कि काम और क्रोध का वेग जीवनमें अनिवार्य्य या दुर्निवार्य्य है; क्योंकि काम और क्रोध के वेग के कारण अनगिनती हैं; उनके वेगों को मृत्यु के ठीक समय तक टालना चाहिये। काम का अर्थ 'इच्छा' है। दिल खुशकरनेवाली

प्यारी चीज़ की चाहना या इच्छा को "काम" कहते हैं। यह इच्छा हमें उस समय होती है जब हमारी अनुभव की हुई प्यारी चीज़ हमारी इन्द्रियों के सामने आती है अथवा हम उस के विषय में सुनते या उसको याद करते हैं। क्रोध अप्रिय चीज़ से घृणा करने को कहते हैं। जब कोई ऐसी चीज़ हमारे सामने आती है जो हमारे मन के अनुकूल नहीं है अथवा हमारी इन्द्रियाँ उसे पसन्द नहीं करतीं तब दुःख होता है। इसी तरह अप्रिय बात के सुनने अथवा याद करने से दुःख होता है। उस दुःख से क्रोध होता है।

काम का वेग अन्तःकरण की उत्तेजना है। जिस समय यह वेग आता है तब मनुष्य के रोएँ खड़े होजाते हैं और चेहरे पर प्रसन्नता झलकने लगती है। क्रोध का वेग मन की उत्तेजना है। क्रोध होनेसे मनुष्य का शरीर काँपने लगता है, पसीने आजाते हैं, आँखें सुर्ख़ हो जाती हैं और वह होठ काटने लगता है इत्यादि। वह मनुष्य जो काम और क्रोध के धक्के --वेग-- सह लेता है यानी न तो किसी चीज़ की इच्छा रखता है और न कभी प्रिय वस्तु के न मिलने या अप्रिय वस्तु के देखने आदि से दुःखी होकर क्रोध करता है, वह मनुष्य योगी है और वही इस लोक में सुखी है।

बुरे भले, इस लोक सम्बन्धी या परलोक सम्बन्धी, सभी पदार्थों की कामना—चाहना---अनर्थों की जड़ है। कामना से क्रोध की पैदायश है। मनुष्य को चाहिये कि अपनी कामना और क्रोध के झटकों को सहे। उन्हें अपने सिर पर न आने दे, उन्हें सदा दबाता रहे। कुछ दिन इसी तरह इन दोनों के दबाने का अभ्यास करने से ऐसी आदत पड़ जायगी कि फिर न किसी चीज़की इच्छा ही होगी और न क्रोध ही आवेगा।

अधिकारी पुरुष काम क्रोध के झटके सहने से ही मोक्ष नहीं पाजाता, इसके सिवाय उसका और भी कुछ कर्त्तव्य है, वही अभि कहा जाता है—

जिसे अपनी आत्मामें ही प्रसन्नता है, जो अपनी आत्मामें ही विहार करता है और जिसकी दृष्टि अपनी आत्मा पर ही है, वही योगी ब्रह्म रूप होकर ब्रह्म के निर्वाण पदको पा जाता है ।

खुलासा—काम क्रोध के त्यागने से पुरुष को अखण्ड अन्तःसुख मिलता है, तब वह अपने आत्मा मे ही सुखी रहता है। जब वह अपने आत्मा म ही सुखी रहता है, तब उसे विषय भोगो से नफरत हो जाती है, यानी विषयो के सुख को सुख नहो समझता, इसी से वह अपने आत्मा मे ही विहार करता है और बाहरी पदार्थों म विहार नहीं करता। उसकी दृष्टि भीतर अपने आत्मा पर ही रहती है, इसो से उस को नजर गाने बजाने वगैर' पर नहीं पडती। इस तरह अपने आत्मामें ही सुख मानता हुआ, उसी मे विहार करता हुआ, उसी पर नजर रखता हुआ, महात्मा ब्रह्म मे लो-लीन होकर ब्रह्म के निर्वाण यानी मोक्षपद को पाजाता है।

जिनके पाप नाश हो गये हैं, जिनके सन्देह छिन्न भिन्न होगये हैं, जिन्होंने अपने अन्तःकरण को जीत लिया है, जो सब जीवोंकी भलाई चाहते हैं, वे ऋषि ब्रह्म निर्वाणको पाते हैं।

जिन्होंने शुद्ध ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जिन्हो ने सब कर्म त्याग दिये हैं, ऐसे ऋषि लोग सारे पापो के नाश हो जाने पर, मन के सारे सन्देहो की निवृति हो जाने पर, आत्मा के वशीभूत होने पर, सारे प्राणियो की भलाई चाहते हुए और किसी की भी बुराई की इच्छा न करते हुए, ब्रह्म निर्वाण—मोक्ष—पाजाते हैं।

जो काम और क्रोधको पास नहीं आने देते, जिन्हों ने अपने मन या अन्तःकरणको अपने आधीन कर लिया

है और जो आत्माको पहचान गये हैं, उनके लिये सब जगह ब्रह्म निर्वाण मौजूद है।

जिन्होंने समस्त कर्म त्याग दिये हैं, जिन्हों ने शुद्ध ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उनके लिये, जीते हुए या मर कर, हर हालत में, मोक्ष रूपी परमानन्द ही परमानन्द है।

ध्यान योगसे ईश्वर की प्राप्ति।

यह पहिले कहा गया है कि जो तमाम कर्मों को छोड़कर, शुद्ध ज्ञान में स्थिरचित्त रहते हैं, उन्हें शीघ्र ही मोक्ष मिलती है। यह भी कहा गया है कि कर्म-योग जो ईश्वर में भक्ति रख कर किया जाता है और जो उसी के अर्पण कर दिया जाता है उस से रफ़्ता रफ़्ता मोक्ष मिल जाती है—पहिले अन्त:करण शुद्ध होता है; तब ज्ञान होता है; पीछे कर्मों का संन्यास होता है और अन्त में मोक्ष मिलती है। अब भगवान् ध्यान-योग की कुछ विधि, संक्षेप से, उदाहरण की भाँति, आगे के दो श्लोकों में, कहते हैं; क्योंकि ध्यान-योग शुद्ध ज्ञान का निकटतम उपाय है। ध्यान-योगका विस्तार पूर्वक वर्णन छठे अध्याय में किया जायगा।

इन्द्रियों के रूप रस गन्ध आदि बाहरी विषयों को बाहर करके, नेत्रों की दृष्टि को दोनों भौं के बीच में ठहराकर, प्राण और अपान वायु को समान करके, इन्द्रिय मन और बुद्धिको वशमें करके, मोक्ष को परम आश्रय समझनेवाला और काम, भय तथा क्रोध से दूर रहनेवाला, ऋषि निश्चय ही मुक्त हो जाता है।

नोट —शब्द, रूप, रस आदि इन्द्रियों के विषय हैं। ये विषय बाहरी हैं। ये अपनी अपनी इन्द्रियों द्वारा अन्त:करण के भीतर

घुसते हैं। जैसे,शब्द या आवाज़ कान के द्वारा भीतर आती है और रूप आँख के द्वारा अन्तःकरण में पहुँचता है। जब मनुष्य इन विषयों की ओर ध्यान नहीं देता. इन का ख्याल नहीं करता, तब यह विषय बाहर ही रहते हैं, भीतर नहीं घुस सकते।

नेत्रों की दृष्टि को दोनों भौंओं के बीच में रखने की बात इसलिये कही गयी है कि आँखों के बहुत खोलने से रूप आदि बाहरी विषयों पर मनचलता है और बन्द कर लेने से नींद आजाने का भय रहता है; इसीलिये आँखों के बहुत न खोलने और बहुत न बन्द करने की बात कही गयी है।

प्राण और अपान वायु को समान करने से यह मतलब है, कि बाहर निकलनेवाली सांस और भीतर जानेवाली सांसको,जो नाक के भीतर होकर जाते आते हैं, समान कर के कुम्भक प्राणायाम करना चाहिये।

ऊपर के दो श्लोकों का खुलासा यह है कि इन्द्रियों के बाहरी विषयों को बाहर रख कर, दृष्टिको दोनों भौंओं के बीच में ठहरा कर और प्राण अपान वायुओं को समान रख कर, कुम्भक प्राणायाम करनेवाला मोक्ष को परम आश्रय समझ कर उसमें चित्त रखे। जो मुनि, सब कर्म त्याग कर, इस दशा मे शरीर को रखता है और जीवनभर इसी तरह का साधन जारी रखता है वह निस्सन्देह मुक्ति पाजाता है। उसे मोक्ष के लिये और उपाय करने की दरकार नहीं है।

कुम्भक करने की विधि किसी सिद्ध योगी से सीखनी चाहिये। किताबी ज्ञान से ऐसे विषय आ नहीं सकते। जो मनुष्य ऊपर बयान की हुई रीति से शरीर साध कर प्राणायाम करता है, उसे ध्यान-योग में किस के जानने या ध्यान करने की ज़रूरत है? इस का जवाब भगवान् नीचे देते हैं—

सब यज्ञों और तपोंके स्वामी, सब लोकोंके परमेश्वर,

सब प्राणियों के मित्र, मुझे, जाननेसे उसे शान्ति मिलती है।

खुलासा—मैं नारायण हूँ, मैं ही सारे यज्ञ और तपों का कर्त्ता और भोक्ता हूँ, मैं सब जीवों का मित्र हूँ। मैं सब जीवोंके साथ भलाई करता हूँ और बदले में कुछ नहीं चाहता। सब प्राणियों के अन्दर मैं ही हूँ। मैं ही सब कर्म-फलों के देनेवाला हूँ। मुझे जान जाने पर उसे शान्ति मिलती है यानी संसार में आना और यहाँसे जाना (जन्म मरण) बन्द हो जाता है।

छठा अध्याय।

जो पुरुष, कर्म-फलों की इच्छा त्याग कर, अपने करने लायक़ कर्म करता है, वह संन्यासी और योगी है ; न कि वह जो अग्निहोत्र और अपने कर्त्तव्य-कर्म नहीं करता।

संसारमें दो प्रकार के काम करनेवाले हैं—एक तो वह जो अपने किये हुए कामोंका फल (इनाम) चाहते हैं और एक वह जो अपने किये हुए कामों का कुछ फल नहीं चाहते। इस जगह उस पुरुषसे मतलब है जो अपने नित्य कर्म तो करता है; किन्तु उसके मनमें अपने किये हुए कर्मों के फल की चाहना नहीं है।

वह पुरुष जो अपने किये हुए कामों के फल की इच्छा त्याग कर, अग्नि-होत्र हवन आदि नित्य कर्म करता है यानी अपने कर्मों के फल स्वरूप स्वर्ग, स्त्री, पुत्र, राज पाट आदि कुछ भी नहीं चाहता, उस पुरुष से बहुत ऊंचा है जो अग्निहोत्र आदि नित्य कर्म करके, उनके फल स्त्री, पुत्र आदि की चाहना रखता है। इस सत्य पर ज़ोर डालने के लिये ही, भगवान् कहते हैं, कि वह पुरुष जो कर्म-फलोंकी इच्छा छोड़कर नित्य् कर्त्तव्य कर्म करता है, संन्यासी और योगी है। उस पुरुषमें त्याग (संन्यास) और चित्त की दृढ़ता (योग) दोनों गुण समझने चाहियें। केवल उसी को

सन्यासी और योगी न समझना चाहिये, जो न अग्निहोत्र करता है और न तपस्या वगैरः अन्यान्य कर्म करता है।

(शङ्का) श्रुति, स्मृति और योग-शास्त्रमें साफ लिखा हुआ है कि सन्यासी अथवा योगी वह है, जो न तो अग्निहोत्रके लिये आग जलाता है और न यज्ञ हवन आदि कर्म करता है। फिर क्या वजह है कि भगवान् यहाँ यह अद्भुत् उपदेश देते हैं कि जो अग्नि जलाता है और कर्म करता है वह सन्यासी और योगी है?

(उत्तर) यह कोई भूल या ग़लती नहीं है। संन्यासी और योगी, ये दोनों शब्द यहाँ अप्रधान अर्थ में इस्तेमाल हुए हैं। वह पुरुष सन्यासी तो इस लिये समझा गया है कि वह कर्मों के फल के ख्याल को भी त्याग देता है और योगी इसलिये समझा गया है कि वह योग प्राप्तिके लिये कर्म करता है, क्योंकि कर्म-फलोंका ख्याल न छोड़ देने से चित्त में स्थिरता नहीं आती। इसका आशय यह नहीं है कि वह वास्तवमें सन्यासी और योगी है।

खुलासा यह है, कि जो पुरुष केवल आग को नहीं छूता अथवा कोई काम नहीं करता, वह संन्यासी नहीं हो सकता। खाली इन कर्मों के छोड़ देनेसे कुछ लाभ नहीं है। असलमें, वही सच्चा सन्यासी है जो कर्म और कर्म-फलों को त्याग देता है।

भगवान् इस उलझनको आगे साफ करते हैं—

हे अर्जुन! जिसे संन्यास कहते हैं उसे ही योग कहते हैं। जिसने संकल्पोंको नहीं त्यागा है, वह ठीक योगी नहीं है।

खुलासा—हे अर्जुन! जिसे श्रुति स्मृतियों में सन्यास कहा है वही योग है; क्योंकि योग में भी संकल्प—इच्छाओं—को त्यागना होता है और संन्यास में भी।

(प्रश्न) योग कर्म करने को कहते हैं और संन्यास कर्म छोड़ने को कहते हैं, इनकी समानता किस अंश में पाई जाती है ?

(उत्तर) संन्यास और कर्म-योग में किसी क़दर समानता है। संन्यासी उसे कहते हैं जो समस्त कर्म तथा कर्म-फलोंके सम्बन्ध के संकल्प (जिससे कर्म करने की इच्छा होती है) को छोड़ देता है। कर्म-योगी भी कर्म तो करता है ; किन्तु कर्म-फलोंके संकल्पोंको वह भी छोड़ देता है। कोई भी कर्म करनेवाला, जब तक वह अपने कर्मोंके फलकी इच्छा नहीं त्यागता, योगी नहीं हो सकता। मतलब यह है, कि कर्म-फलकी इच्छा योगी और संन्यासी दोनोंको छोड़नी पड़ती है।

जब मनुष्य कर्म-फलोंकी इच्छा त्याग देता है तभी वह कर्म-योगी की पदवीको पहुँचता है। अगर कोई शख्स बिना कर्म फल त्यागे ही कर्मोंको छोड़ दे यानी संन्यासी होजाय तो वह वास्तवमें संन्यासी नहीं है। 'कर्म-योग ही संन्यासका द्वार है। जो पुरुष कर्म-योगमें पक्के नहीं होते, बिना कर्म फलोंकी इच्छा का त्याग किये ही संन्यासी हो जाते हैं यानी सारे काम छोड़ देते हैं, वे किसी कामके नहीं रहते। उनके ऊपर "धोबीका कुत्ता घरका न घाटका" वाली मसल बहुतही ठीक चरितार्थ होती है।

कर्म योग ध्यान योग की सीढ़ी है।

ऊपर भगवान् ने संन्यास और कर्म-योग की समानता बतायी है, क्योंकि संन्यास और कर्म-योग दोनोंमें ही कर्म-फलोंका संकल्प त्यागना होता है। इस छठे अध्यायके दूसरे मन्त्रमें भगवान् ने, कर्म-योगको संन्यासके समान कह कर, कर्म-योगकी प्रशंसा की है। कर्म-योग की प्रशंसा इस ग़रज़से की है, कि कर्म-योग जो कर्म-फलकी इच्छा त्यागकर किया जाता है, साधक को धीरे धीरे ध्यान-योग के लायक़ कर देता है। अब भगवान् आगे यह दिखाते हैं कि किस तरह कर्म-योगसे मनुष्य ध्यान-योगके लायक़ होता है अथवा कर्म-योग ध्यान योगका वसीला है।

जो मुनि योगारूढ़ होना चाहता है, उसे योग-प्राप्ति के लिये नित्य कर्म करने चाहियें। उसी मुनिको जब वह योगारूढ़ हो जाय, ध्यान-योग की प्राप्ति के लिये, शम रूप संन्यास का साधन करना चाहिये।

जब पुरुष कर्म-फलकी इच्छा त्यागकर कर्म करता है तब उसका अन्त:करण धीरे धीरे शुद्ध हो जाता है। उस समय उसे योगारूढ़ कहते हैं।

जो पुरुष कर्म-फल त्याग देता है और जो योगारूढ होना चाहता है यानी अपने अन्त:करणको शुद्ध और दृढ बनाना चाहता है उसे योगारूढ होनेके लिये निष्काम कर्म करने चाहियें। जब उसे सब विषयोंसे वैराग्य हो जाय, उसका अन्त:करण शुद्ध हो जाय, तब उसे किसी प्रकार के कर्म न करने चाहियें यानी उस हालतमें उसे संन्यासका साधन करना चाहिये। मतलब यह है, कि जब तक अन्त: करण शुद्ध न हो जाय तब तक उसे कर्म करने चाहियें। अन्त:करणके शुद्ध होने पर कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं। उस हालतमें संन्यास—कर्मों का त्याग—ही अच्छा है; क्योंकि संन्यासके ज़रियेसे ही वह ध्यान-योगमें लग सकेगा।

योगी कौन है?

जब मनुष्य, सारे संकल्पोंको छोड़कर, इन्द्रियोंके विषयों और कर्मों को त्याग देता है तब उसे योगारूढ़ कहते हैं।

खुलासा—जब योगी दृढ़चित्त होकर, इन्द्रियोंके विषय रूप रस आदिमें दिल नहीं लगाता और नित्य, नैमित्तिक, काम्य, अथवा प्रतिषिद्ध कर्मको,व्यर्थ समझ कर, करनेका नहीं ध्यान करता और जब उसे इस लोक और पर लोक सम्बन्धी इच्छाओंके पैदा करनेवाले सङ्कल्पोंके छोड़ देनेका अभ्यास हो जाता है,तब उसे योगारूढ़ कहते हैं।

मनुष्यको चाहिये कि अपने आत्माको ऊँचा चढ़ावे, उसे नीचा न गिरावे ; क्योंकि आत्मा ही आत्माका मित्र है और आत्मा ही आत्माका शत्रु है।

खुलासा यह है, कि जीवात्मा संसारके झंझटोंमे फँसा हुआ है। ज्ञानी को चाहिये कि अपने आत्माको संसारके झंझटोंसे निकाले, विषयोंसे किनारा खींचे, क्योंकि आत्माको संसारी झझटोंसे निकालनेसे,आत्मा द्वारा, उसकी मुक्ति हो जावगी। अपने आत्माको ससारी झंझटोंमे न फँसा रहने दे, क्योंकि उसके झझटोंमे फँसे रहनेसे उसको संसारी बन्धनोंमें भी फँसना पड़ेगा। आत्मासे ही आत्मा की मुक्ति होती है और आत्मासे ही आत्माको बन्धन में फँसना पड़ता है, इसीसे भगवान्‌ने आत्माको ही एक मात्र मित्र और शत्रु ठहराया है। आत्माके सिवाय इस जगत्‌में प्राणीका न कोई शत्रु है और न मित्र, यदि मनुष्यका आत्मा विवेक बुद्धि सहित और राग, द्वेष, मत्सर, ईर्ष्या आदिसे रहित हो तो वह मोक्ष दिलाता है और यदि व ही आत्मा विवेक बुद्धि रहित और राग, द्वेष, सहित हो तो बन्धनमें फँसाता है। जिस आत्मा द्वारा आत्माको मोक्ष मिले वही आत्मा मित्र है और जिसके द्वारा आत्मा बन्धनमे फँसे वही आत्मा शत्रु है।

नतीजा यह निकला, कि मनुष्यको योगारूढ़ होनेके लिये अपने आत्मा को ऊँचा चढ़ाना चाहिये यानी उसे विषयों से विरक्त करना चाहिये, क्योंकि यदि वह शुद्ध होजायगा तो परमपद मोक्षतक पहुँचाकर अपना, मित्र का सा, काम पूरा कर सकेगा। अगर मनुष्य अपने आत्माको नीचा गिरावेगा, उसे विषय वासनाओं मे फँसा रहने देगा, तो वही नीचे गिरा हुआ आत्मा उसको मोक्ष न होने देगा और उसे संसारके बन्धनोंमे फँसावेगा।

इसी बातको भगवान् अगले श्लोकमें साफ कर देते हैं—

जिसने अपने आत्मासे आत्माको जीत लिया है उस के लिये उसका आत्मा ही उसका मित्र है ; किन्तु

जिसने अपने आत्मासे आत्माको नहीं जीता है उसके लिये उसका आत्मा ही (बाहरी) शत्रुकी तरह शत्रु है।

खुलासा—जिसने अपने शरीर, इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरणको अपने वशमें कर लिया है उसके लिये उसका आत्मा ही उसका मित्र है; किन्तु जिसने अपने शरीर, इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरण अपने वशमें नहीं किये हैं उसके लिये उसका आत्मा ही, अन्यान्य बाहरी शत्रुओं की तरह, हानि पहुँचाता है।

अन्तःकरणके वश करनेसे क्या लाभ होता है?

जिसने अपने आत्माको जीत लिया है और जो शान्त है उसका परम आत्मा सर्दी गर्मी, सुख दुःख, और मान अपमानमें भी समान (अटल) रहता है।

जिसने अपने अन्तःकरणको वशमें कर लिया है और जो शान्त है वह सुख दुःख, सर्दी गर्मी और मान अपमान सबको समान समझता है; यानी उसे किसी हालतमें सुख दुःख नहीं जान पड़ता। ऐसे निर्द्वन्द्व आत्माका ही 'परमात्मा' समाधिका विषय होता है।

जिसका आत्मा ज्ञान और विज्ञानसे सन्तुष्ट है, जिसका मन चलायमान नहीं है, जिसने इन्द्रियोंको वश कर लिया है, उसे युक्तयोगी कहते हैं; क्योंकि उसके लिये मिट्टी पत्थर और सोना समान हैं।

जो विषय गुरु या शास्त्रसे जाना जाय उसे "ज्ञान" या "परोक्ष ज्ञान" कहते हैं। उसी विषयको जब मनुष्य युक्ति और शंकाओंसे साफ़ करके अनुभव करता है तब उसे "विज्ञान" अथवा "अपरोक्ष ज्ञान" कहते हैं।

जो मनुष्य सुहृद, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी, बन्धु, साधु और असाधुको एक नज़रसे

देखता है यानी सबको एक सा समझता है, वह योगि-योंमें श्रेष्ठ है।

जिसमें ममता और स्नेह न हो और जो बिना प्रत्युपकार की आशाके उपकार करे, उसे "सुहृद" कहते हैं। स्नेहके वश होकर जो भलाई करता है उसे "मित्र" कहते हैं। जो सामने और पीठ पीछे बुरा चाहे और वैसा ही करे भी, उसे "शत्रु" कहते हैं। जो दोके झगड़े में किसीका भी पक्ष न ले अथवा किसीकी भी बुराई या भलाई न चाहे, उसे "उदासीन" कहते हैं। जो दो आदमियोंके झगड़े में यथार्थ कहे यानी दोनोका भला चाहे, उसे "मध्यस्थ" कहते हैं। दूसरेका भला देखकर जो कुढ़े उसे "द्वेषी" कहते हैं। जो शास्त्रकी आज्ञा अनुसार चले उसे "साधु" कहते हैं और जो शास्त्रमें मना किये हुए काम भी करता है उसे "असाधु" कहते हैं।

योगाभ्यास की विधि।

हे अर्जुन! योगारूढ़ पुरुषको चाहिये, कि एकान्त स्थानमें, अकेले रहकर, अन्तःकरण और शरीरको वशमें रखकर, किसी प्रकारकी इच्छा न रखकर, कोई चीज़ अपने पास न रखकर, अन्तःकरणको निरन्तर समाधान करे यानी उसे समाधिमें लगावे।

सारांश यह है, कि योगी पुरुष को योगाभ्यास करने या समाधि लगाने के लिये किसी एकान्त स्थानमें रहना चाहिये। जहाँ मनुष्योंका आना जाना, रहना सहना अथवा भयानक जानवरोंका वास हो, वहाँ न रहना चाहिये। इस कामके लिये पर्वतकी गुफाएँ अच्छी हैं। अगर किसी गिरि-गुहामें भी रहे तो अकेला ही रहे, अपने साथ एक या दो चार आदमी न रखे, न वहाँ किसीको आने दे और न चेले चेली ही बुलावे। एकान्त स्थानमें, अकेला रहकर, किसी भी पदार्थ की चाहना न रखे।

सारांश यह है, कि उसे घर, द्वार, स्त्री, पुत्र, धन, दौलत, राज पाट आदि सबसे मुंह मोड़कर पूरा संन्यास ले लेना चाहिये।

आगे चलकर, योगाभ्यासीके लिये भगवान् बैठने, खाने और विश्राम आदि करनेके तरीके, जिनसे कि योगमें मदद मिलती है, बताते हैं। साथ ही योगारूढ के विशेष चिन्ह, योगके गुण और उसके सम्बन्ध की दूसरी बातें बताते हैं। सबसे पहले वह बैठने यानी आसन जमानेका एक खास तरीका बताते हैं।

साफ़ ज़मीनपर निश्चल आसन जमावे, ज़मीन न तो अत्यन्त ऊँची हो और न अत्यन्त नीची हो, उसके ऊपर कुशा बिछावे, कुशापर मृग-चर्म बिछावे और मृगचर्म पर कपड़ा बिछावे।

योगाभ्यासीको, पहिले, बैठनेकी जगह ऐसी ढूंढनी चाहिये जो साफ़ हो तथा ऊंची नीची न हो। यदि कोई जगह स्वभावसे साफ़ न मिले तो वह मिट्टी वगैर: से लीप कर साफ़ करलेनी चाहिये। तख़्त वगैर: पर बैठकर योगाभ्यास नहीं बनता; क्योंकि लकड़ीकी बनी चीज़के हिलनेका खटका रहता है; किन्तु ज़मीनपर यह खटका नहीं रहता। ऊंची जगह पर बैठनेसे ध्यानमग्न योगीके गिर पड़नेका डर रहता है और नीची ज़मीनपर बैठनेसे ऊपरसे पत्थर वग़ैरःके पड़नेका डर रहता है; इसीसे अत्यन्त ऊंची नीची ज़मीन अच्छी नहीं समझी गयी है। मतलब यह है, कि आसन ऐसी जगह लगावे जहां कुछ तकलीफ़ न हो।

आसन जमाकर क्या करना चाहिये ?

योगी उस आसनपर बैठकर, चित्त और इन्द्रियोंके कामोंको रोककर, चित्तको एकाग्र करके, अन्तःकरण की शुद्धिके लिये, योगका अभ्यास करे।

चित्तका स्वभाव है कि वह अगली पिछली बातोंको याद करता है। इन्द्रियोंका स्वभाव है कि वे अपने अपने विषयोंकी तरफ झुकती हैं। कान आवाज़ होनेसे उसे सुनना चाहता है, आँखें नयी चीज़ देखना चाहती हैं ; इसी तरह प्रत्येक इन्द्रिय अपने अपने विषयकी ओर झुकती है। अत: योगाभ्यासीके लिये अपने चित्तको तथा अपनी इन्द्रियोंको उनके कर्मोंसे हटाकर अपने आधीन कर लेना चाहिये। बिना चित्तके एक तरफ़ हुए और बिना इन्द्रियोंको उनके कामोंसे रोके योगाभ्यास नहीं हो सकता।

यहाँतक भगवान्ने आसनकी विधि कही, अब वह यह बतावेंगे कि शरीरको किस ढंगसे रखना चाहिये।

शरीर, सिर और गर्दनको स्थिर करके सीधा रक्खे, अपनी नाकके अगले भागपर दृष्टि रखे और इधर उधर न देखे।

मतलब यह है,कि योगाभ्यासी पुरुष अपने धड़, सिर और गर्दनको सीधा रक्खे; इन्हें सीधा रखने से दाहिने बायें किसी ओर नज़र न जायगी। लेकिन सीधा रखा हुआ शरीर हिल सकता है ; इसीलिये भगवान्ने उसे स्थिर—अचल—रखनेको कहा है। शरीर तथा सिर और गर्दनको टेढ़ा रखने तथा उनके हिलते रहनेसे ध्यान नहीं जम सकता ; इसलिये उन्हें सीधा और अचल रखना चाहिये। नाकके अगले भाग पर दृष्टि रखे यानी नाकके अगले हिस्सेको आँखसे देखता रहे, इसका यह मतलब नहीं है कि नाकके अगले भागको ही देखता रहे। भगवान् का मतलब यह है, कि दृष्टिको आत्मामें लगावे और उसे बाहरी पदार्थोंके देखनेसे रोके ; क्योंकि नाक पर दृष्टि रखने से समाधि नहीं लगेगी। वहाँ नज़र रखने से मन नाकके अगले भाग पर ही लगा रहेगा, आत्मामें नहीं लगेगा। नाकके अगले भाग पर मनके रहने से कुछ भी लाभ न होगा। मतलब तो चित्तके आत्मामें लगानेसे है ; नाकके अगले भाग पर दृष्टि रखनेका मतलब यही है, कि योगी

किसी ओर न देखे, एक चित्त हो जावे और आत्मामें ध्यान लगावे। शरीरको सीधा रखने, अचल रखने, और नाकके अगले भागको देखनेकी बात केवल इसलिये कही गयी है कि समाधि लगानेवाला शरीरको हिलावे नहीं और किसी तरफ़ न देखे यहाँतक कि अपने शरीरको भी न देखे। अगर किसी ओरसे भयानक शब्द हो या कोई जीवजन्तु काटे तोभी उसका ध्यान न छूटे। असल मतलब यह है, कि चित्तको सब तरफ़से हटाकर,उसे एकदम आत्मामें लगा देना चाहिये। यही बात भगवान्ने इसी अध्यायके २५ वें मन्त्रमें कही है। अब साफ़ तौर पर साबित होगया कि नाकके अगले भाग पर दृष्टि रखनेका मतलब आत्मा पर दृष्टि रखनेका है।

और भी कहा है—

मनको शान्त करके, निर्भय होकर, ब्रह्मचर्य्यव्रतमें स्थित होकर, मनको वशमें करके, मुझमें चित्त लगा कर, मुझे सर्व्वोत्कृष्ट या अपना पुरुषार्थ समझता हुआ, आसनपर बैठे।

खुलासा—राग, द्वेष, ईर्ष्या आदिसे मनको शान्त करके, मनको शंका या आपत्तियोंसे निर्भय करके, गुरुकी सेवा टहल करता हुआ और माँग कर खाता हुआ, मनको विषय भोगोंसे हटा कर, मुझ परमानन्द स्वरूप परमेश्वर में ध्यान लगाकर, योगाभ्यास करे। उसे हमेशा मुझ, परमेश्वर, परमात्मा का, ध्यान करना चाहिये। उसे चाहिये कि वह मुझे सर्व्वोत्कृष्ट अथवा परम आराध्यरूप समझे। स्त्री-प्रेमी सदा स्त्रीका ध्यान रख सकता है; किन्तु वह उसे परम आराध्य नहीं समझता। वह अपने राजाको या महादेवको या अन्य किसी देवको परम आराध्य समझ सकता है; किन्तु योगी इसके विपरीत हमेशा मेरा ध्यान करता है और मुझे ही परमात्मा भी समझता है।

आगे भगवान योगका फल बताते हैं:—

मनको वशमें रखकर, जो योगी पहिले कही हुई रीतिसे योगाभ्यास करता है वह मुझमें रहनेवाली शान्तिको पाता है यानी उसको मोक्ष हो जाती है।

आगे भगवान योगीके भोजन वगैर: के नियम बताते हैं—

हे अर्जुन ! जो बहुत ज़ियादा खाता है, जो बिल्कुल ही नहीं खाता, जो बहुत सोता है और जो बराबर जागता रहता है, उसे योग सिद्ध नहीं होता।

खुलासा—जो ज़रूरत से अधिक या शास्त्रके नियम-विरुद्ध अनापशनाप नाक तक ठूंस लेता है, उसे योग सिद्ध नहीं होता। जो बिल्कुल ही नहीं खाता यानी निराहार रहता है, उसे भी योग सिद्ध नहीं होता। जो ज़रूरत से ज़ियादा सोता है, उसे भी योग सिद्ध नहीं होता और जो सोता ही नहीं ; किन्तु जागता ही रहता है, उसे भी योग सिद्ध नहीं होता।

शतपथ ब्राह्मणमें लिखा है—

जो भोजन जिसके अनुकूल है वही उसकी रक्षा करता है ; उससे हानि नहीं पहुँचती। बहुत भोजन हानि करता है और कम भोजन रक्षा नहीं करता ; अतः योगीको न तो ज़रूरतसे अधिक खाना चाहिये न कम। योगी को चाहिये आधा पेट भोजनसे भरे, एक चौथाई जलसे और शेषका चौथाई हवाके घूमने को खाली रखे।

जो मनुष्य नियमानुसार आहार विहार करता है, नियमानुसार कर्म करता है, नियमानुसार ही जागता और सोता है, उसका योग उसके दुःखोंका नाश कर देता है।

योगीको चाहिये, कि शास्त्रके नियमानुसार इतना खाय, जिससे रोग न

हो और शरीर ठीक बना रहे। जो लोग अधिक खा लेते हैं उन्हें, अजीर्ण ज्वर आदि रोग हो जाते हैं। रोगी शरीरसे योग-साधन हो नहीं सकता ; इसी भाँति जो कम खाते हैं या निराहार रह जाते हैं उनकी अग्नि उनकी धातुओंको जला देती है ; इससे वे निर्बल और निस्तेज हो जाते हैं और योगाभ्यास नहीं कर सकते। इसी तरह बहुत चलना भी न चाहिये। शास्त्रमें एक योजन यानी ४ कोस से अधिक चलना ठीक नहीं कहा है। इसी भाँति रातको चार या साढ़े चार घण्टे सोना चाहिये और बाकी समय जागना चाहिये। बिल्कुल न सोनेसे काया कायम नहीं रह सकती और बहुत सोनेसे योग-साधनमें रुकावट पड़ती है। सारांश यह है, कि योगी को खाना, पीना, चलना, फिरना, जप वगैरः करना और सोना जागना नियम या प्रमाण से करना चाहिये। नियम पूर्वक खाने पीने आदिसे शरीर ठीक रहता है और योगाभ्यासमें विघ्न नहीं होता। योगाभ्यासके बराबर चले जानेसे, अविद्या नाश होकर, ब्रह्मविद्या की उत्पत्ति होती है। ब्रह्मविद्यासे अविद्या सहित सारे दुःख नाश हो जाते हैं।

जब मनुष्य अपने जीते हुए मनको एक मात्र आत्मा में लगा लेता है और किसी प्रकारकी कामना—इच्छा—नहीं रखता, तब वह सिद्ध योगी कहलाता है।

मतलब यह है, कि जब मनुष्यका चित्त एकाग्र होकर एकमात्र आत्मानन्द में मग्न होजाता है, जब उसे संसारी चीज़ोंसे कुछ सरोकार नहीं रहता और न उसे देखी या अनदेखी चीज़ोंकी चाहना रहती है, तब वह सिद्धयोगी कहलाता है।

जिस योगीने अपना चित्त वशीभूत कर रक्खा है और जो आत्मामें ध्यान-योगका अभ्यास करता है, उसका चित्त निर्वात स्थानके दीपकके समान अचल होता है।

खुलासा -जिस तरह पवनरहित स्थानमें रक्खा हुआ दीपक बिना हिले

होती जलता है ; उसी भाँति आत्मध्यानमें रत योगीका चित्त कभी हिलता डोलता नहीं यानी चलायमान नहीं होता। यहाँ आत्मध्यानमें लगे हुए योगी के चित्तकी स्थिरता की उपमा उस दीपकसे दी है जो बिना हवाके स्थानमें स्थिरतासे जलता है।

जब योगाभ्यासके कारण से रुका हुआ चित्त शान्त हो जाता है तब योगी समाधियों द्वारा शुद्ध हुए अन्तःकरणसे परम चैतन्य ज्योतिः स्वरूप आत्माको देखता है और अपने आत्मामें ही सन्तुष्ट रहता है।

बुद्धिमान जब उस अनन्त सुखको अनुभव कर लेता है जो केवल बुद्धि द्वारा ग्रहण किया जा सकता है, जो इन्द्रियोंके विषयोंसे दूर है यानी इन्द्रियोंसे स्वतन्त्र है,तब वह अपने आत्म-स्वरूपमें स्थिर होकर उससे कभी नहीं डिगता।

खुलासा --जब बुद्धिमान उस सुखको जान जाता है जो अनन्त है, जो इन्द्रियोंके विषयोंसे नहीं हो सकता, केवल शुद्ध बुद्धिसे ही ग्रहण किया जा सकता है, तब वह अपने आत्मामें ही स्थिर हो जाता है और वहाँसे कभी चलायमान नहीं होता ; क्योंकि इन्द्रियों द्वारा वह सुख हरगिज़ नहीं जाना जा सकता। वह सुख इन्द्रियोंके सुखसे बिल्कुल स्वतन्त्र है।

जब वह उस सुखको पा जाता है तब उससे अधिक किसी लाभको नहीं समझता। उस सुखमें स्थित होकर वह, बड़ा भारी दुःख पाकर भी, विचलित नहीं होता।

इसका आशय यह है, कि जब योगी उस अनन्त सुख को जान जाता है तब वह आत्मामें ही मगन रहता है। उसे और सारे सुख आत्मामें रत

रहनेके सुखसे हैय मालुम होते हैं। जब उसका चित्त आत्मामें समाजाता है तब वह तलवार आदिके आघात होनेपर भी उससे चित्तको नहीं हटाता।

जिस अवस्थामें ज़रा भी दुःख नहीं रहता उस अवस्थाका नाम ही 'योग' है। उस योगका अभ्यास स्थिर चित्त होकर तथा उद्वेग रहित होकर अवश्य करना चाहिये।

योगाभ्यास सम्बन्धी और बातें।

संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली तमाम इच्छाओंको बिल्कुल त्याग कर, विवेकयुक्त मनके द्वारा, सब इन्द्रियोंको सब ओर से रोककर, धीरे धीरे, दृढ़ बुद्धिसे, सबसे मन हटाकर, आत्मामें मनको लगाना चाहिये और किसी भी विषयकी चिन्ता न करनी चाहिये।

खुलासा—"जो कुछ है वह आत्मा ही है, आत्माके सिवा और कुछ भी नहीं है" यह सिद्धान्त मनमें रखकर पुरुषको बराबर आत्मामें ही लीन रहना चाहिये। यही योगका सबसे ऊँचा भेद है।

मन अपनी स्वाभाविक चञ्चलताके कारणसे भटकने लगता है। यह मन जहाँ जाय वहाँसे इसे लौटाकर आत्माके आधीन करना चाहिये।

खुलासा—मनका स्वभाव ही चञ्चल है; अतः वह अपनी स्वाभाविक चञ्चलताके कारण ही एक जगह नहीं ठहरता। शब्द आदि विषय इस मनको एक जगह नहीं ठहरने देते। अगर मनमें यह स्वाभाविक कमज़ोरी न होती तो मनका आत्मामें लगा देना कुछ मुश्किल न होता। मनका इन्द्रियोंके विषयोंसे चञ्चल हो जाना ही आत्मामें भी मनमें रुकावट करता है।

किन्तु मनको, विषयोंका थोथापन, उनमें कुछ भी सुखका न होना, संसारी पदार्थोंकी असारता आदि समझा कर, इनकी ओर जानेसे रोकना चाहिये। अगर वह अपने स्वभावके कारण विषयोंकी ओर चला ही जाय, तो उसे लाकर फिर आत्मामें लगा देना चाहिये। मन सहजमें वश न होगा, धीरे धीरे अभ्यास करनेसे और बार बार विषयोंसे हटाकर लानेसे वश होगा। सारा दार मदार मनके वश करने पर ही है; अतः मन पर सदा नज़र रखनी चाहिये। अभ्यास करते करते, चञ्चल मन आत्मामें एकाईसे ठहर जायगा। जब वह आत्मामें लग जायगा तब उसे शान्ति मिलेगी, दुःखका लवलेश भी न रहेगा।

ध्यान योगका फल।

जिसका मन बिल्कुल शान्त होगया है, जिसका रजोगुण नष्ट हो गया है, जो ब्रह्ममय और निष्पाप हो गया है, उस योगीको, निश्चयही, उत्तम सुख मिलता है।

खुलासा—जिसका मन एकदम शान्त हो गया है यानी जिसमें रागद्वेष आदि दुःखके कारण बिल्कुल नहीं रहे हैं, जो जीवन्मुक्त होगया है (जिसको मुक्ति जीते जी ही हो गयी है) यानी जिसके मनमें यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि 'सब ही ब्रह्म है' और इसी विश्वासके कारण जो निष्पाप हो गया है यानी जिसमें धर्म अधर्मकी छूत नहीं रह गयी है, ऐसे योगीको उत्तम सुख मिलता है।

इस तरह सदा अपने मनको आत्मामें लगानेवाला, धर्म अधर्मसे रहित योगी, आसानीसे, ब्रह्ममें मिलनेका अखण्ड—अनन्त—सुख पाता है।

मतलब यह है, कि सदा बिना विघ्न बाधाओंके योगाभ्यास करनेवाला अथवा लगातार मनको आत्मामें लगानेवाला ब्रह्ममें मिल जाता है और उसे

ऐसा सुख मिलता है जिसका कभी नाश नहीं हो सकता, क्योंकि इस मौक़े पर जीव और ब्रह्मकी एकता हो जाती है।

जिसका चित्त—अन्तःकरण—योगमें पक्का होगया है और जो सबको समान दृष्टिसे देखता है, वह सब जीवों में अपने आत्माको और अपने आत्मामें सब जीवोंको देखता है।

खुलासा—जिसका अन्तःकरण योगमें दृढ हो जाता है, वह समझने लगता है कि ब्रह्मासे लेकर घासके गुच्छे तकमें एक ही आत्मा है, किसीमें भेद भाव नहीं है, कोई अपना पराया नहीं है। आत्मा और परमात्मा एक ही हैं; इसीसे उसे सारे जगत्में, हर प्राणीमें, परमात्मा ही परमात्मा दिखायी देने लगता है।

जो सब प्राणियोंमें मुझे देखता है और सब प्राणियों को मुझमें देखता है, मैं उसकी नज़रसे ओट नहीं होता और न वह मेरी नज़रसे ओट होता है।

जो मनुष्य, सब प्राणियोंके आत्मा, मुझ, वासुदेवको, सब प्राणियोंमें देखता है और जो, ब्रह्मा—सृष्टिके रचनेवाले—तथा सब प्राणियोंको, सबके आत्मा, मुझमें देखता है, उस आत्माकी एकता देखनेवालेके पाससे मैं—ईश्वर—कभी दूर नहीं होता और न वह बुद्धिमान ही मुझसे दूर होता है यानी वह सदा मेरे पास रहता है और मैं सदा उसके पास रहता हूँ; क्योंकि उसका आत्मा और मेरा आत्मा एक ही है। जब उसका आत्मा और मेरा आत्मा एक ही है तब दोनोंके आत्मा एक दूसरेमें सदा मौजूद रहेंगे, इसमें क्या सन्देह है

जो सबको एक समझता है, सब जीवोंमें रहनेवाले मुझको भजता है, वह चाहें जिस तरह ज़िन्दगी क्यों न बसर करे, वह मुझमें ही रहता है।

ब्रह्मके साथ एकताकी प्राप्त हुआ ज्ञानी यानी अपने आत्माको ब्रह्म समझनेवाला अथवा सब जीवोंमें मुझे देखनेवाला और मुझमें सबको देखनेवाला, चाहे जिस तरीक़े से जीवन क्यों न चलावे, मुझमे ही रहता है। वह सदा जीवनमुक्त है (जीता हुआ ही मुक्त है)। उसकी मुक्तिकी राहमें कोई चीज़ रुकावट नहीं पैदा कर सकती।

हे अर्जुन! जिसे सबको एकतामें विश्वास है, जो सबके दुःख सुखको अपने दुःख सुखके समान समझता है, वह निश्चयही सबसे बड़ा योगी है।

जिसकी समझमें सब आत्माएं एक हैं, वह समझता है कि जिससे मुझे सुख होगा उससे दूसरोंको सुख होगा और जिससे मुझे दुःख होगा उससे दूसरोंको दुःख होगा। ऐसा ज्ञानी किसी प्राणीको दुःख नहीं पहुंचाता। जिसमें यह शुद्ध ज्ञान है, वह योगियोंमे श्रेष्ठ है यानी मैं उसे सब योगियोंसे ज़ियादा पसन्द करता हूं।

अभ्यास और वैराग्य, योगके निश्चित उपाय हैं।

हे मधुसूदन! आपने जो सबको एक समझनेका योग बताया, वह मनकी चञ्चलताके कारण सदा मनमें रह नहीं सकता।

सभी जानते हैं—

हे कृष्ण। मन चञ्चल, बलवान, हठी और बखेड़िया है। मेरी रायमें, जिस भाँति हवाका रोकना कठिन है, ठीक उसीतरह इस मनका रोकना भी कठिन है।

मन ख़ाली चञ्चलही नहीं है लेकिन बखेड़िया भी है। वह शरीर और इन्द्रियोंमें हलचल मचा देता है और उन्हें दूसरोंके आधीन कर देता है। वह किसी तरह भी दबने योग्य नहीं है। इसीसे कहता हूं, कि इसको

रोकना या आधीन करना जितना मुश्किल है ; मनका रोकना या आधीन करना भी उतना ही, बल्कि उससे कहीं अधिक,कठिन है।

भगवान्‌ने कहा—

हे महाबाहो ! यह बिल्कुल सच है कि मन चञ्चल है और इसका वश करना बहुत ही कठिन है ; लेकिन हे कुन्तीपुत्र ! अभ्यास और वैराग्यसे, मन वश में हो सकता है।

मन अपने चंचल स्वभावके कारण बारम्बार भटकता है। वह जितना बार भटक कर कुराहमें जाय, उसे उतनी ही बार सुराहमें लाकर लगा देना चाहिये ; इसीको 'अभ्यास' कहते हैं। मनुष्यके मनमें देखी और अनदेखी सुखकी चीज़ोंकी इच्छा पैदा होती है। उन चीज़ोंमें दोष निकाल कर,उनकी इच्छा न करना ही 'वैराग्य' कहलाता है। अभ्यास और वैराग्य द्वारा संसारी पदार्थोंसे मनकी गति रोकी जा सकती है। योगाभ्यासीके मनमें पहिले वैराग्य होना चाहिये पीछे अभ्यास। बिना वैराग्य हुए अभ्यास काम न देगा।

हे अर्जुन ! जिसने मन वशमें नहीं किया है उसे योग प्राप्त होना कठिन है ; लेकिन जो मनको वशमें करके योगकी चेष्टा करता है, वह योगको प्राप्त कर लेता है।

जान लेना चाहिये कि जीव और ब्रह्मकी एकताको 'योग' कहते हैं। जो पुरुष मनको बिना वश किये ही योग करता है उसे योग नहीं मिलता ; लेकिन जो वैराग्य और अभ्याससे मनको वशमें कर लेता है उसे योग—अनन्त सुख—मिल जाता है। बिना वैराग्य और अभ्यासके, मन वशमें नहीं होता और मनके बिना वश हुए हरगिज़ योग सिद्ध नहीं हो सकता। मालूम हुआ कि मनके वशमें करनेके वैराग्य और अभ्यास ही दो बड़े उपाय हैं।

योग पथसे गिरजानेवालेकी हालत ।

अर्जुनके मनमें यह ख्याल आया, कि अगर कोई पुरुष योगाभ्यासमें लग जाय यानी योग-साधनकी कोशिश करने लगे और लोक परलोक साधनके सारे कामोंको छोड़दे। अगर उस पुरुषको योग-सिद्धिका फल और मोक्षका ज़रिया—जीव और ब्रह्मकी एकताका शुद्ध ज्ञान—प्राप्त होनेके पहिले ही दैव-योगसे मौत आ दबावे और मृत्यु-समयमें उसका मन योगकी राहसे भटककर विषयोंमें जा लगे, तो उसकी क्या हालत होगी ? क्या योग-मार्गसे गिरा हुआ पुरुष नष्ट हो जायगा ? इस सन्देहको दूर करनेके लिये,

अर्जुनने कहा—

हे कृष्ण ! जो पुरुष अभ्यास नहीं करता है किन्तु योगमें विश्वास—श्रद्धा—रखता है, अगर ऐसे पुरुषका मन तत्वज्ञान—जीव ब्रह्मकी एकताका ज्ञान—पानेके पहिले ही योगसे छूट जाय तो उसकी क्या गति होगी ?

खुलासा - जिसका योगके बल या प्रभावमें विश्वास हो, लेकिन वह योग-मार्गमें चेष्टा न करता हो ; जीवनके अन्तिम समयमें, उसका मन योगसे छूट जाय तो योगका फल शुद्ध ज्ञान—जीव ब्रह्मकी एकताका ज्ञान पाये बिना उसकी क्या गति होगी ?

हे महाबाहो ! दोनोंसे भ्रष्ट हुआ और ब्रह्म-मार्गसे विमूढ़ हुआ वह पुरुष, क्या निराधार बादलके टुकड़े की तरह नष्ट नहीं हो जाता ?

मतलब यह है, कि कर्म-मार्ग और ज्ञान-मार्ग दोनोंसे भ्रष्ट हुआ और ब्रह्म-मार्गसे विचलित हुआ पुरुष क्या उस बादलके टुकड़े की तरह नाश नहीं हो जाता जो, और बादलोंसे अलग होकर, हवाके ज़ोरसे नाश हो जाता है ? क्योंकि यह न तो कर्म करके स्वर्ग आदि ही पासका और न शुद्ध ज्ञान प्राप्त

करके मोक्षका भागी हो सकता। क्या वह दोनों मार्गोंसे गिरकर—बहंक कर—नष्ट नहीं होगा?

हे कृष्ण! आप मेरे इस सन्देहको बिल्कुल दूर कर दीजिये; क्योंकि आपके सिवा और कोई ऐसा नहीं है जो सन्देहको दूर कर सके।

खुलासा—अर्जुन कहता है कि हे भगवन्! मेरे इस सन्देहको न तो ऋषि मुनि ही दूर कर सकते हैं और न कोई देवता ही दूर कर सकता है। एक मात्र आप ही इस सन्देहको दूर कर सकते हैं।

भगवान्ने कहा—

हे पार्थ! उसका न तो इस लोकमें और न परलोकमें कहीं भी नाश न होगा; हे तात! निश्चय ही, किसी भी अच्छा काम करनेवाले की बुरी गति कभी नहीं होती*।

भगवान्के कहनेका सारांश यह है, कि जो योग-भ्रष्ट हो जाता है उसे वर्त्तमान जन्मसे बुरा जन्म नहीं मिलता।

अर्जुन फिर सवाल करता है कि जब योग-मार्गसे भ्रष्ट होनेवालेकी बुरी गति न होगी—वर्त्तमान जन्मसे बुरा जन्म न मिलेगा—तब उसका क्या हाल होगा? भगवान् जवाब देते हैं—

जो योगभ्रष्ट होजाता है, वह मरनेके बाद पुण्यवानों के लोकोंमें पहुँच कर, वहाँ अनगिन्ती वर्षों तक वास करता है और पीछे किसी पवित्र और धनवान के घरमें फिर जन्म लेता है।

भगवान्ने यह बात ध्यान-योगमें लगे हुए संन्यासी के विषयमें कही मालूम पड़ती है। मतलब यह है कि जो योग-मार्गसे बहंक कर मरजाता है,

वह मरनेके पीछे उस लोकमें जाता है जिसमें अश्वमेध यज्ञ के करनेवाले जाते हैं। वहाँ वह पूर्ण सुख भोग कर, फिर, इस मृत्यु लोकमें, किसी वेदोक्त विधिसे कर्म करनेवाले धनवानके घरमें, जन्म लेता है।

अथवा, वह बुद्धिमान योगियोंके कुटुम्बमें ही जन्म लेता है। ऐसा जन्म इस लोकमें कठिनता से होता है।

मतलब यह है, कि अगर वह धनवान के घरमें जन्म नहीं लेता तो किसी निर्धन, परन्तु बुद्धिमान, योगीके घरमें जन्म लेता है। लेकिन धनवानके घर की अपेक्षा निर्धन योगी के घरमें जन्म बड़े भाग्यसे मिलता है।

वहाँ उसे पहिले जन्ममें अभ्यास की हुई विद्याका संयोग हो जाता है; तब वह पहले की अपेक्षा अधिक उत्साहसे मुक्ति पाने की चेष्टा करता है।

खुलासा—अब वह किसी बुद्धिमान योगीके घरमें अथवा वेद-विधिसे चलनेवाले धनीके घरमें जन्म लेता है तो वहां उसकी पहिले जन्मकी अभ्यास की हुई ब्रह्म-विद्या, फिरसे संयोग पाकर, ताज़ा होजाती है। उस समय वह मोक्ष पानेके लिये पहिले जन्म में की हुई कोशिशों की बनिस्बत और भी उत्साह—जोश—से कोशिश करता है।

अवश होने पर भी, पूर्वजन्मका अभ्यास उसे योग-मार्गकी ओर झुकाता है। वह पुरुष भी जो केवल योगके विषय को जानना चाहता है, शब्द ब्रह्मसे ऊपर पहुँच जाता है।

खुलासा—जबकि योगभ्रष्ट पुरुष किसी राजा महाराजा अथवा बुद्धिमानके घरमें जन्म ले, तब सम्भव है कि वह अपने मा बाप स्त्री पुत्र धन आदि के मोहमें फंसजावे, विषयोंके आधीन हो जावे, विषयोंके सामने उसका कुछ वश न चले; तोभी उसका पहिले जन्म का योग-साधनका अभ्यास

उसे योग-मार्गकी ओर झुकाता है। अगर उस पुरुषने कोई अधर्म न किया हो तो योगके असरको फौरन जीत होती है। अगर उस से अधर्म किया हो तो कुछ दिन योग का असर दबा रहता है ; लेकिन ज्योंही अधर्म का नाश हो जाता है त्योंही योग का असर अपना ज़ोर करने लगता है। योग का असर कुछ दिनके लिये अधर्म के ज़ोर के मारे छिप जाता है, परन्तु उसका नाश नहीं होता।

सारांश यह है कि जो योगी पूर्व जन्ममे योगभ्रष्ट हो जाता है वह अपने पहले योगाभ्यासके असरसे, विषय वासनाओंको छोड़कर, योग-मार्गमे काम करने लगता है। वह, केवल योग-रीति जानने की इच्छा करने के कारण, शब्द ब्रह्मसे छुटकारा पा जाता है यानी वेदमें कहे हुए कर्म काण्डों से छुटकारा पाजाता है ; तब उसका तो कहनाही क्या है जो योग को जानता है, रात दिन स्थिरचित्त होकर योगका ही अभ्यास करता है ? अर्थात् योगाभ्यासी के कर्म काण्डोंसे छुटकारा पानेमें तो सन्देह ही क्या है ?

खूब खुलासा यह है कि जो पुरुष, भूल से भी, क्षण भर के लिये, ऐसा विचार करता है कि "मैं ब्रह्म हूँ" वह जन्मजन्मान्तर के पापों से छुटकारा पा जाता है और जो क़ायदेसे योगाभ्यास करता है, ब्रह्मके विचारमें दृढ़ चित्तसे लीन रहता है, उसकी मुक्ति होने में क्या शक है ?

योगीका जीवन क्यों अच्छा है ?

जो योगी परिश्रम पूर्व्वक इस तरहकी चेष्टा करता है वह, पापों से शुद्ध होकर और अनेक जन्मोंमें योग-सिद्धि लाभ करके, उत्तम गति को पहुँच जाता है।

खुलासा—वह बारम्बार जन्म लेता है और धीरे धीरे, हर जन्ममें, योग में निपुणता प्राप्त करता रहता है। अन्तमें, अनेक जन्मोंमें लाभ की हुई

योग-निपुणता के मिल जानेसे उसे योग-सिद्धि हो जाती है। योग-सिद्धि होनेपर उसे शुद्ध ज्ञान हो जाता है। शुद्ध ज्ञानके होनेपर उसको मोक्ष मिल जाती है अर्थात् उसे फिर मरना और जन्म लेना नहीं पड़ता।

हे अर्जुन! योगी तपस्वियोंसे, ज्ञानियोंसे और अग्निहोत्र आदि कर्म करनेवालों से श्रेष्ठ है; इसलिये तू योगी हो।

खुलासा—जो पञ्चाग्नि तपते हैं, जो रात दिन धूनी लगाये रहते हैं, जो नदियोंमें खड़े खड़े जप किया करते हैं; जो व्रत उपवास कर करके अपनी देह को क्षीण कर डालते हैं, जो रात दिन शास्त्रोंके अर्थ-विचारमें लगे रहते हैं, जो अग्निहोत्र आदि कर्म करते हैं, जो कुएं तालाब बावड़ी आदि खुदाते हैं, धर्मशालाएं बनवाते हैं, उन सबसे योगी उत्तम है।

इसका मतलब यह नहीं है, कि उपरोक्त कर्म करनेवाले तपस्वी, विद्वान, व्रत करनेवाले, कुएं तालाब आदि बनवानेवाले ख़राब हैं अथवा ये कर्म न करने चाहियें। भगवान् ने इन सब कर्म करने वालोंसे योगीका मुक़ाबला किया है और इन सब से योगी को श्रेष्ठ ठहराया है। तात्पर्य्य यह है, कि उपरोक्त कर्म करनवाले भी दर्जे ब दर्जे अच्छे हैं; मगर योगीसे उन सबका दर्जा नीचा है।

जो श्रद्धापूर्व्वक, मुझमें दृढ़ता से चित्त लगाकर, मुझको भजता है, उसे मैं सब योगियोंसे उत्तम समझता हूं।

खुलासा—जो योगी रुद्र आदित्य आदिका ध्यान करते हैं उन सबसे वह योगी, जो एक मात्र मुझ, वासुदेव, में श्रद्धा पूर्व्वक चित्त लगाता है और मेरा ही भजन करता है, उत्तम है। और भी साफ़ यों कह सकते हैं कि महादेव सूर्य्य आदि देवताओंकी भक्ति करनेवालोंसे, मुझमें, अपने मैं

और संसारके प्राणिमात्र में भेद न समझनेवाला, सबको ब्रह्म समझनेवाला, एक मात्र ईश्वर, मुझ वासुदेवको भजनेवाले का दर्जा ऊंचा है।

सातवाँ अध्याय।

ध्यानसे ईश्वर की प्राप्ति।

छठे अध्यायके अन्तिम श्लोकसे कई प्रश्न उठते हैं, किन्तु अर्जुन ने एक भी प्रश्न नहीं किया। अर्जुन के बिना पूछे ही, उसके मन में उठे हुए प्रश्नों और शंकाओं का जवाब भगवान् इस सातवें अध्यायमें देते हैं। जिसका ध्यान या भजन किया जाय उसका स्वरूप जानना बहुत ही ज़रूरी और सबसे पहिली बात है ; इसीसे भगवान्ने कहा—

हे अर्जुन! अपना चित्त मुझमें लगाकर, योग साधन करता हुआ, मेरी शरण आकर, मुझे, तू पूर्ण रूपसे, सन्देह रहित होकर, जिस तरह जानेगा सो सुन।

खुलासा—योगी योग साधन करता है अथवा चित्तकी दृढता का अभ्यास करता है और मेरा आश्रय लेता है, मेरी शरण मे आता है, किन्तु जो मानवीय फल प्राप्त करना चाहता है वह अग्निहोत्र, तपस्या, दान वगैर: कर्म करता है। योगी इसके विपरीत सब उपायोंको छोड़कर, अपना चित्त एक मुझमें लगा कर मेरी ही शरण लेता है। हे अर्जुन! ध्यान लगाकर सुन, मैं तुझे वह तरकीब बतानेवाला हूं जिससे तू पहिले कहे हुए कर्मों को करता हुआ, मुझे, पूरे तौरपर, बिना किसी प्रकार के संशय के जान जायगा ; यानी तुझे इस बातका ज्ञान निस्सन्देह हो जायगा, कि भगवान् ऐसे हैं।

मैं तुझे इस ज्ञानको अनुभव और युक्तियों सहित सिखाऊँगा, जिसके जान लेनेपर यहाँ और कुछ जानने को बाक़ी नहीं रहता।

ख़ुलासा—इस ईश्वरीय ज्ञानको मैं तुझे ख़ाली शास्त्रोंके ढंग से नहीं सिखाऊँगा बल्कि अनुभव और युक्तियोंसे सिखाऊँगा। वह ज्ञान ऐसा है कि उसके जाननेवाला सर्वज्ञ और सर्व्वदर्शी हो जाता है। उसके जान जानेवाले को फिर इस जगतमें और कुछ भी जानने की जरूरत नहीं रहती, उसके जानजाने से मोक्ष मिल जाती है। मोक्ष के उपाय जानने के सिवा और जानने की बात ही क्या है? लेकिन इस ज्ञानका प्राप्त करना है कठिन।

हज़ारों मनुष्योंमें से कोई एक कदाचित इस ज्ञानके जानने को कोशिश करता है; कोशिश करने-वालोंमें से कोई एक शायद मेरे स्वरूप को ठीक ठीक जानता है।

ईश्वरीय प्रकृति से सृष्टिका फैलाव।

हे अर्जुन! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार—इस तरह मेरी प्रकृति आठ प्रकार की है।

ख़ुलासा—यहाँ "पृथ्वी" शब्द "गन्ध" तन्मात्राके लिये, "जल" शब्द "रस" तन्मात्राके लिये, "अग्नि" शब्द "रूप" तन्मात्रा के लिये, "वायु" शब्द "स्पर्श" तन्मात्राके लिये और "आकाश", "शब्द" तन्मात्रा के लिये प्रयोग किया गया है। मतलब यह है, कि ऊपर जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश लिखे गये हैं उनसे उनके मूल तत्त्व—गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और

शब्द, समझने चाहिये। इसी भाँति "मन" अपने कारण "अहङ्कार"की जगह आया है। "बुद्धि" "महत्तत्व के लिये आयी है, क्योंकि महत्तत्व अहङ्कार का कारण है; और "अहङ्कार" "अव्यक्त" की जगह आया है। जिस तरह विष मिला हुआ भोजन विष कहलाता है उसी तरह अव्यक्त, प्रथम कारण, अहंकारकी वासना से मिलकर अहंकार कहलाता है; अहंकारसे ही शब्द, रस, रूप आदि पैदा हुए हैं; इसको अपने साधारण अनुभव से भी मालूम होता है कि हर जीव की चैतन्यता का कारण "अहङ्कार" है।

खुब खुलासा यह है, कि अव्यक्त से महत्तत्व, महत्तत्व से अहंकार और अहंकार से गन्ध, रस, रूप आदि पैदा हुए हैं और इन सबसे यह जगत् रचा गया है।

सारांश यह है, कि ईश्वर की प्रकृति इन आठ भागोंमें बंटी हुई है— (१) गन्ध (२) रस (३) रूप (४) स्पर्श (५) शब्द (६) अहंकार (७) महत् तत्व (८) अव्यक्त। इस आठ प्रकारकी प्रकृतिके अन्तर्गत ही यह सारा जड प्रपञ्च है। यों भी कह सकते हैं, कि यह सारा जगत् इसी आठ प्रकार की प्रकृतिसे रचा गया है। इसीको ईश्वरीय माया भी कहते हैं।

यह अपरा प्रकृति है; इससे भिन्न मेरी जीवरूप परा प्रकृति है,जिसने इस जगत्को धारण कर रक्खा है।

खुलासा—मेरी प्रकृतियाँ दो भाँति की हैं। दोनोंमें बिल्कुल समानता नहीं है। एक दूसरीमें उतना ही भेद है जितना कि रात और दिनमें। इन दोनोंमें एक जड़ और दूसरी चेतन है।

जिस आठ प्रकारकी प्रकृतिका ज़िक्र मैं अभी अभी कर चुका हूं, वह "अपरा" प्रकृति है। यह प्रकृति नीचे दर्जे की है; क्योंकि यह अनेकानेक अनर्थ कराने वाली, संसार-बन्धनमें फंसानेवाली और जड़ है।

इस "अपरा" प्रकृतिके सिवा जो मेरी एक प्रकृति और है, वह "परा" प्रकृति है। वह प्रकृति ऊँचे दर्जे की है ; क्योंकि वह शुद्ध है, मेरी आत्म-स्वरूपा है, उसीने इस जड़ जगत् को धारण कर रखा है।

मतलब यह है, कि मेरी इन जड़ और चेतन दोनों प्रकृतियोंसे ही जगत् की रचना हुई है। इन दोनों प्रकृतियोंमें मेरी "परा" प्रकृति श्रेष्ठ है ; क्योंकि उसीसे जीवकी इन्द्रियोंमें चैतन्यता है, वह मेरी खास आत्मा है। "अपरा" प्रकृति खेत रूप है और "परा" प्रकृति उसमें जीव-रूप बीजस्थ है।

सारांश यह है कि इस जड़ जगत्में—प्राणीकी कायामें—मैं, भगवान, ही जीवरूपसे घुसा हुआ हूँ।

हे अर्जुन! तू इस बातको जान रख, कि सारे प्राणी इन दोनों प्रकृतियोंसे ही पैदा हुए हैं; इस-लिये मैं ही सारे जगत्का पैदा करनेवाला और नाश करनेवाला हूँ।

खुलासा—मेरी 'अपरा' और 'परा' दोनों प्रकृतियोंसे ही समस्त प्राणी पैदा होते हैं। यानी मेरी प्रकृतियाँ ही सब प्राणियोंकी उत्पत्तिस्थान—गर्भकोष—हैं: इसलिये मैं ही इस जगत्का आदि और अन्त हूँ। यानी इन दो प्रकारकी प्रकृतियोंके द्वारा, मैं सर्व्वज्ञ सर्व्वदर्शी ईश्वर जगत् की रचना करता हूँ।

हे धनञ्जय! मुझ परमेश्वरसे ऊँचा और कोई नहीं है ; जिस तरह सूतमें मणियोंके दाने पोये रहते हैं उसी तरह यह जगत् मुझमें पोया हुआ है।

खुलासा—मुझ परमात्माके सिवा जगत्का और कोई कारण नहीं है यानी मैं अकेला ही इस जगत्का कारण हूँ। इसीसे सारे प्राणी और तमाम संसार मुझमें उसी तरह गुँथा हुआ है जिस तरह तागेमें कपड़ा अथवा डोरीमें मणिके गुथे रहते हैं।

हे कुन्तीपुत्र! जलोंमें रस मैं हूँ; सूर्य्य और चन्द्रमा में प्रभा—चमक—मैं हूँ; सब वेदोंमें ओंकार मैं हूँ; आकाशमें शब्द मैं हूँ; मनुष्योंमें पुरुषार्थ मैं हूँ।

जलका सार 'रस' है। वह रस मैं हूँ। जिस तरह मैं जलमें रस हूँ, उसी तरह मैं चाँद और सूरजमें रोशनी हूँ। सब वेदोंमें जो ओंकार रूप प्रणव है, वह प्रणव मैं हूँ। इसी तरह मनुष्योंमें मनुष्यता मैं हूँ; यानी मनुष्योंमें वह चीज़ मैं हूँ जिससे मनुष्य, मनुष्य समझा जाता है। आकाशका सार 'शब्द'है,वह शब्द मैं हूँ।

सारांश यह है, कि जलका रस, सूरज, चाँद, प्रणव, मनुष्य और शब्द — ये सब मेरे शरीर हैं और मैं ही इनमें रहनेवाला शरीरी हूँ। मेरे बिना इनमें कुछ नहीं है। मेरे बिना जलमें रस नहीं है। रस-हीन जल कुछ भी नहीं है। मेरे बिना सूरज और चन्द्रमामें रोशनी नहीं है। बिना रोशनीके सूरज और चन्द्रमा कुछ भी नहीं हैं। मनुष्य-शरीरमें मेरे रहनेसे ही मनुष्य, मनुष्य है। अगर उसमें मैं न रहूँ तो वह मनुष्य नहीं मिट्टी है।

पृथ्वीमें पवित्र गन्ध मैं हूँ, आगमें चमक मैं हूँ, सब प्राणियोंमें जीवन मैं हूँ और तपस्वियोंमें तप मैं हूँ।

हे पार्थ! मुझे सब प्राणियोंका सनातन बीज समझ; बुद्धिमानोंमें बुद्धि मैं हूँ; तेजस्वियोंमें तेज मैं हूँ।

खुलासा—सब प्राणियोंकी पैदाइशका नित्य कारण मैं हूँ। बुद्धिमानोंकी विवेकशक्ति मैं हूँ। तेजस्वियोंका तेज मैं हूँ।

हे अर्जुन! बलवानोंमें, काम और रागरहित, बल मैं हूँ; सब प्राणियोंमें, धर्म-अविरुद्ध, कामना मैं हूँ।

खुलासा—जो चीज़ें इन्द्रियोंके सामने नहीं हैं यानी जो प्राप्त नहीं हुई हैं, उनकी चाहनाको "काम" कहते हैं और जो चीज़ें इन्द्रियोंके सामने मौजूद हैं यानी जो मिल गयी हैं, उनसे प्रेम करनेको "राग" कहते हैं। मतलब यह है कि मैं वह बल हूँ जो शरीर क़ायम रखनेके लिये ज़रूरी है ; किन्तु निश्चयही मैं वह बल नहीं हूँ जो इन्द्रियोंके विषयोंमें चाहना और प्रेम पैदा करता है, अर्थात् संसारी नाशमान् पदार्थों की चाह और उनमें मुहब्बत पैदा करता है। अतः मैं वह कामना हूँ जो शास्त्रोंके विरुद्ध नहीं है ; यानी मैं खाने पीने वगैरः की कामना हूँ, जो शरीर-पोषणके लिये आवश्यक है।

शम दम आदि सतोगुणी भाव, हर्ष गर्व आदि रजोगुणी भाव और शोक मोह आदि तमोगुणी भावों को मुझसे ही पैदा हुए जान; तथापि मैं उनमें नहीं हूँ; वे मुझमें हैं।

खुलासा। विद्या कर्म आदिके कारणसे प्राणियोंमें सात्विक, राजस और तामस भाव उत्पन्न होते हैं। ये सब भाव मेरी प्रकृतिके गुणोंके कार्य्य हैं, अतः इन्हें मुझसेही पैदा हुए जानो। यद्यपि ये भाव मुझसेही पैदा हुए हैं, तथापि मैं इनमें नहीं हूँ यानी मैं संसारी जीवोंकी भाँति इनके आधीन नहीं हूँ, परन्तु ये मेरे आधीन हैं।

मायाके जीतनेकी विधि।

अब भगवान् इस बातपर खेद प्रगट करते हैं, कि दुनिया उसको नहीं जानती जो इस जगत्का रचनेवाला और परमेश्वर है, जो अनन्त है, शुद्ध है, निराकार है, निर्विकार है, जो निर्गुण अथवा सब उपाधियोंसे रहित है, जो सब प्राणियोंका आत्मा है, जो बिल्कुल नज़दीक है, जिसके जाननेसे संसारी जीव जन्म मरण या संसारमें आनेजानेसे छुटकर मुक्त हो सकते हैं। संसारी जीवोंमें यह अज्ञानता क्यों है ? सुनो—

इन तीन गुणोंसे बने हुए भावोंसे मोहित होकर, जगत् मुझे इन भावोंसे अलग और निर्विकार—अपरिवर्त्तनीय—नहीं जानता है।

सत्व, रज और तम, ये तीन गुण हैं। इन तीनोंके तीन प्रकारके भाव हैं; जैसे हर्ष, शोक, राग, द्वेष इत्यादि। इन भावोंनेही संसारको अज्ञान बना रक्खा है। इनकी वजहसेही प्राणी नित्य अनित्य, सार असार वस्तुका विचार नहीं कर सकते और इन्हींके कारणसे ही मुझ परमात्माको नहीं जानते।

विष्णुकी मायाके सत्व, रज और तम ये तीन गुण हैं। इन तीनों गुणोंमें जगत् बंधा हुआ है। अत: इन तीन गुणोंसे बनी हुई विष्णुकी दैवी मायाको प्राणी किस तरह जीत सकता है? सुनो—

निश्चयही, सत्व, रज और तम इन तीनोंसे बनी हुई मेरी दैवी मायाको जीतना कठिन है; किन्तु जो मेरीही शरणमें आते हैं, वे इस मायाको पारकर जाते हैं।

यह तीन गुणोंसे बनी हुई माया, मुझ, विष्णु, परमात्मामें वर्त्तमान रहती है; इस कारणसे जो सब धर्मोंको त्यागकर, एकमात्र मेरी ही शरण आते हैं अथवा मुझेही भजते हैं, वे सब जीवोंको मोहित करनेवाली मायाको जीतकर उसके पार हो जाते हैं यानी संसारके बन्धनसे छुटकारा पा जाते हैं।

(प्रश्न)—अगर मनुष्य आप—परमेश्वर—की शरण जाने और रात दिन आपका भजन करनेसे मायाके पार हो सकते हैं, तब क्या वजह है कि सब अफातोंकी जड़ इस मायाके नाश करनेके लिये वे आपकी शरण नहीं आते? इस प्रश्नका उत्तर भगवान् नीचे देते हैं:—

हे अर्जुन! पापी, मनुष्योंमें नीच और मूढ़ मनुष्य मुझे नहीं भजते; क्योंकि मायाने उनके ज्ञानहीन बना

दिया है। ज्ञानहीन होनेके कारणसे वे असुरोंकी भी चालपर चलते हैं।

मतलब यह है, कि जो मूढ़ हैं वे अपनी मूर्खताके कारणसे रात दिन पाप-कर्ममें लगे रहते हैं। अपनी मूर्खताके कारणसे उन्हें नित्य अनित्य,सत्य असत्यका ज्ञान नहीं है। मायाने उनकी बुद्धि पर पर्दा डालरक्खा है ; इससे वे इस शरीरकोही सब कुछ समझकर,इसके पोषणके लिये अनेकानेक पाप करते हैं। उनकी समझमें शरीरही सब कुछ है, आत्मा, परमात्मा कोई चीज़ नहीं है।

चार प्रकारके भक्त ।

हे अर्जुन ! चार प्रकारके पुण्यशील मनुष्य मुझे भजते हैं—(१) आतुर, (२) जिज्ञासु,(३) अर्थार्थी, (४) ज्ञानी ।

खुलासा—मतलब यह है, कि भगवान्की भजनेवाले चार तरहके प्राणि हैं। एक तो वह जिन पर किसी प्रकारका सङ्कट होता है ; दूसरे वह जिनको आत्मज्ञानकी चाहना होती है, तीसरे वह जिनको धन दौलतकी ज़रूरत होती है ; चौथे वह जो परमात्माके असल स्वरूपको जानते हैं यानी जो परमात्माको शुद्ध, सच्चिदानन्द, निर्विकार, नित्य, अनन्त, जानते हैं और उन्हें अपनेसे अलग नहीं समझते।

इन चारोंमें से ज्ञानी, जिसका चित्त दृढ़तासे एक परमात्मामें लगा रहता है, सब से उत्तम है ; क्योंकि ज्ञानीके लिये मैं बहुत प्यारा हूँ और मेरे लिये ज्ञानी प्यारा है।

खुलासा—इन चार तरहके भक्तोंमेंसे ज्ञानी सबसे श्रेष्ठ है ; क्योंकि उसका दिल, एक साथ मुझमें,दृढ़तासे, लगा रहता है। वह एक मेरे सिवाय

किसीकी भक्ति नहीं करता। जो केवल मुझको भजता है वह सबसे ऊंचा है। क्योंकि मैं ही उसका आत्मा हूं, मैं ज्ञानीके लिये निहायत प्यारा हूं। सभी जानते हैं कि इस दुनियामें आत्मा सबको प्यारा है। ज्ञानी अपने आत्माको वासुदेव समझता है इसीसे उसे वासुदेव बहुत प्यारा है। – और ज्ञानी मेरा आत्मा है इससे वह मुझे बहुत प्यारा है।

तब क्या शेष तीनों भक्त वासुदेवको प्यारे नहीं हैं? नहीं, यह बात नहीं है।—तब क्या है?

असलमें ये सब ही अच्छे हैं; लेकिन ज्ञानी, मेरी समझ में, मेरा ही आत्मा है; क्योंकि उसका चित्त सदा मुझमें ही लगा रहता है और सर्व्वोत्तम गतिरूप मेरी ही शरण में रहता है।

खुलासा—निश्चय ही ये सब अच्छे हैं, यानी वे तीनों भी मेरे प्यारे हैं। मेरा कोई भक्त ऐसा नहीं है जो मुझ, वासुदेवको, प्यारा न हो। लेकिन इन सबमें भेद ज़रूर है—ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्यारा है। ज्ञानी अधिक प्यारा क्यों है? मेरा विश्वास है कि ज्ञानी मेरा ही आत्मा है और मुझसे अलग नहीं है। ज्ञानी मेरे पास पहुंचने की चेष्टा करता है। उसका पक्का विश्वास है कि मैं स्वयं पूर्ण ब्रह्म, सच्चिदानन्द, नित्य,मुक्त हूं। वह मुझ, परब्रह्म, को ही ढूंढता है। वह मुझे ही सर्व्वोत्तम गति समझता है।

आगे और भी ज्ञानीको प्रशंसा की जाती है—

बहुत से जन्मोंके अन्तमें, जो ज्ञानी सब चराचर जगत्‌को वासुदेवमय समझता हुआ मेरे पास आता है, वह महात्मा है। ऐसे महात्मा कठिनतासे मिलते हैं।

खुलासा—मनुष्य अनेक जन्मोंमें ज्ञान प्राप्त करनेके लिये चेष्टा करता करता, जब यह समझने लगता है कि सब कुछ ही वासुदेव है, वासुदेवके सिवा जगत में और कुछ नहीं है। वासुदेवको ही सब कुछ समझ कर, जो मुझ, नारायण, सबकी आत्मा, को भजता है वह महात्मा है। उस ज्ञानी के बराबर या उससे श्रेष्ठ कोई नहीं है; लेकिन ऐसे प्राणीका मिलना कठिन है। इसी अध्यायके तीसरे श्लोकमें पहिले ही कह दिया गया है "हज़ारों मनुष्योंमें से कोई एक कदाचित इस ज्ञानके जाननेकी कोशिश करता है; कोशिश करनेवालोंमेंसे कोई एक शायद मेरे स्वरूपको ठीक ठीक जानता है।"

मूर्ख लोगही छोटे मोटे देवताओंको पूजते हैं।

आगे यह दिखलाया जाता है, कि क्यों लोग अपने आत्मा अथवा एक मात्र वासुदेवको नहीं जानते और क्यों दूसरे देवताओंकी शरण जाते हैं—

जिनकी बुद्धि इस या उस कामनासे बहक जाती है, वे अपनी ही प्रकृति की प्रेरणासे, तरह तरहके अनुष्ठान करते हुए, दूसरे देवताओंकी उपासना करते हैं।

खुलासा—जो लोग सन्तान, धन, सुन्दर स्त्री, स्वर्ग इत्यादि की कामना-इच्छा—करते हैं उनकी बुद्धि इन कामनाओंके कारण से नष्ट हो जाती है। जब उनकी बुद्धि मारी जाती है तब वे अपनी आत्मा, वासुदेव, को छोड़कर दूसरे दूसरे देवताओंकी उपासना करने लगते हैं। वे रात दिन उन देवताओंके सम्बन्धके अनुष्ठान आदिमें लगे रहते हैं। पूर्व जन्मोंके संस्कारोंके कारण से, अपनी प्रकृतिके वशीभूत होकर, वे ऐसा करते हैं।

जो मनुष्य विश्वास सहित जिस देवताकी उपासना किया चाहता है उस मनुष्यके विश्वासको मैं उसी देवता में पक्का कर देता हूँ।

खुलासा—जिस मनुष्यकी जैसी इच्छा होती है, मैं वैसा ही करता हूं। जो लोग अपनी कामना-सिद्धिके लिये शिवको भजते हैं उनकी श्रद्धा मैं शिवमें ही पक्की कर देता हूं। जो हनूमानमें विश्वास रखते हैं, उनका विश्वास हनूमान में ही जमा देता हूं। जो निष्काम होकर, मुझ वासुदेवको ही आराधना करते हैं उन्हें सन्मार्ग में लगादेता हूं जिससे उनको मोक्ष हो जाती है।

तब वह विश्वास—श्रद्धा—सहित उसी देवताकी उपासना करता है और उसीसे अपने मन-चाहे फल, जिनको मैं निर्दिष्ट करता हूँ, पा लेता है।

खुलासा—मनुष्यको अपनी कामना-सिद्धिके लिये जिस देवता के भजने की इच्छा होती है, मैं उसी देवतामें उसकी श्रद्धा जमा देता हूं। तब वह मनुष्य उसी देवतामें दृढ़ भक्ति रखकर उसीको भजता है और उसी देवतासे, मेरे द्वारा ठहराये हुए, फलको पा लेता है। फल ठहरानेवाला मैं ही हूं, क्योंकि मैं ही परमेश्वर, सर्व्वज्ञ और सर्व्वदर्शी हूं। मैं अकेला ही कर्म और उनके फलोंके सम्बन्ध को जानता हूं। जब उनकी मन-चाही कामनाओंका फल देनेवाला मैं, परमेश्वर, ही हूं; तब उनकी कामना-सिद्धि होनी ही चाहिये।

सारांश यह है, कि जो लोग कामना रखकर, वासुदेवको छोड़कर, अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं उन्हें उनके कर्मोंका फल स्वयं परम परमात्मा ही देते हैं; लेकिन अज्ञानी लोग समझते हैं कि यह फल हमें फलां देवता या मूर्त्तिने दिया है। भगवान् ही सब कुछ जाननेवाला, सब कुछ देखनेवाला और सर्व्वशक्तिमान् है। वही मनुष्यके किये हुए कामोंकी खबर रखता है; इसलिये वही ठीक ठीक फल देसकता है। भगवान्‌के सिवाय और मनो-कामना पूरी करनेवाला कोई नहीं है। क्योंकि और कोई सर्व्वज्ञ, सर्व्व-दर्शी और सर्वशक्तिमान् नहीं है। साफ़ बात यह है, कि फल देते भगवान् हैं और नाम देवताओंका होता है।

उन थोड़ी बुद्धिवालोंको जो फल मिलता है वह नाशमान् है। जो लोग देवताओंकी उपासना करते हैं वे देवताओंके पास जाते हैं; जो मेरे भक्त हैं वे मुझमें आ मिलते हैं।

खुलासा—जो लोग मुझ वासुदेवको भूलकर दूसरे देवताओंको भजते हैं, वे मूर्ख हैं। उनको उन देवताओंकी उपासनासे फल तो ज़रूर मिल जाते हैं; किन्तु वे फल नाशमान् हैं यानी वे सदा स्थिर नहीं रहते, झटपट ही नष्ट हो जाते हैं। लेकिन जो मुझे भजते हैं, उन्हें ऐसा फल मिलता है जो अनन्त और अक्षय होता है।

भगवान् कहते हैं—यद्यपि दोनों प्रकारकी उपासनाओंमें—मेरी उपासनामें और देवताओंकी उपासनामें—समान ही चेष्टा करनी पड़ती है तथापि लोग,अनन्त और कभी नाश न होनेवाला फल पानेके लिये, मेरी शरण नहीं आते, यह बड़े दुःखका विषय है! भगवान् इस बातपर दुःख प्रगट करते हैं और लोगोंके अपनी शरण न आनेका कारण नीचे बताते हैं

मूर्ख लोग, मेरे विनाश रहित,निर्विकार और सबसे उत्तम प्रभावको न जाननेके कारण, मुझ निराकारको मूर्त्तिमान् समझते हैं।

उनकी इस अज्ञानताका क्या कारण है? सुनो

मैं सबके सामने प्रकाशित नहीं हूँ, क्योंकि मैं योग-मायासे ढका हुआ हूँ। मेरी मायासे बहँके हुए लोग मुझे अजन्मा और अविनाशी नहीं समझते।

खुलासा—मैं सब लोगोंके सामने प्रकाशित नहीं हूँ; यानी मुझे सब कोई नहीं जान सकते। केवल मेरे थोड़े से भक्तही मुझे जानते हैं। मैं योग-मायासे ढका हुआ हूँ। योग-माया रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण इन

तीन गुणोंके योगसे बनी हुई माया है। इसीने लोगोंको बहका रखा है—उनकी बुद्धिपर पर्दा डाल रखा है—इसीसे लोग मुझे अजन्मा और अविनाशी नहीं समझते।

योग-माया, जिससे मैं ढका हुआ हूँ और जिसके कारण से लोग मुझे नहीं पहचानते, मेरी है और मेरे आधीन है। इसीसे वह मेरे ज्ञानमें ईश्वर या मायाके स्वामीके ज्ञानमें—उसी तरह रुकावट नहीं डाल सकती, जिस तरह मायावी (बाज़ीगर) की माया, मायावीसे पैदा होकर, मायावीके ही ज्ञानपर रुकावट नहीं डाल सकती।

हे अर्जुन! मैं भूत, वर्त्तमान और भविष्यत् कालके चराचर प्राणियोंको जानता हूँ, लेकिन मुझे कोई नहीं जानता।

खुलासा—मुझे कोई नहीं जानता। मुझे केवल वही मनुष्य जानता है जो मेरी उपासना करता है और मेरी ही शरणमें आता है। मेरा असल स्वरूप और प्रभाव न जाननेके कारण मुझे कोई नहीं भजता।

अज्ञानताकी जड़।

अब यह सवाल हो सकता है—"मेरे असल प्रभावके जाननेमें लोगोंको क्या रुकावट है, जिससे बहक कर समस्त प्राणी जो पैदा हुए हैं मुझे नहीं जानते?" सुनो—

हे अर्जुन! इस संसारमें आनेपर, समस्त प्राणी इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न हुए द्वन्द्वोंके भुलावेमें आकर मुझे भूल जाते हैं।

खुलासा—मनुष्य सदा अनुकूल—अपनेको प्यारी—वस्तुकी इच्छा करता है और प्रतिकूल—अपनेको अप्यारी—वस्तुसे द्वेष करता है अर्थात् अच्छी चीज़के पानेकी इच्छा करता है और बुरी चीज़से दूर भागता है। इच्छा और

द्वेष से सुख-दुःख, गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास आदिकी उत्पत्ति होती है। जिसे इच्छा और द्वेष नहीं है, उसे सुख-दुःख कुछ भी द्वन्द्व नहीं है। जगत्‌में जन्म लेकर कोई भी प्राणी इच्छा और द्वेषसे रहित नहीं है। इच्छा और द्वेष वाले मनुष्य को बाहरी वस्तुओंका ज्ञान भी नहीं होता, तब उसे अन्तर-आत्माका ज्ञान कैसे हो सकता है? इच्छा और द्वेषके फेरमें पड़े हुए प्राणी मुझ परमेश्वरको अपना आत्मा नहीं समझते; इसीसे वे मुझको नहीं भजते।

सारांश यह है, कि मनुष्यको इच्छा और द्वेषसे किनारा खींचना चाहिये। इच्छा और द्वेष ही संसार-बन्धनमें डालनेवाली अज्ञानताकी जड़ हैं; अतः इन दोनोंको अवश्य छोड़ देना चाहिये।

ईश्वरोपासनासे सिद्धि।

जब संसारमें जन्म लेनेवाले प्राणीमात्रमें इच्छा और द्वेष बसा हुआ है तब हे भगवन्! आपको कौन जानते हैं और कौन अपने आत्माकी तरह आपकी उपासना करते हैं? अर्जुन के इस प्रश्नका उत्तर भगवान् नीचे देते हैं

जिन पुण्यात्माओंके पाप दूर हो गये हैं, जो इच्छा द्वेषसे पैदा हुए सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे छुट-कारा पागये हैं, वे दृढ़ चित्तसे मेरी उपासना करते हैं।

वे क्यों उपासना करते हैं? -सुनो—

जो मेरी शरण आकर, बुढ़ापे और मौतसे छुटकारा पानेकी कोशिशें करते हैं, वे उस ब्रह्म, अध्यात्म, और सब कर्म्मोंको, पूरे तौरसे जानते हैं।

खुलासा—वह लोग जो मुझ परमात्मा—में चित्तको दृढ़तासे लगाकर, बुढ़ापे और मृत्युसे बचनेके लिये चेष्टा करते हैं, वे उस परब्रह्मको भली भाँति जान जाते हैं। वे एक देह अन्दरमें रहनेवाले आत्माकी असलियत को समझ जाते हैं और कर्मके विषयमें भी सब कुछ जान जाते हैं।

जो मुझे अधिभूत और अधिदैव तथा अधियज्ञ सहित जानते हैं, वे दृढ़ चित्तवाले मनुष्य मुझे अन्त-काल—मरण-समय—में भी याद करते हैं।

खुलासा -यों भी कह सकते हैं, कि जो अन्तकालमें भी मुझे याद करते हैं उनका चित्त परमात्मामें लगा हुआ है। वे अकेले ही उस ब्रह्मको जानते हैं।

अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ शब्दोंका अर्थ भगवान् खुद ही आगेके आठवें अध्यायमें बतावेंगे।

आठवाँ अध्याय।

पिछले सातवें अध्यायके २९ वें और ३० वें श्लोकोंमें भगवान्‌ने कहा है कि "जो मेरी शरण आकर बुढ़ापे और मौतसे छुटकारा पानेकी चेष्टा करते हैं·····वे ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म वग़ैरः को पूरी तौर पर जानते हैं इत्यादि" इसीसे अर्जुन को सवाल करनेका मौक़ा मिला है और वह उसीके अनुसार भगवान्‌से पूछता है –

अर्जुनने कहा—

हे पुरुषोत्तम! वह ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत क्या है? अधिदैव क्या है? यहाँ इस शरीरमें अधियज्ञ किस तरह और कौन है? और हे मधुसूदन! मौतके समय संयतात्मा तुझे कैसे जान सकते हैं?

अर्जुनने सात सवाल किये हैं। भगवान् उनके जवाब तरतीबसे नीचे देते हैं

भगवान्‌ने कहा—

परम अक्षर* को "ब्रह्म" कहते हैं। स्वभाव अथवा जीवको "अध्यात्म" कहते हैं। जीवोंकी उत्पत्ति और वृद्धि करनेवाले त्याग रूप यज्ञको "कर्म" कहते हैं।

---

* अक्षर—उसी वस्तुको कहते हैं जिसका कभी किसी तरह नाश न हो।

अविनाशी, उत्पत्ति और विनाश से रहित, सब जगह व्यापक, निराकार परमात्माको "ब्रह्म" कहते हैं। "ब्रह्म"का किसी तरह नाश नहीं होता, न वह कभी पैदा होता है और न कभी मरता है, न उसका कुछ आकार ही है। मतलब यह है, कि अविनाशी, नित्य, निराकार, शुद्ध, सच्चिदानन्द और जगत्‌के मूल कारणको "ब्रह्म" कहते हैं। उस अविनाशी ब्रह्मके शासनसे सूरज, चाँद, पृथ्वी और आकाश अपने अपने स्थानोंपर टिके हुए हैं। वही सबके देखनेवाला और जगत्‌को धारण करनेवाला है।

वही अविनाशी ब्रह्म, जिसका वर्णन अभी अभी कर चुके हैं, प्रत्येक आत्मा के स्वरूपमें शरीरमें आश्रय लेनेसे "अध्यात्म" कहलाता है। जो शरीरमें वास करता है उसे ही "अध्यात्म" कहते हैं। बहुत ही साफ़ मतलब यह है कि "जीव" को "अध्यात्म" कहते हैं।

यज्ञ हवनके समय, अग्निमें जो आहुतियाँ दी जाती हैं वह सूक्ष्म रूपसे सूर्य-मण्डलमें पहुँचती हैं। उनसे जलकी वर्षा होती है। वर्षासे नाना प्रकारके अन्न पैदा होते हैं। अन्नोंसे प्राणियोंकी उत्पत्ति और वृद्धि होती है। सारे प्राणियोंकी उत्पत्ति और वृद्धि करनेवाले उस त्यागरूप "यज्ञ" को ही "कर्म" कहते हैं।

खूब खुलासा यह है, कि अविनाशी, नित्य, शुद्ध, निराकार, सर्वत्र व्यापक परमात्माको "ब्रह्म" कहते हैं। शरीरमें रहनेवाले "जीव" को "अध्यात्म" कहते हैं और यज्ञ करनेको "कर्म" कहते हैं।

हे अर्जुन ! नाशमान् पदार्थोंको "अधिभूत" कहते हैं। पुरुष को "अधिदैव" कहते हैं और इस शरीरमें "अधियज्ञ" मैं ही हूँ।

अधिभूत वह है, जो समस्त जीव-धारियोंको घेरे हुए है और जो पैदा होनेवाले तथा नाश होनेवाले पदार्थोंसे बना है। यानी "शरीर" अधिभूत है;

क्योंकि वह पैदा होनेवाले और नाश होनेवाले पदार्थों से बना है। अतः शरीर आदि जो जो नाशमान् पदार्थ हैं वे सब "अधिभूत" कहलाते हैं।

"पुरुष" वह है, जिससे हरेक वस्तु पूर्ण होती है या भरी रहती है अथवा वह है जो शरीरमें रहता है यानी हिरण्यगर्भ, सर्वव्यापी आत्मा, जो सूर्यमें रहकर सब प्राणियोंकी इन्द्रियोंमें चैतन्यता पैदा करता है और उनका पोषण करता है। मतलब यह है कि जो सब जगत्का आत्मा है, जो प्राणी मात्रके शरीरमें विराजमान है, जो इन्द्रियोंको पोषण करनेवाले और उनको उत्तेजित करनेवाले सूर्यका भी अधिपति है अथवा सूर्य रूप होकर जगतके प्राणियोंको पोषण करता और उनकी इन्द्रियोंमें उत्तेजना पैदा करता है वही "पुरुष" है। उसीको "अधिदैव" कहते हैं।

"अधियज्ञ" वह है, जिसको सब यज्ञों पर प्रधानता है यानी जो देवताओंके लिये भी पूज्य है। देवताओंसे पूज्य और सब यज्ञोंका प्रभुत्व रखनेवाला विष्णु, मेरा आत्मा है। अतः विष्णु मैं ही हूँ। मैं ही "अधियज्ञ" हूँ। मैं ही यज्ञ रूपसे इस मनुष्य-शरीरमें रहता हूँ।

जो कोई, अन्त समयमें, मुझको ही याद करता हुआ शरीर छोड़कर जाता है वह मेरे ही स्वरूप को प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं।

खुलासा—जो मनुष्य मरनेके समय अथवा शरीर छोड़नेके समय केवल मुझकोही याद करता है, मेराही ध्यान करता हुआ शरीर छोड़ता है, वह मेरे पास पहुँच जाता है और मुझे पा लेता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

ईश्वरका ध्यान, हमेशा, रखना जरूरी है।

अन्तकालमें, मनुष्य जिसको याद करता हुआ शरीर छोड़ता है, हे कौन्तेय, उसीका ध्यान हमेशा रहनेसे वह उसीको पाता है।

खुलासा--भगवान् कहते हैं कि जो अन्त समयमें मुझे ही याद करता हुआ, मेरा ही ध्यान करता हुआ, शरीर छोड़ता है वह तो मुझे पाता है; लेकिन जो मनुष्य मुझे छोड़कर, किसी और देवताके ध्यानका अभ्यास करता रहता है वह,अपने सदाके अभ्यासके कारण, उसके मनमें बस जानेके कारण, अन्त समय में उसी देवता को याद करता है और उसी देवताको पाता है। जो अन्त समयमें शिवका स्मरण करता है वह शिवको पाता है। जो अन्त समय में स्त्री पुत्र आदिको याद करता है उसे स्त्री पुत्र ही मिलते हैं। जो रात दिन मायामें फँसे रहते हैं और अन्त समयमें भी धन दौलत आदिकी चिन्ता करते हुए मरते हैं वे उन्हीं पदार्थों को पाते हैं। लेकिन नाशमान् पदार्थों के पानेसे कुछ लाभ नहीं है। बार बार जन्म लेने और मरनेमें बड़ा कष्ट है, अत: मनुष्यको सदा परमब्रह्मका ध्यान करना चाहिये। अभ्यास करते रहने से मनुष्यके मनमें परम ब्रह्महो बसा रहेगा; इससे मरते समय वह उसी सच्चिदानन्दका ध्यान करता हुआ शरीर छोड़ेगा और उसीके स्वरूप में मिलकर जन्म-मरण के झंझटसे छुट्टी पा जायगा।

जो लोग ऐसा ख्याल करते हैं कि हम बुढ़ापेमें भगवान्को याद करेंगे, अभी तो संसारी मायामें फँसे रहें, उनसे कुछ भी नहीं हो सकता। अन्त समयमें उन्हें वही याद आवेगा जिसमें उनका मन सदासे बसा हुआ होगा। अत: मोक्ष चाहनेवालोंको पहिले से ही परब्रह्मके ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। बचपनसे ही उसी परब्रह्ममें ध्यान लगानेकी चेष्टाएं करते रहनेसे अन्तमें भी उसीका ध्यान रहेगा। अन्तमें जो परब्रह्मका ध्यान करता हुआ चोला छोड़ेगा, वह पूर्ण ब्रह्ममें लीन हो जायगा--

अन्तकालमें, सदाके अभ्याससे कारण, मनुष्यको जैसी भावना होती है उसे वैसी ही देह मिलती है।

इसवास्ते तू, हर समय मुझे याद करता हुआ,युद्ध कर। मुझमें मन और बुद्धि लगानेसे तू मुझे निश्चयही पावेगा।

खुलासा—हे अर्जुन ! तू हरदम अपना मन और बुद्धि मुझमें लगाकर मेरी याद किया कर ; जिससे अन्तकाल में मुझे ही याद करता हुआ शरीर छोड़े और मेरे ही पास पहुँचे। अब अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये युद्ध करके अपना कर्त्तव्य पालन कर ; क्योंकि बिना अन्तःकरणके शुद्ध हुए मेरा याद आना कठिन है।

जो मनुष्य निष्काम होकर कर्म करता है उसीका अन्तःकरण शुद्ध होता है। जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है वही परमेश्वरका ध्यान कर सकता है।

जो अभ्यास-योगसे युक्त है, जिसका चित्त और किसी तरफ़ नहीं जाता, ऐसे चित्तवाला मनुष्य ध्यान करनेसे परम दिव्य पुरुषको पालेता है।

वह परम पुरुष कैसा है ? सुनो -

वह सर्व्वज्ञ है, अनादि है, सब जगत्का शासनकर्त्ता है, निहायत छोटे रेज़ेसे भी छोटा है, अचिन्त्यरूप है, सूर्यके समान प्रकाशमान है, अज्ञान अथवा प्रकृतिसे परे है।

जोमनुष्य अन्तकालमें भक्ति और योगसे युक्त होकर, मनको एक जगह लगाकर, दोनों भौंओंके बीचमें प्राणों को अच्छी तरह ठहरा कर, ऐसे दिव्य पुरुषका स्मरण करता है वह उस दिव्य पुरुषको पा लेता है यानी उसमें मिल जाता है।

परमात्मा भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान तीनों कालके देखनेवाला है। उस का आदि—शुरू—नहीं है यानी वह जगत्का कारण है। वही सब जगत् को नियम पूर्वक चलाता है। वह छोटेसे छोटे ज़र्रे अथवा कणसे भी छोटा है। यद्यपि वह है, तथापि उसकी सूरतका ध्यानमें आना कठिन है। वह

अपने नित्य चैतन्य स्वरूप से सूरजके समान प्रकाशवान् और अज्ञान रूपी अन्धकारसे परे है ।

बारम्बार समाधि लगानेके अभ्याससे जिसका चित्त स्थिर हो गया है, अगर वह शख़्स पहिले हृदय-कमलमें अपने चित्तको वश करके और पीछे ऊपर जानेवाली सुषुम्ना नामक नाड़ी द्वारा प्राणोंको ऊपर चढ़ाकर, दोनों भौंओंकेबीच में अच्छी तरह स्थापन करके, अन्त समयमें परमात्माको याद करता है वह परम दिव्य पुरुषको प्राप्त होता है ।

अब तक भगवान्ने परमेश्वरके ध्यान करनेकी रीति बताई । अब वह उस परमेश्वरका एक नाम, जिससे उसे याद करना चाहिये, नियत करते हैं ।

वेदके जाननेवाले जिसे अक्षर—अविनाशी—कहते हैं, राग द्वेष रहित संन्यासी जिसको यत्न करके पाते हैं, जिसके चाहनेवाले ब्रह्मचर्य्य व्रतका पालन करते हैं, उस "पद"को मैं संक्षेपसे तुझसे कहूँगा ।

जिनको वेदोंका ज्ञान है, वे उस अक्षर अविनाशी—को उपाधि रहित कहते हैं । अर्थात् उसे वह स्थूल सूक्ष्म आदि विशेषणोंसे रहित मानते हैं ।

राग द्वेष रहित संन्यासी सच्चा ज्ञान होनेपर उसे पाते हैं । जिस अक्षर ब्रह्मके जाननेके लिये ब्रह्मचारी गुरुके पास रहकर वेदान्त आदि शास्त्रोंको पढ़ते हैं उस अक्षर—अविनाशी—ब्रह्मपदको मैं तुझे संक्षेपसे कहूँगा ।

हे अर्जुन ! जो सब द्वारोंको बन्द करके, मनको हृदयमें रोककर, प्राणोंको मस्तकमें ठहराकर, योगमें स्थिर होकर, ब्रह्मरूप एकाक्षर "ॐ" का उच्चारण करता हुआ और मुझे याद करता हुआ इस देहको छोड़कर जाता है, वह परम गतिको पाता है ।

जो मनुष्य आँख, नाक, कान आदि द्वारोंको अपने अपने विषयोंसे रोक

कर, मनको सब तरफ़से हटाकर और हृदय-कमलमें ठहराकर, प्राणोंको पहिले दोनों भौंहोंके बीच में स्थापित करके, पीछे उससे भी ऊपर मस्तकमें स्थापित करके, मरनेके समय "ओं" इस प्रणव मन्त्रका उच्चारण करता हुआ और मुझ अविनाशी सर्वव्यापी परमेश्वरका ध्यान करता हुआ, सुषुम्ना नामक नाड़ीकी राहसे इस शरीरको छोड़ता है वह परमगतिको प्राप्त होता है।

ईश्वरके प्राप्त होनेपर फिर जन्म नहीं होता।

हे अर्जुन! जो मुझमें ही चित्त लगाकर जीवनभर मेरी ही याद करता है, उस एकाग्र चित्तवाले योगीको मैं सहजमें मिल जाता हूँ।

जो मेरा अनन्य भक्त है, जिसका चित्त सिवा मेरे किसीमें नहीं है, जो रोज़ रोज़ ज़िन्दगी भर मेरी याद करता है, जो एकाग्र चित्त है, वह योगी मुझे सहज में पा लेता है। अतः मनुष्यको सब छोड़कर मुझमें स्थिर-चित्त होकर ध्यान लगाना चाहिये।

आपके सहजमें पाजानेसे क्या लाभ है?

मुझे पाकर, वह दुःखोंके स्थानभूत और अनित्य जन्मको नहीं पाता; क्योंकि मेरे पा लेनेपर उस महात्माको परम सिद्धि मिल जाती है यानी उसकी मुक्ति हो जाती है।

मुझ ईश्वरके पास पहुँच जाने या मुझे पा जानेपर, उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। जन्म दुःखोंका भण्डार है, क्योंकि कायामें अनेक कष्ट होते हैं और जन्म लेकर फिर मरना पड़ता है। जब महात्मा लोग परमो-त्पद—मोक्ष—को पा जाते हैं तब उन्हें फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। किन्तु जो मेरे पास नहीं पहुँचते या मुझे नहीं पाते उन्हें फिर पृथ्वीपर आना पड़ता है।

प्रश्न—जो लोग आपको छोड़कर अन्य देवताओंके पास जाते हैं क्या उन्हें पृथ्वीपर फिर आना होता है ? सुनो –

ब्रह्मलोकको लेकर और सब जितने लोक हैं उन सबको फिर पृथ्वीपर आना पड़ता है। हे अर्जुन ! लेकिन मेरे पास पहुँचकर फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।

ब्रह्माके दिन और रात ।

प्रश्न—ब्रह्मलोक सहित सब लोकोंको क्यों लौटना पड़ता है ?—क्योंकि उनका समय नियत है किस तरह ?

सिर्फ वही लोग दिन और रातको जानते हैं, जो यह जानते हैं कि ब्रह्माका दिन एक हज़ार चौकड़ी युगोंका होता है और रात भी एक हज़ार चौकड़ी युगोंकी होती है।

जानना चाहिये युग चार होते हैं—

(१) सत्ययुग (२) त्रेता (३) द्वापर (४) कलियुग।

सत्ययुगका समय	१७२८००० वर्ष
त्रेताका समय	१२९६००० वर्ष
द्वापरका समय	८६४००० वर्ष
कलियुगका समय	४३२००० वर्ष
	४३२००००

इस तरह तैतालीस लाख, बीस हज़ार वर्ष समाप्त होनेपर चारों युग एक एक बार होते हैं और जब मर्त्युलोकमें चारों युग एक हज़ार बार बीत लेते हैं तब ब्रह्माका एक दिन होता है यानी ४३,२०,००० वर्षकी आयुमानसे एक हज़ार युगोंके बीतने पर यानी ४३,२०,००० × १००० = ४३,२०,०००००० यानी चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्षका ब्रह्माका सिर्फ एक दिन होता है।

इसी तरहसे और हजार युग बीतनेपर ब्रह्माकी एक रात होती है। ऐसे ऐसे तीस दिन रातका एक महीना होता है और बारह महीनोंका एक वर्ष होता है। ऐसे १०० वर्ष पूरे होनेपर ब्रह्माकी उम्र तमाम हो जाती है; क्योंकि उसकी उम्र १०० वर्षकी ही है। जब ब्रह्मा स्वयं इतनी आयु भोग कर नाश हो जाता है तब उस लोकके रहनेवालोंका नाश क्यों न होगा? इसी तरह सब लोकोंके समयकी सीमा बंधी हुई है। इसीलिये उन्हें फिर आना पड़ता है अथवा फिर जन्म लेना पड़ता है।

आगे यह बताया जायगा कि ब्रह्मा—प्रजापति—के दिनमें क्या होता है और उसकी रातमें क्या होता है।

हे अर्जुन! ब्रह्माके दिनमें यह सब चराचर जगत् कारण रूप अव्यक्तसे पैदा हो जाता है और ब्रह्माकी रात होनेपर उसी अव्यक्तमें लीन हो जाता है।

यहाँ अव्यक्त शब्दसे ब्रह्माकी निद्रावस्था समझनी चाहिये। उस अव्यक्तसे समस्त व्यक्ति, स्थावर जंगम जगत्, ब्रह्माके जागनेपर यानी ब्रह्माके दिन में प्रगट हो जाते हैं और ब्रह्माके सोनेके समय, रातमें, उस अव्यक्तमें ही लीन हो जाते हैं।

यद्यपि यह सृष्टि बारम्बार नाश होती है; तथापि इसकी निवृत्ति नहीं होती; क्योंकि अविद्या,कर्म और अन्यान्य पापोंके कारणोंसे तमाम प्राणियोंको, बिना अपनी इच्छाके भी, बारम्बार पैदा होना और नाश होना पड़ता है।

तात्पर्य यह है, कि ब्रह्मासे लेकर सभी लोक अनित्य—नाशमान्—हैं। नाशमान् पदार्थोंसे दुःख होता है; अत: नाशमान् पदार्थोंमें मन न लगाकर, यह सच्चिदानन्द आत्मामें मन लगाना चाहिये।

यही प्राणियोंका समूह दिनमें बारम्बार पैदा होता और रातको नाश हो जाता है और अपनी इच्छा न

होते हुए भी, परवश होकर, दिन होनेपर फिर पैदा हो जाता है।

खुलासा—इसका यह मतलब है, कि ब्रह्माकी रात होने पर जब सृष्टि लय हो जाती है तब दिन होनेपर नयी सृष्टिमें नये नये जीव नहीं पैदा होते; लेकिन जो जीव पहिले सृष्टि-नाश होनेके समय लय हो गये थे, अविद्या के कारण, अपनी इच्छा न होते हुए भी, फिर पैदा होते हैं। हर बार दिन होनेपर, उन्हें अपनी अविद्याके कारणसे जन्म लेना पड़ता है और रात होने पर लय हो जाना पड़ता है। जीव अनादि और नित्य हैं; अतः वही कर्मके वश होकर बारम्बार पैदा होते और लय हो जाते हैं। हर बार नये जीव पैदा नहीं होते और पहिलेवाले नाश नहीं हो जाते।

यहाँ तक भगवान् ने अक्षर—अविनाशी—के पहुँचनेका रास्ता और अविद्या, काम तथा कर्मके आधीन होकर प्राणियोंका बारम्बार मरना और पैदा होना बताया; लेकिन अब भगवान् यह बताते हैं कि जिसके पास इस योग-मार्गसे पहुँचनेसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता वह ऐसा है—

लेकिन इस अव्यक्तसे जुदा एक और सनातन अव्यक्त परब्रह्म है। वह सब प्राणियोंके नाश होने पर भी नाश नहीं होता।

खुलासा—अब जिस अक्षर—अविनाशी का ज़िक्र हमें करना है वह इस अव्यक्त से जुदा है। वह किसी अंशमें भी इस अव्यक्तके समान नहीं है। वह इन्द्रियोंसे जाना नहीं जा सकता; क्योंकि उसमें रूप गुण आदि नहीं हैं; वह न जन्म लेता है और न मरता है। वह सब जीवोंके नाश होनेपर नाश नहीं होता और पैदा होनेपर पैदा नहीं होता। समय आनेपर पर, ब्रह्मासे लेकर सब प्राणियोंका नाश हो जाता है लेकिन उसका कभी नाश नहीं होता।

मतलब यह है, कि सब चराचर जगतका कारण स्वरूप जो अव्यक्त है उस

अव्यक्तका भी कारण स्वरूप और एक अव्यक्त है। वह अव्यक्त इस जगत्के कारण स्वरूप—जगत्के बीज—अव्यक्तसे भी श्रेष्ठ और ऊँचा है। यह अव्यक्त भी समय पाकर नाश हो जाता है किन्तु उसका कभी नाश नहीं होता। उसे शुद्ध सच्चिदानन्द, अखण्ड, नित्य, मुक्त, अद्वैत, एक ब्रह्म, निराकार, शुद्ध अव्यक्त कहते हैं।

जो अव्यक्त और अक्षर कहलाता है उसीको परम गति कहते हैं; जिसके पालेने पर फिर किसी को लौटना नहीं पड़ता, वही मेरा परम धाम है।

वह अव्यक्त जो अक्षर कहलाता है यानी जो अगोचर और अविनाशी कहलाता है उसके पालेनेपर फिर किसी को संसारमें नहीं आना पड़ता। वही मेरा (यानी विष्णुका) परम धाम है।

अब उस परम धामके पानेके उपाय बताये जायेंगे—

हे पार्थ! वह परम पुरुष, जिसके भीतर यह चराचर जगत् है और जिससे सारा संसार व्याप्त है, बिना अनन्य भक्तिके नहीं मिलता।

खुलासा—उसे पुरुष इस लिये कहा है कि वह शरीरमें रहता है अथवा इस कारणसे कि वह पूर्ण है। उससे बड़ा और कोई भी नहीं है। वह अनन्य भक्ति यानी आत्म-ज्ञानसे मिलता है। सब चराचर प्राणी उसके अन्दर रहते हैं; उस पुरुषसे सारा जगत् व्याप्त है। वह परम पुरुष तभी मिलता है जब सबको छोड़कर उसीमें भक्ति की जाती है। यानी जिसके मनमें सिवाय शुद्ध सच्चिदानन्दके और कोई चीज़ नहीं जँचती, वही उसे पाता है।

अर्जुनके सामने श्यामसुन्दर रूपसे तो भगवान् थे ही; लेकिन उसे निराकार आत्माका ज्ञान नहीं था; इसीसे उन्होंने उसे परम पुरुषका ज्ञान बताया।

मतलब यह है, कि साकार-मूर्त्तिमानकी भक्ति करनेसे, बारम्बार मूर्त्तिके दर्शन करनेसे, अनेक देवताओंकी भक्ति करनेसे, वह अव्यक्तका भी अव्यक्त अविनाशी परमात्मा नहीं मिलता। वह मूर्त्ति आदिको छोड़कर उसीमें एकमात्र भक्ति रखनेवालेको मिलता है। अर्थात् "मैं ही ब्रह्मरूप हूं" इस तरहका तत्त्वज्ञान होनेसे वह परमात्मा मिलता है।

अँधेरे और उजेले मार्ग।

हे अर्जुन! जिस कालमें योगी लोग शरीर त्याग कर फिर नहीं आते और जिस कालमें आते हैं, मैं अब उस कालका वर्णन करता हूँ।

हे अर्जुन! अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्लपक्ष, और उत्तरायणके छ: महीनोंमें जानेवाले, जो ब्रह्मको जानते हैं, फिर नहीं आते।

खुलासा मतलब यह है कि अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्लपक्ष और उत्तरायण के छ: महीनोंमें जानेवाले अन्तमें ब्रह्मको पा लेते हैं, फिर उनको जन्म नहीं लेना पड़ता। यानी पहले ब्रह्म-उपासक अग्निके देवताके पास पहुंचते हैं। वहांसे ज्योतिके देवताके पास, वहांसे दिनके देवताके पास, वहांसे शुक्लपक्षके देवताके पास, फिर उत्तरायणके देवताके पास पहुंचते हैं, अन्तमें ब्रह्म-लोकमें पहुंचकर ब्रह्माके साथ मुक्त हो जातेहैं।

जिस राहमें अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्लपक्ष और उत्तरायणके छ: महीने, इन सबके देवता हैं उसे "देवयान मार्ग" कहते हैं। सगुण ब्रह्मको उपासना करनेवाले लोग जो इस देवयान मार्गसे जाते हैं सगुण ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। मतलब यह है कि पहले अग्नि देवताके राज्यमें पहुंचते हैं वहांसे ज्योति देवताके राज्यमें, इस तरह उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए ब्रह्मलोकमें पहुंच कर ब्रह्ममें मिल जाते हैं।

यह देवयान मार्ग तो ऐसा है कि ब्रह्मके जाननेवाले इस राहमें मञ्जिल दर मञ्जिल चलते हुए ब्रह्मको पा जाते हैं और उन्हें लौटना (जन्म लेना) नहीं पड़ता। इस राहके सिवा एक और राह है। उसकी भी मञ्जिलें हैं और राहमें अलग अलग देवता हैं, लेकिन उस राहसे जानेवालोंको फिर लौटना पड़ता है।

धूम, रात, कृष्णपक्ष और दक्षिणायनके ६ महीनों और चन्द्र ज्योति, इनमें जो जाते हैं वे फिर संसारमें आते हैं।

जो ब्रह्मनिष्ठ नहीं हैं किन्तु कर्मनिष्ठ हैं वे धूम, रात, कृष्णपक्ष, दक्षिणायनके छः महीने, इस राहसे जाकर चन्द्रलोकमें पहुंचकर चन्द्रमासे प्राप्त हुए सुखोंको भोगकर कर्मोंके नाश होनेपर फिर इस मनुष्यलोकमें जन्म लेते हैं। इस राहका नाम "पितृयान मार्ग" है।

मालुम हुआ कि दो राहें हैं। (१) देवयान मार्ग, (२) पितृयान मार्ग। जो लोग सच्चिदानन्द, अक्षर, निराकार आत्माकी आराधना करते हैं वे क्रम क्रमसे अग्नि, ज्योति, दिन आदिके देवताओंके पास पहुंचते हुए अन्त में ब्रह्मलोकमें पहुंच जाते हैं और मुक्त हो जाते हैं। और जो लोग कर्मनिष्ठ हैं यानी इष्टकर्म, पूर्त्तकर्म * और दत्तकर्म † करते हैं वे स्वर्गमें जाते हैं और वहांका सुख भोगते हैं। जब उनके कर्म नाश हो जाते हैं यानी जब उनके किये हुए कर्मोंका फल मिल चुकता है तब वे फिर इसी मर्त्यलोकमें आकर जन्म लेते हैं।

देवयान मार्ग और पितृयान मार्ग दोनों मार्गों में दूसरेसे पहला श्रेष्ठ है;

---

* कुएं, तालाब आदि खुदाने और धर्मशाला आदि बनानेको "पूर्त्तकर्म" कहते हैं।

† सुपात्रों को देने को "दत्तकर्म" कहते हैं।

क्योंकि पहलीसे जानेवालोंको फिर मनुष्य-लोकमें आकर जन्म नहीं लेना होता—उनकी मोक्ष हो जाती है; किन्तु दूसरेसे जानेवालोंकी मोक्ष नहीं होती। इनके सिवा जो पापकर्म करते हैं वे नरक भोगकर फिर जन्म लेते हैं और मनुष्य-योनि पाते हैं; किन्तु जो बहुतही बुरे पाप करते हैं उन्हें चौरासी लाख योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है।

पापी और महापापियोंसे कर्मनिष्ठ अच्छे हैं जो अग्निहोत्र आदि इष्टकर्म करके, कूएं तालाब बावड़ी खुदाकर और परोपकारार्थ धर्मशाला आदि बना कर स्वर्गमें जाकर सुख भोगते हैं और अपने अच्छे कर्मोंका फल भोगकर फिर मनुष्य-योनिमें जन्म लेते हैं। इनसे भी वे अच्छे हैं जो सच्चिदानन्द, अविनाशी, निराकार आत्माकी आराधनामें लगे रहकर रफ्ता रफ्ता मुक्ति पा जाते हैं।

ये शुक्ल मार्ग और कृष्ण मार्ग संसारके सनातन मार्ग हैं। जो शुक्ल मार्गसे जाते हैं वे फिर लौटकर नहीं आते और जो कृष्ण मार्गसे जाते हैं वे फिर लौट कर आते हैं।

यह संसार अनादि है इसलिये शुक्ल और कृष्ण ये दो राहें भी अनादि मानी गयी हैं। पहली राहका नाम 'शुक्ल' इसलिये रक्खा है कि वह ज्ञानको प्रकाशित करती है। उस राहमें ज्ञानसे पहुंचना होता है और उस राहमें उजियाला करनेवाले पदार्थ हैं। दूसरीको 'कृष्ण' इसलिये कहते हैं कि वह ज्ञानको प्रकाशित नहीं करती, और उसमें अविद्या—कर्म—द्वारा पहुंचना होता है और उसकी राहमें धूम, रात आदि अंधेरे पदार्थ हैं।

ये दोनों राहें सब जगत्के लिये नहीं हैं। इन दोनों राहोंसे केवल ज्ञान-निष्ठ और कर्मनिष्ठ जाते हैं। ज्ञानी लोग शुक्ल—प्रकाशवाली—राहसे जाते हैं और फिर जन्म नहीं लेते। जो अज्ञानी—कर्मी—हैं वे कृष्ण—अन्धेरी—राहसे जाते हैं और स्वर्ग-सुख भोगकर फिर लौट आते और जन्म लेते हैं।

पाठकोंको स्वयंही विचारना चाहिये कि इन राहोंमेंसे कौनसी राह सब से अच्छी है

हे पार्थ ! जो योगी इन दोनों मार्गोंको जानता है वह धोखा नहीं खाता; इससे हे अर्जुन ! तू सदा योग-युक्त हो।

जो योगी यह जानता है कि इन दोनों राहोंमेंसे एक तो स्वर्ग-सुख आदि भोग कराकर फिर संसारके बन्धनमें ला फँसाती है और दूसरी धीरे धीरे घुमा फिरा कर ब्रह्मलोकमें पहुँचा देती है और वहाँ उसे ब्रह्मज्ञानमें लगाकर ब्रह्माके साथ उसकी मुक्ति करा देती है, वह कभी धोखा नहीं खाता।

आनन्दगिरिने यह लिखा है कि सच्चा योगी इन दोनोंही राहोंको पसन्द नहीं करता। वह घूम फिरकर ब्रह्मलोकमें जाना पसन्द नहीं करता। वह तो ब्रह्मासे भी पहले अपनी मुक्ति चाहता है। वह ब्रह्माके आधीन होकर अपनी मोक्ष पसन्द नहीं करता। वह तो शुद्ध सच्चिदानन्दका ध्यान करके सीधा उसीमें मिल जाना चाहता है; इसीलिये भगवान अर्जुनसे कहते हैं कि तू योगमें लग जा।

आगे भगवान् योगमें श्रद्धा बढ़ानेके लिये योग की प्रशंसा करते हैं—

वेद, यज्ञ, तप और दानसे जो फल मिलता है, योगी इसके जान जानेपर उन सबसे आगे बढ़ जाता है और सर्वोत्तम आदिस्वरूप स्थानको पा जाता है।

खुलासा—शास्त्रोंमें वेद पढ़नेके जो फल लिखे हैं, यज्ञ, तप और दानके जो फल लिखे हैं—जो योगी भगवान्‌के कहे हुए सात प्रश्नोंके जवाबोंको अच्छी तरह समझता, उनके अनुसार चलता है, वह उन सबसे अधिक योग रूप ऐश्वर्यको पाता है और वह ईश्वरके परम धामको पहुँच जाता है—जो आदि कालमें भी था;—और वह कारण ब्रह्मको पा लेता है।

नवाँ अध्याय ।

ब्रह्मज्ञानही सर्वश्रेष्ठ धर्म है ।

भगवान कृष्णचन्द्रने आठवें अध्यायमें सुषुम्ना नाड़ी द्वारा धारणा और उसकी क्रिया बताई है और उसका फल ब्रह्म-प्राप्ति बताया है और आगे चलकर शुक्ल मार्ग बताया है जहाँसे फिर लौटना नहीं पड़ता। कोई यह न समझले कि इसके सिवा मोक्षका और द्वार नहीं है, इसलिये भगवान अग्नि, ज्योति, आदिके पास घूम फिरकर मोक्ष पानेकी राहसे भी सुगम राह बताते हैं।

सातवें अध्यायके अन्तमें अधिभूत, अधिदैव शब्दोंसे ईश्वरकी महिमा संक्षिप्त रूपसे कही गयी है। इस अध्यायमें उसकी महिमा खूब विस्तारसे वर्णन की जायगी।

हे अर्जुन ! तू गुणोंमें अवगुण ढूँढ़नेवाला नहीं है; इसलिये मैं तुझे विज्ञान सहित अत्यन्त गुप्त ज्ञान सुनाता हूँ; इसके जाननेसे तू अशुभ कर्मोंसे छुटकारा पा जायगा।

भगवान अब ऐसा ज्ञान बताते हैं जो ध्यान-योगसे श्रेष्ठ है और उस गुह्यज्ञानसे सीधी मोक्ष हो जाती है। ध्यानसे साक्षात् मोक्ष नहीं मिलती। ध्यानसे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है और अन्तःकरणके शुद्ध होनेसे आत्म-ज्ञान होता है। असल ज्ञान यह है कि "सब ही वासुदेव है" जो यह समझते

है कि सभी एक ब्रह्म है, उनकी मुक्ति हो जाती है। बिना अद्वैत ब्रह्मज्ञान के मुक्तिका और उपाय नहीं है। इसीलिये विद्वानोंमें ब्रह्मज्ञानी अच्छे समझे जाते हैं।

हे अर्जुन ! जो ज्ञान मैं तुझे सुनाता हूँ वह सब विद्याओंका राजा है, वह अत्यन्त गुप्त और अत्यन्त पवित्र है, वह सुगमता से समझ में आजाता है, धर्मका विरोधी नहीं है, सुखसे उसका अनुष्ठान किया जा सकता है और वह नाशरहित है।

अठारह विद्याओंमें वह सब विद्याओंका राजा है क्योंकि उसकी महिमा भारी है इसीसे विद्वानोंमें ब्रह्मज्ञानीकी अत्याधिक प्रतिष्ठा है, वह गुप्त विषयोंका राजा है और जितने पवित्र करनेवाले कर्म हैं उनमें ब्रह्मज्ञान सबसे अधिक पवित्र है। क्योंकि वह कर्म और उसकी जड़को क्षणभरमें नष्ट कर देता है यानी वह हज़ारों जन्मोंके सञ्चित किये हुए कर्म, धर्म और अधर्मोंको पलमें नाश कर डालता है। इसके सिवा सुख दुःखकी भाँति उस का प्रत्यक्ष ज्ञान हो सकता है। वह धर्मके विरुद्ध नहीं है। कोई ख्याल करे कि उसका प्राप्त करना बहुत कठिन है सो बात नहीं है। भगवान कहते हैं कि उसका प्राप्त करना बहुत सहज है। कोई ख्याल करे कि जो काम सुखसाध्य होते हैं उनका फल थोड़ा होता है और जो कष्ट साध्य होते हैं उनका फल बड़ा होता है; इसी भाँति जो ब्रह्मज्ञान सहजमें, सुखसे प्राप्त होता है नाश हो जाता होगा, इसी वहमको दूर करनेको भगवान कहते हैं कि उसका नाश नहीं होता। इसीसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने योग्य है।

हे अर्जुन ! जो इस धर्ममें श्रद्धा नहीं करते वे मुझे न पाकर इस मरणशील संसारमें घूमते रहते हैं।

जो लोग इस धर्म—ब्रह्मज्ञान—में विश्वास नहीं रखते, जो इसके अस्तित्व

और शास्त्रोंपर विश्वास नहीं रखते, जो अपने शरीरकोही आत्मा समझते हैं वे पापी मुझ परमात्माको नहीं पाते। मेरा पाना तो दूरकी बात है, वे भक्तिको भी प्राप्त नहीं होते जो मेरे पास पहुंचानेवाली राहोंमेंसे एक राह है। इसीसे वे मरणशील संसारकी राहमें पड़े रहते हैं जो उन्हें नरकमें पहुंचाती है।

सब जीव परमात्मामें स्थित हैं।

मुझसे यह सब जगत् व्याप्त है ; मेरी सूरत अव्यक्त है ; सब जीव मुझमें बसते हैं; और मैं उनमें नहीं रहता।

इस समस्त चराचर जगत्को मुझ परमात्माने व्याप्तकर रक्खा है। मेरी सूरत आंख वगैर: इन्द्रियोंसे नहीं देखी जा सकती। मुझ अव्यक्तमें घासके पौधेसे लेकर ब्रह्मा तक रहते हैं, किन्तु मैं उनमें नहीं रहता।

मतलब यह है कि जिस तरह सीपीमें चांदी कल्पित है, रस्सीमें सांप कल्पित है उसी तरह मुझ सच्चिदानन्दमें सब जीव कल्पित हैं। जिस तरह सीपी और चांदीका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है उसी तरह मेरा भी किसीसे कुछ सम्बन्ध नहीं है।

वे सब प्राणी मुझमें स्थित नहीं हैं ; हे अर्जुन ! तू मेरे ऐश्वर्य सम्बन्धी योगबलको देख, सब जीवोंका पालन करता हुआ लेकिन उनमें न रहता हुआ मेरा आत्मा भूतोंका कारण है।

पिछले दो श्लोकोंमें जो विषय भगवानने कहा है उसे वे दृष्टान्त देकर समझाते हैं :

जिस भांति महान वायु हर जगह घूमता हुआ

आकाशमें सदा रहता है, उसी भाँति सब जीव मुझमें रहते हैं।

हम अपने अनुभवसे रोज़ देखते हैं कि महान वायु सब जगह घूमता हुआ आकाशमें रहता है; इसी तरह मुझमें भी, जो आकाशके समान सर्वव्यापी हूं, तमाम जीव रहते हैं लेकिन बिलकुल संस्पर्श नहीं रखते।

परमात्माही सब भूतोंका आदि अन्त है।

हे कौन्तेय! प्रलयके समय सब प्राणी मेरी प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं और कल्पके आरम्भमें मैं उनको भिन्न भिन्न प्रकारकी सूरतोंमें फिर पैदा करता हूँ।

अपनी प्रकृतिकी सहायतासे, प्राचीन स्वभावके परवश इस प्राणी समूहको मैं बारम्बार पैदा करता हूँ।

ईश्वर अपने कर्मोंके बन्धनमें नहीं बँधता है।

ईश्वर छोटी बड़ी अनेक प्रकारकी असमान सृष्टि रचता है, इसलिये उसे अपने कर्मोंके कारण धर्म अधर्मके बन्धनमें बँधना पड़ता होगा। इसी शङ्काका उत्तर भगवान नीचे देते हैं :—

हे धनञ्जय! ये कर्म मुझे नहीं बाँधते; क्योंकि मैं उन कर्मोंसे उदासीन और बेलाग रहता हूँ;

भगवान कहते हैं कि असमान सृष्टि-रचनाके कर्म मुझे नहीं बाँधते, क्योंकि मैं आत्माकी निर्विकारताको जानता हूं इसलिये बेसरोकार रहता हूं और कर्मके फलकी चाहना नहीं रखता यानी मैं कभी ऐसा ख्याल नहीं करता कि "मैं करता हूं।" दूसरे लोग भी जब किसी कर्मको करके ऐसा नहीं समझते कि ये कर्म "हमने किया" और उसके फलकी इच्छा नहीं

रहनेसे भी धर्म अधर्मके बन्धनसे छूट जाते हैं। अज्ञानी मनुष्य अपनेही कुकर्मोंसे इस तरह कर्म-बन्धनमें बंध जाते हैं जिस तरह रेशमका कीड़ा कीट-कोषमें घिर जाता है।

मैं अध्यक्ष हूँ। प्रकृति मेरी अध्यक्षतामें चराचर जगतको पैदा करती है इसीसे जगत् बारम्बार उत्पन्न होता है।

खुलासा—जगतकी रचनामें प्रकृति उपादान कारण है और ईश्वर निमित्त कारण है। प्रकृति उसकी अचिन्त्य शक्ति है, वह उससे अलग नहीं है। प्रकृति जड़ है। वह सृष्टि रचना कर नहीं सकती और अगर ईश्वर सृष्टि को रचे तो ईश्वरमें दोष लगता है इससे मालुम होता है कि ईश्वरही जगतका अभिन्न निमित्त उपादान कारण है। जड़ प्रकृति चैतन्य ईश्वरका सहारा लेकरही जगत्‌की रचना करती है।

अधर्मियोंका जीवन ।

मूर्ख लोग मुझे सब भूतोंका महेश्वर न जाननेके कारण मेरे मनुष्य-शरीरमें रहनेके कारण मेरा अनादर करते हैं।

मूर्ख मुझे पहचाननेमें असमर्थ हैं। मैं उन लोगोंमें मनुष्य-शरीर धारण करके रहता हूँ इसीसे वे मेरा अनादर करते हैं। वे लोग मुझे महेश्वर, सर्व भूतोंका आत्मा नहीं समझते। मेरी अवज्ञा करते रहनेसे इन बेचारों का नाश होता है।

ये मूर्ख मेरा अनादर इसलिये करते हैं कि इनकी आशा फलवती नहीं है, इनके कर्म निष्फल हैं, इनका ज्ञान फलरहित है, सांसारिक दुर्व्यसनोंमें इनका चित्त

डूबा रहता है और ये लोग मोह पैदा करनेवाली राक्षसी और आसुरी प्रकृतिका आश्रय रखते हैं।

क्योंकि मूर्ख लोग सच्चिदानन्द ईश्वरको छोड़कर अन्य ईश्वरसे मिलनेकी आशा रखते हैं। उनके कर्म इसलिये निष्फल हैं कि वे लोग आत्माको छोड़ कर अन्य ईश्वरको पाने अथवा स्वर्गसुख भोगनेके लिये अग्निहोत्र आदि कर्म करते हैं। उनका ज्ञान फलरहित इसलिये है कि वे लोग आत्माके सिवा अन्य पदार्थोंको सच्चा समझते हैं। उनमें विचार नहीं है इससे वे अनित्य संसारी कुकर्मों में लगे रहते हैं। वे राक्षसी और आसुरी स्वभावके धारण करनेके कारण परद्रव्य, परस्त्रीहरण आदि करते हैं। वे शरीरके सिवा आत्माको नहीं समझते और खाने, पीने, काटने, मारने और लूट खसोट करनेमें लगे रहते हैं।

महात्माओंका जीवन।

हे अर्जुन! दैवी प्रकृतिका † आश्रय रखनेवाले महात्मा लोग मुझे सब प्राणियोंका आदि कारण और अविनाशी समझकर और सब तरफ से चित्त हटाकर मेरीही उपासना करते हैं।

खुलासा—जिन का चित्त यज्ञ वगैरः करनेसे शुद्ध हो गया है ऐसे महात्मा शरीर, इन्द्रिय और मनको वशमें करके, मुझे सब भूतोंका आदि कारण अविनाशी समझकर, शुद्ध अन्तरात्मामें चित्त ठहराकर, मेरीही उपासना करते हैं।

वे लोग हमेशा मेरी चर्चा करते हैं, दृढ़ सङ्कल्प करके

† दैवी प्रकृतिवाले वह कहलाते हैं जो अपने शरीर, इन्द्रियों और मन को वशमें रखते हैं और दया श्रद्धा वगैरः को अपने हृदयमें स्थान देते हैं।

मुझे पानेका उपाय करते हैं, भक्तिपूर्वक मुझे नमस्कार करते हैं, और रात दिन मुझमेंही ध्यान लगाकर मेरी उपासना किया करते हैं।

वे हमेशा मेरे, अपने ईश्वर, ब्रह्मके विषयमें बातचीत किया करते हैं। वे सदा अपनी इन्द्रियों और अपने मनको वशमें रखते हैं। अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहकर प्रेमसे मेरी, दिलके अन्दर रहनेवाले आत्माकी, उपासना किया करते हैं।

कितनेही अधिकारी ज्ञान-यज्ञसे मेरी उपासना करते हैं यानी मुझमें और जीवमें भेद नहीं समझते; कितनेही दास-भावसे भेद बुद्धि द्वारा मेरी उपासना करते हैं; कितनेही बहुत प्रकारसे मुझ विश्वरूप परमेश्वरको उपासना करते हैं।

खुलासा—कितने तो मैं ही ईश्वर हूं, मुझमें और ईश्वरमें कुछ भेद नहीं है, ऐसा समझकर मेरी उपासना करते हैं; कुछ मध्यम श्रेणीके लोग मुझ ईश्वरको अपना मालिक और अपने तई मुझ परमेश्वरका दास समझ कर मेरी उपासना करते हैं; कितनेही लोग जो सुनते हैं उसे मेरा नाम समझते हैं; जो कुछ देते या भोगते हैं उसे मेरे ही अर्पण करते हैं; इस तरह हर प्रकारसे मुझ परमात्माकोही आराधना करते हैं।

और भी खुलासा यह है—कितनेही लोग सच्चिदानन्द ईश्वरको सब भूतोंमें समझते हैं; कुछ लोग जीव और ईश्वरको एक समझते हैं उनका ख्याल है कि हमही परमेश्वर हैं, हममें और परमेश्वरमें भेद नहीं है। जो परमेश्वर है सो हम हैं। कितने लोग परमेश्वरको बहुत प्रकारका समझते हैं यानी ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, गणेश, चन्द्र, राम कृष्ण आदिको परमात्माका मूर्त्तिमान रूप समझते हैं। ये तीनोंही दर्जे व दर्जे अच्छे हैं। अन्य

म तीनोंही प्रकारकी महात्मा पूर्ण-ब्रह्म, शुद्ध सच्चिदानन्द, निराकार निर्वि-कार परमात्माको पा जाते हैं।

शङ्का—भिन्न भिन्न प्रकारसे उपासना करके वे लोग एक परमेश्वरकी उपा-सना किस तरह करते हैं? इसका जवाब भगवान नीचेके चार श्लोकोंमें देते हैं :—

मैं ही क्रतु हूँ, मैं ही यज्ञ हूँ, मैं ही स्वधा हूँ, मैं ही औषध हूँ, मैं ही मन्त्र हूँ, होमका साधन घी मैं ही हूँ, मैं ही अग्नि हूँ और मैं ही हवन हूँ।

अग्निष्टोमादि श्रौत कर्मको 'क्रतु' कहते हैं। अतिथि अभ्यागतकी पूजा इत्यादि पञ्चयज्ञोंको 'यज्ञ' कहते हैं। पितरोंको जो अन्न दिया जाता है उस अन्नको 'स्वधा' कहते हैं। जौ चाँवल वगैर: अन्नोंको जिन्हें मनुष्य खाते हैं और जिनसे रोग नाशहोते हैं 'औषध' कहते हैं। स्वाहा स्वधा ये शब्द वेदके हैं, इन्हींसे हवन किया जाता है, इन्हें 'मन्त्र' कहते हैं, इन मन्त्रोंसे अग्निमें जो घी डाला जाता है उसे 'आज्य' कहते हैं। जिस अग्निमें हवन-सामग्री डाली जाती है वह 'अग्नि' कहलाती है।

हे अर्जुन! इस जगत्का पिता मैं हूँ, माता मैं हूँ, धाता मैं हूँ, पितामह मैं हूँ, जाननेके योग्य मैं हूँ, पवित्र मैं हूँ, ओंकार मैं हूँ, ऋग्वेद, सामवेद, और यजुर्वेद मैं हूँ।

खुलासा—इस जगतका पैदा करनेवाला, पालनपोषण करनेवाला, कर्मों का फल देनेवाला, वेदादि प्रमाणोंका विषय, प्रमेय और चैतन्य मैं ही हूँ, सब वेद मेराही प्रतिपादन करते हैं। ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद मैं ही हूँ, ओं प्रणव मैं ही हूँ।

हे अर्जुन! इस सब संसारकी गति मैं हूँ, सबका

पालन करनेवाला मैं हूँ, सबका स्वामी मैं हूँ, सब बुरे भले कामोंका गवाह मैं हूँ, सबका निवास-स्थान मैं हूँ, सबका शरण-स्थान मैं हूँ, सबका बिना कारणका हितकारी मैं हूँ, सबके पैदा होनेकी जगह मैं हूँ, प्रलय मैं हूँ, संसारकी स्थिति और प्रलयका स्थान मैं हूँ, सबका बीजरूप मैं हूँ, अविनाशी—नाश न होनेवाला—मैं हूँ।

कर्मोंका फल मैं हूँ, प्राणी जो कुछ करते हैं और नहीं करते हैं उसका देखनेवाला साक्षी मैं हूँ, मैं वह हूँ जिसमें सब जीवधारी रहते हैं। मैं ही दुःखियोंका शरण-स्थान हूँ, जो मेरे पास आते हैं मैं उन्हें सङ्कटसे छुड़ाता हूँ। मैं मित्र हूँ, अतः मैं बिना किसी क़िस्मके बदलेकी आशाके भलाई करता हूँ। जगतका आदि मैं हूँ, जगत मुझमेंही ठहरा रहता है और मुझमेंही आकर नाश हो जाता है। मैं वह अविनाशी बीज हूँ जिससे जगत् पैदा होता है, संसारमें प्रत्येक चीज़ बीजसेही पैदा होती है, और चूंकि पैदाइश बराबर होती रहती है, इससे समझा जाता है कि बीज कभी नाश नहीं होता।

हे अर्जुन! मैं ही सबको तपाता हूँ, मैं ही जल बरसाता हूँ और मैं ही उसे रोक लेता हूँ, मैं ही अमरत्व और मृत्यु हूँ; मैं ही सत्य, असत्य अथवा स्थूल सूक्ष्म प्रपञ्च हूँ।

वेदोक्त कर्म करने के फल।

हे अर्जुन! ऋक्, यजुः, साम इन तीन वेदोंके जाननेवाले, सोम रसके पीनेवाले, पापोंसे पवित्र हो जानेवाले,

यज्ञोंसे मेरी उपासना करनेवाले, स्वर्गलोकमें जाना चाहते हैं ; वे इन्द्रलोक—स्वर्ग—में पहुँचते हैं और वहाँ देवताओंके स्वर्गीय सुखोंको उपभोग करते हैं ।

खुलासा—मनुष्य जो ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदको जानते हैं ; जो सोम पीते हैं और उसके पीनेसे पापरहित हो जाते हैं ; जो अग्निष्टोम कर्म करके वसुओं तथा अन्यान्य देवताओंकी भाँति मेरी ही उपासना करते हैं ; जो अपने यज्ञ-कर्मोंके बदलेमें स्वर्ग चाहते हैं ; वे इन्द्रके लोकमें जाते हैं और वहाँ अप्राकृत सुखोंको भोगते हैं ।

वे स्वर्ग-सुख भोगकर, अपने पुण्य-कर्मोंके नाश होने पर फिर मृत्युलोकमें जन्म लेते हैं; इस भाँति तीनों वेदोंके अनुसार यज्ञादि कर्म करनेवाले अपनी कामनाओंके कारण कभी स्वर्गमें जाते हैं और कभी मृत्युलोकमें आते हैं ।

खुलासा—एकमात्र वेदोंके अनुसार कर्म करनेवाले कभी जाते हैं और कभी लौट आते हैं । उन्हें स्वतन्त्रता कहीं भी नहीं मिलती ।

जो पुरुष अभेद भावनासे मेराही ध्यान करते हुए मेरी उपासना करते हैं, उन नित्य योगियोंको मैं इस लोकके पदार्थ देकर उनकी रक्षा करता हूँ और पीछे उनको आवागमनसे छुड़ा देता हूँ ।

हे अर्जुन ! जो लोग दूसरे देवताओंमें श्रद्धा करके उनकी उपासना करते हैं वह मेरी बेक़ायदे पूजा है ; इसी कारणसे उन लोगोंको मुक्ति नहीं मिलती और वे आवागमनके प्रपञ्चमें फँसे रहते हैं ।

हे अर्जुन ! मैं सब यज्ञोंका भोक्ता और सबका स्वामी हूँ, वे मेरे इस तत्त्व को नहीं जानते इसी से आवागमन से छुटकारा नहीं पाते।

खुलासा—श्रुति स्मृतिमें कहे हुए यज्ञोंका स्वामी और भोक्ता मैंही हूँ। वह लोग मुझे ठीक तौरसे नहीं जानते इसीसे बेकायदे पूजा करके अपने किये हुए यज्ञका फल नहीं पाते। वे लोग अपने कर्मों को मेरे अर्पण नहीं करते इसीसे उन्हें फिर लौटकर इस लोकमे आना पड़ता है।

जो लोग अन्यान्य देवताओंकी भक्ति करके, मेरी बेकायदे उपासना करते हैं उन्हें उनके यज्ञोका फल अवश्य मिलता है। देवताओंकी पूजा बिल्कुल बेकाम नहीं होती। उनकी उपासनाके अनुसार फल उन्हें अवश्य मिलता है लेकिन कुछ समय बाद उन्हें इस दुनियामें फिर आना पड़ता है।

किस तरह ?

देवताओंके पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं; पितरोंके पूजनेवाले पितरोंको प्राप्त होते हैं; भूतोंके पूजनेवाले भूतोंको प्राप्त होते हैं और मेरे उपासक मुझे प्राप्त होते हैं।

खुलासा—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, इन्द्र आदिके पूजनेवाले उनके पास जाते हैं। श्राद्ध वगैरः करके पितरोंके पूजनेवाले पितरोंके पास जाते हैं। भूतोंके पूजनेवाले भूतोंमें जा मिलते हैं। मुझ सच्चिदानन्द स्वरूप आत्माकी उपासना करनेवाले मुझ निर्विकार निराकार परमानन्द स्वरूपको पाते हैं।

परमात्माकी भक्तिमें सुविधा।

मेरे भक्तोंको अनन्त फलही नहीं मिलता, बल्कि उनको ऐसा स्थान मिल जाता है जहांसे फिर इस दुनियामें लौटना नहीं पड़ता, तिसपर भी मेरी उपासना उनके लिये सहज है—कैसे ?

हे अर्जुन ! जो कोई भक्तिपूर्वक पत्र, फल, फूल, जल मुझे अर्पण करता है,—शुद्ध चित्त और भक्तिसे अर्पण की हुई उस वस्तुको मैं अङ्गीकार करता हूँ ।

खुलासा—अन्यान्य देवताओंकी उपासनाके लिये बड़ी बड़ी चीजोंकी ज़रूरत है, किन्तु मैं तो एकमात्र भक्तिसेही सन्तुष्ट हो जाता हूँ । जब यह बात है तो—

हे अर्जुन ! तू जो कुछ करता है, तू जो कुछ खाता है, तू जो कुछ होम करता है, तू जो कुछ देता है, और तप करता है वह सब मेरे अर्पण कर ।

अब सुन ऐसा करनेसे तुझे क्या लाभ होगा ।

ऐसा करनेसे तू शुभ-अशुभ फल देनेवाले कर्मोंके बन्धनसे छूट जायगा ; संन्यास योगमें युक्त होकर और मुक्ति पाकर तू मेरे पास पहुँच जायगा ।

अब तुम अपने हर कामको मेरे अर्पण करते रहोगे तो जीते जी ही कर्म-बन्धनसे छुटकारा पा जाओगे और इस कायाके नाश होनेपर मेरे पास पहुँच जाओगे ।

परमात्माकी पक्षपातहीनता ।

शङ्का—इन बातोंसे तो मालूम होता है कि ईश्वरमें राग और द्वेष है, क्योंकि वह अपने भक्तोंपर दया रखता है किन्तु दूसरोंपर नहीं ।

(उत्तर) ऐसी बात नहीं है—

मैं सब प्राणियोंके लिये एकसा हूँ ; न कोई मेरा वैरी है और न कोई मेरा प्यारा है ; जो भक्तिपूर्वक मेरी उपासना करते हैं, वे मुझमें हैं, और मैं भी उनमें हूँ ।

मैं अग्निके समान हूँ—जिस तरह अग्नि उनका शीत हरती है जो उसके पास होते हैं और जो उससे दूर रहते हैं उनका शीत नहीं हरती, इसी तरह मैं अपने भक्तोंपर कृपा रखता हूँ दूसरों पर नहीं। वे जो मेरी भक्ति करते हैं, अपने वर्णाश्रम धर्मका पालन करते हुए शुद्ध चित्त हो जाते हैं, मैं उनके पास हाज़िर रहता हूँ क्योंकि उनका चित्त मेरे रहने लायक़ हो जाता है। जब मैं उनके पास हाज़िर रहता हूँ तब मैं हमेशा उनका भला करता हूँ। जिस तरह सूर्यकी रोशनी सब जगह रहती है किन्तु उसका अक्स साफ़ आइने पर खूब पड़ता है, इसी तरह जिनका चित्त भक्ति के प्रभावसे साफ़ हो जाता है उनमें मैं परमात्मा मौजूद रहता हूँ।

नीच भी भक्तिसे मुक्ति पा जाते हैं।

अब मैं तुझे बताता हूँ कि मेरी भक्ति कैसी उत्तम है :—

अगर कोई नीच भी सबको छोड़कर मेरीही उपासना करे तो वह वास्तवमें साधु है; क्योंकि उसका निश्चय ठीक है।

मेरा अनन्य भक्त शीघ्रही धर्मात्मा हो जाता है और मुक्ति पाता है। हे कुन्ती-पुत्र! तू इस बातको अच्छी तरह जान ले कि मेरे भक्तका कभी नाश नहीं होता।

हे अर्जुन! मेरी शरण आनेसे पापी, स्त्री, वैश्य और शूद्र सभी उत्तम गति—मोक्ष—को पाते हैं।

खुलासा—चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष हो, चाहे कोई किसी वर्णका क्यों न हो, जो ईश्वरको भजता है वही उत्तम गति पाता है। ईश्वर किसीके ऊँचे और नीचे कुलको नहीं देखता। वह तो एक मात्र भक्तिका भूखा है। कहा है—हरिको भजे सो हरिका होई, नीच ऊँच पूछे नहिं कोई।

पुण्यात्मा ब्राह्मणों और भक्त राजर्षियोंका तो कहनाही क्या है। हे अर्जुन! इस अनित्य सुख-रहित लोकको पाकर तू मेरा भजन कर।

हे अर्जुन! तू अपना मन मुझमें लगा, मेरीही भक्ति कर, मेरा ही यज्ञ कर, मुझे ही सिर झुका, मुझमें ही तत्पर रह, इस तरह करनेसे, तू मेरे पास पहुँच जायगा।

दसवाँ अध्याय ।

भगवानकी विभूतियाँ ।

सातवें और नवें अध्यायमें कृष्ण महाराजने ईश्वरकी विभूतियोंका वर्णन संक्षेपसे किया, अब उन्हें विस्तारसे फिर कहते हैं ; क्योंकि ईश्वरकी विभूतियो का समझना सहज काम नहीं है ।

हे महाबाहो ! मेरे उत्कृष्ट वचनको तू फिर सुन । तू मुझसे प्रेम रखता है इसलिये तेरी भलाईके लिये मैं कहता हूँ ।

मेरे प्रभावको देवता और महर्षि कोई नहीं जानते; क्योंकि मैं सब देवताओं और महर्षियोंका आदि कारण हूँ ।

हे अर्जुन ! जो मुझे अजन्मा, अनादि और सारे लोकोंका मालिक जानता है वह मनुष्योंमें मोह रहित है ; वह सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है ।

क्योंकि सब देवता और महर्षियोंका मैं आदि कारण हूं, मेरा आदि कारण कोई नहीं है ; इसलिये मैं अजन्मा और अनादि हूं । क्योंकि मैं अनादि हूं, इसलिये मैं अजन्मा हूं ।

नीचे लिखे हुए कारणोंसे मैं सब लोकोंका महेश्वर हूं :—

हे अर्जुन ! बुद्धि, ज्ञान, अव्याकुलता, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख, दुःख, उत्पत्ति, लय, भय, अभय, अहिंसा, समता, सन्तोष, तपस्या, दान, यश, अयश, प्राणियोंके ये सब भाव मुझसेही होते हैं।

बुद्धि—अन्त:करणमें सूक्ष्म पदार्थोंके समझनेकी जो शक्ति है उसीको बुद्धि कहते हैं। ज्ञान—आत्मा और ऐसेही दूसरे पदार्थोंकी विद्याको ज्ञान कहते हैं। अव्याकुलता—जब कोई काम करना हो या किसी समय मालूम हो तो उसे विचार पूर्वक करनेको अव्याकुलता कहते हैं। क्षमा—किसीके मारने या गाली देनेपर अप्रसन्न न होनेको क्षमा कहते हैं। सत्य—जैसा देखा हो उसे ठीक वैसाही कहनेको सत्य कहते हैं। दम—बाहरी इन्द्रियोंके शान्त करनेको दम कहते हैं। शम—भीतरी इन्द्रिय या अन्त:करणके शान्त करनेको शम कहते हैं। अहिंसा—जीवधारियोंको हानि न पहुंचानेको अहिंसा कहते हैं। सन्तोष—जो मिल जाय या जो पास हो उसीमें राज़ी होनेको सन्तोष कहते हैं। तपस्या—शारीरिक यन्त्रणा सहने और इन्द्रियोंके रोकनेको तपस्या कहते हैं। दान—न्यायसे कमाया हुआ धन सुपात्रोंको देना। यश—सज्जनोंमें कीर्त्ति होना। अयश—बदनामी। प्राणियों के ये सब भिन्न भिन्न प्रकारके भाव उनके कर्मोंके अनुसार मुझ (परमात्मा) सेही होते हैं।

सात महर्षि और चार मनु ये सब मेरे मनसे पैदा हुए हैं और इन्हींसे इस जगत्की सारी प्रजा पैदा हुई है।

खुलासा—भृगु, मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ, ये सात महर्षि तथा सनकादिक चार महर्षि एवं स्वायंभुव आदि मनु, ये सब सृष्टिके आदिकालमें हिरण्य गर्भरूप परमेश्वरसे पैदा हुए थे। उनसे यह सब प्रजा पैदा हुई है। मतलब यह है कि इन सब महाऋषियों और मनु-

मोसे सारी प्रजा पैदा हुई है और वे सब मुझसे पैदा हुए हैं; इससे साफ़ ज़ाहिर है कि मैं, परमात्मा, सब लोकोंका स्वामी हूँ।

जो मेरी इस विभूति और शक्तिको जानता है वह निश्चल योगसे युक्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है।

मैं ही सब जगत्‌को पैदा करनेवाला हूँ और मुझसे ही सबकी प्रवृत्ति होती है, यह जानकर बुद्धिमान लोग मुझे प्रेमसे स्मरण करते हैं।

खुलासा—मैं परब्रह्म ही इस जगत्‌की उत्पत्तिका कारण हूँ यानी मैं ही इस जगत्‌का उपादान कारण और निमित्त कारण हूँ। मुझ सर्वज्ञ, सर्व-शक्तिमान् परमात्माकी प्रेरणासेही सूर्य्य, चाँद और समुद्र आदि अपनी अपनी मर्यादापर चल रहे हैं। मुझ आत्मारूप परमेश्वरसे सत्ता और स्फूर्त्ति पाकर ही बुद्धि और इन्द्रियाँ नाना प्रकारकी चेष्टायें करती हैं। जो लोग मेरे इस प्रभावको जानते हैं वह मुझे नित्य प्रेमभावसे याद करते हैं।

हे अर्जुन! वह लोग रात दिन मुझमें ही दिल लगाये हुए और अपने प्राण भी मेरे अर्पण किये हुए, एक दूसरे को मेराही उपदेश करते हुए, हर समय, मेरीही चर्चा करते हुए सन्तुष्ट और प्रसन्न रहते हैं।

हे अर्जुन! जो हमेशा इस तरह किया करते हैं और प्रेमसे मेरी उपासना करते हैं, उन्हें मैं ऐसी बुद्धि देता हूँ जिससे वे मेरे पास पहुँच जाते हैं।

खुलासा—जो हमेशा मेरी भक्ति रखते हैं, जो बिना किसी अपने स्वार्थ-साधनके, किन्तु एकमात्र मेरे प्रेमसे, मेरी उपासना करते हैं मैं उन्हें ऐसा बुद्धियोग देता हूँ जिससे वे मुझ, परब्रह्मको, आत्माको, अपनेही आत्माको,

तरह समझने लगते हैं और मुझमें मिल जाते हैं। फिर उनको कोई कैद नहीं रहती।

ख़ाली दया करके मैं, उनकी आत्मामें बसा हुआ, अज्ञानसे पैदा हुए अन्धकारको प्रकाशमान ज्ञानरूपी दीपकसे नाश कर देता हूँ।

भगवानकी विभूतियों और उनकी अचिन्त्यशक्तिके विषयमें सुनकर

अर्जुनने कहा :—

हे कृष्ण ! आप परब्रह्म हो, परमतेजोमय हो, परम-पवित्र हो, सब ऋषि तथा देवऋषि नारद, असित, देवल, और व्यास आपको आदिदेव, परमपुरुष, अज और विभु कहते हैं। आप भी स्वयं अपने तईं ऐसाही बताते हैं।

हे केशव ! जो कुछ आप कहते हैं और जो कुछ ये सब ऋषिगण कहते हैं इस सब को मैं सत्य मानता हूँ; क्योंकि आपकी उत्पत्तिके कारणको न तो देवता जानते हैं और न दानव जानते हैं।

हे पुरुषोत्तम ! हे प्राणियोंके ईश्वर ! हे प्राणियोंके नियन्ता ! हे देवोंके देव ! हे जगन्नाथ ! आपही अपने तईं जानते हैं और दूसरा कोई आपको नहीं जानता।

हे कृष्ण ! आप मेरे सामने अपनी उन दिव्य विभू-तियोंको कहिये जिनके द्वारा आप इन लोकोंमें व्याप्त हो रहे हैं।

खुलासा—मुझे यह बतलाइये कि किन किन चीजोंमें आपकी महिमा अधिक दिखाई देती है।

हे योगिराज! आपका निरन्तर ध्यान करता हुआ मैं आपको किस तरह जान सकता हूँ? आपका ध्यान किन किन पदार्थोंमें करना चाहिये?

हे जनार्दन! अपनी महिमा और शक्तिको मुझे एकबार फिर खुलासा बताइये; क्योंकि आपकी अमृतरूपी बातोंके सुननेसे मेरा मन नहीं भरता।

खुलासा—यद्यपि आप अपनी विभूतियोंको मुझे पहले बता चुके हैं, तथापि एकबार अपने योग और ऐश्वर्यको फिर खोल खोलकर समझाइये। आपकी अमृतसे सनी हुई बाणी मुझे बड़ी प्यारी लगती है। आपकी बातें सुननेसे मेरा जी नहीं अघाता। जितना आप कहते हैं उतनी ही और सुननेकी इच्छा बढ़ती जाती है।

भगवानकी विभूतियों का वर्णन्।

भगवानने कहा:—

हे अर्जुन! मेरी विभूतियोंका अन्त नहीं है। मेरी विभूतियां अनन्त हैं, पर मैं उनमेंसे मुख्य मुख्य विभूतियोंका हाल सुनाता हूँ।

हे गुड़ाकेश! सब प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाला आत्मा मैं हूँ, मैं ही सब प्राणियोंका आदि, मध्य और अन्त हूँ।

खुलासा—सब प्राणियोंमें रहनेवाला ईश्वरका ही रूप है। वही सबका

आदि मध्य और अन्त है। अर्थात् ईश्वरही सबका पैदा करनेवाला, पालन करनेवाला और नाश करनेवाला है।

हे अर्जुन! बारह आदित्योंमें विष्णु नामक आदित्य मैं हूँ, प्रकाशमान् ज्योतियोंमें अंशुमान सूर्य्य मैं हूँ, उनचास मरुत्तगणोंमें मरीचि नाम वायु मैं हूँ, तारागणोंमें चन्द्रमा मैं हूँ।

वेदोंमें सामवेद मैं हूँ, देवताओंमें इन्द्र मैं हूँ, इन्द्रियोंमें मन मैं हूँ, प्राणियोंमें चेतनशक्ति मैं हूँ। ग्यारह रुद्रोंमें शङ्कर मैं हूँ, यक्ष राक्षसोंमें कुवेर मैं हूँ, आठ वसुओंमें अग्नि मैं हूँ, पर्वतोंमें मेरु मैं हूँ।

प्रोहितोंमें मुख्य बृहस्पति मैं हूँ, सेनापतियोंमें स्कन्द मैं हूँ, झीलोंमें समुद्र मैं हूँ।

बृहस्पति मुख्य प्रोहित हैं क्योंकि वह इन्द्रके प्रोहित हैं। देवताओंके सेनापतिका नाम स्कन्द है।

महर्षियोंमें भृगु मैं हूँ, वाणीमें एक अक्षर ॐ मैं हूँ, यज्ञोंमें जप-यज्ञ मैं हूँ, स्थावरोंमें हिमालय मैं हूँ।

सब वृक्षोंमें पीपल मैं हूँ, देवऋषियोंमें नारद मैं हूँ, गन्धर्वोंमें चित्ररथ मैं हूँ, सिद्धोंमें कपिलमुनि मैं हूँ।

घोड़ोंमें अमृतसे उत्पन्न उच्चैःश्रवा मैं हूँ, हाथियोंमें ऐरावत और मनुष्योंमें राजा मैं हूँ।

जब समुद्र मथा गया था तब उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा समुद्रसे निकला था।

शस्त्रोंमें वज्र मैं हूँ, गायोंमें कामधेनु मैं हूँ, पैदा करनेवाला कामदेव मैं हूँ, साँपोंमें वासुकि मैं हूँ।

नागोंमें अनन्त मैं हूँ, जलचरोंमें वरुण मैं हूँ, पितरोंमें अर्यमा मैं हूँ, शासन करनेवालोंमें यम मैं हूँ।

साँपोंके राजाका नाम अनन्त है। जलदेवोंके राजाका नाम वरुण है। पितरोंके राजाका नाम अर्यमा है।

दैत्योंमें प्रह्लाद मैं हूँ, गिनती करनेवालोंमें काल मैं हूँ, हिरनोंमें सिंह मैं हूँ और पक्षियोंमें गरुड़ मैं हूँ।

पवित्र करनेवालोंमें पवन मैं हूँ, योधाओंमें राम मैं हूँ, मछलियोंमें मगर मैं हूँ, नदियोंमें गङ्गा मैं हूँ।

प्राणियोंका आदि, मध्य और अन्त मैं हूँ, विद्याओंमें अध्यात्मविद्या मैं हूँ, वादियोंमें सिद्धान्त मैं हूँ।

अक्षरोंमें "अ" मैं हूँ, समासोंमें द्वन्द्व समास मैं हूँ। अक्षयकाल मैं हूँ, चारों ओर मुँहवाला और सबके कर्मोंका फल देनेवाला मैं हूँ।

सबके नाश करनेवाली मृत्यु मैं हूँ, सबके उत्कर्ष और अभ्युदयका कारण मैं हूँ, स्त्रियोंमें कीर्त्ति, लक्ष्मी, वाणी, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा मैं हूँ।

स्मृति बहुत दिनोंकी बात याद रखनेको कहते हैं। मेधा—ग्रन्थ-धारणाशक्तिको कहते हैं। धृति—भूख प्यास आदिमें न घबरानेको कहते हैं।

सामवेदके मन्त्रोंमें बृहत्साम मैं हूँ, छन्दोंमें गायत्री

छन्द मैं हूँ, महीनोंमें मार्गशीर्ष मास मैं हूँ, ऋतुओंमें वसन्त ऋतु मैं हूँ ।

छलियोंमें जूआ, तेजस्वियोंमें तेज, विजेताओंमें जय, उद्यमियोंमें व्यवसाय और सत्ववालोंमें सत्व मैं हूँ ।

यदुवंशियोंमें वासुदेव मैं हूँ, पाण्डवोंमें अर्जुन मैं हूँ, मुनियोंमें व्यास मैं हूँ, और कवियोंमें शुक्राचार्य्य मैं हूँ ।

दण्ड देनेवालोंमें दण्ड मैं हूँ, जयकी इच्छा करनेवालोंमें नीति मैं हूँ, गुप्त पदार्थोंमें मौन मैं हूँ, ज्ञानवालोंमें ब्रह्मज्ञान मैं हूँ ।

सब जीवोंका बीज मैं हूँ, चराचर प्राणियोंमें ऐसा कोई नहीं है जिसमें मैं न हूँ ।

ऐसा पदार्थ कोई नहीं है जिसमें सत, चित् और आनन्द ये तीन अंश भगवानके न हों ।

हे परन्तप ! मेरी दिव्य विभूतियोंका अन्त नहीं है । उनका वर्णन कोई नहीं कर सकता । मैंने यह जो अपनी विभूतियोंका वर्णन किया है संक्षिप्त है ।

अगर तू मेरे ऐश्वर्य्यका विस्तार जानना चाहता है तो इस तरह जान कि जो जो वस्तु ऐश्वर्य्यमान, कान्तिमान और श्रीमान् हैं उन सबको तू मेरे तेजसे पैदा हुई समझ ।

हे अर्जुन ! इन सब विषयोंके अलग अलग जाननेसे

क्या लाभ होगा ? तू इतनाही समझ ले कि मैंने इस सारे जगत्को अपने एक अंशसे धारणकर रखा है ।

खुलासा—मैंने इस जगत्को अपने एक अंशसे धारण कर रखा है। मुझसे अलग कुछ नहीं है। श्रुति है कि यह सारा विश्व परमात्माका एक चरण है ; बाकी तीन चरण अपने निर्गुण स्वयं ज्योतिस्वरूपमें स्थित हैं ।
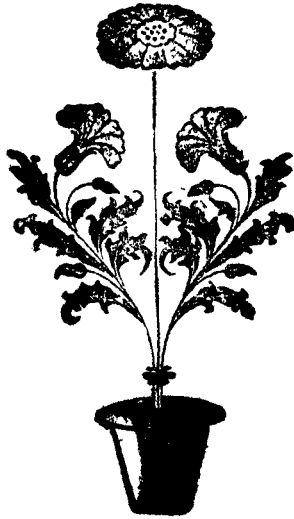
ग्यारहवाँ अध्याय

विश्वरूप ।

विश्वरूप देखनेके लिये अर्जुनकी प्रार्थना ।

ईश्वरको विभूतियोंका वर्णन किया जा चुका है। अब ईश्वरका यह वाक्य सुनकर कि मैंने सम्पूर्ण जगत्को अपने एक अंशसे धारणकर रखा है, अर्जुन को भगवानका विश्वरूप देखनेकी इच्छा हुई, इसलिये

अर्जुनने कहा :—

आपने मेरी भलाईके लिये जो अत्यन्त गूढ़ अध्यात्म-ज्ञान सुनाया है उससे मेरा मोह दूर हो गया है।

खुलासा—आपने पीछेके अध्यायमें मेरी भलाईके लिये आत्मा और अना-त्माका भेद बतानेवाले जो वाक्य कहे हैं उनसे मेरा भ्रम मिट गया है। पहले जो मैं शुद्ध निर्विकार आत्माको कर्ता और कर्म समझता था अब वह बात मेरे दिलमें नहीं है। अब मैं खूब समझगया हूँ कि आत्मा शुद्ध, सच्चिदा-नन्द, निर्विकार है। उसमें कर्ता और कर्म भ्रमसे उसी भांति मालूम होते हैं जिस भांति नावमें बैठे हुए आदमियोंको किनारेके वृक्ष मकान आदि चलते हुए मालूम होते हैं परन्तु वास्तवमें नाव चलती है वृक्षादि नहीं चलते।

मैंने आपसे चराचर जगत्‌के पैदा होने और नाश होनेका वर्णन विस्तारसे सुना और हे कमलनयन! आपका अक्षय महात्म्य भी सुना।

हे परमेश्वर! आपने अपने तईं जैसा बयान किया है आप वैसेही हैं। हे पुरुषोत्तम! मैं ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य्य, वीर्य्य, और तेजसे युक्त आपका रूप देखना चाहता हूँ।

हे भगवन! यदि आप उस रूपका देखना मेरे लिये सम्भव समझते हैं तो हे योगेश्वर! आप मुझे अपना वह अविनाशी रूप दिखाइये।

भगवानने कहा :—

हे अर्जुन! तू मेरे सैकड़ों सहस्रों दिव्यरूपोंको देख, मेरे रूप अनेक प्रकारके हैं, उनके अनेक रङ्ग और अनेक आकृतियां हैं।

हे भारत! आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार और मरुतोंको देख, और अनेक अपूर्व चमत्कारोंको देख।

खुलासा—मेरे शरीरमें बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, दो अश्विनीकुमार और सात मरुद्गणोंको देख। और भी अनेकानेक ऐसी विस्मयजनक बातोंको देख जैसी न तो तैने कभी देखी हैं और न किसी औरकी आदमीने इस जगतमें देखी हैं।

[illegible] :—

हे गुडाकेश ! इस मेरी देहमें सारे चराचर जगतको एकही जगह देख, इसके सिवाय और जो जो तू देखना चाहता है वह सब भी देख ।

खुलासा—इस संपूर्ण चराचर जगत्‌को मेरी देहमें देखनेके सिवा जो जो तू देखना चाहता है वह सब देख यानी तुझे अपनी हार जीतके विषयमें जो सन्देह हो गया है उसे भी मेरे शरीरमें देखकर अपना शक रफा करले ।

दूसरे अध्यायके छठे श्लोकको देखो । उससे अर्जुनको अपनी हारजीत का सन्देह होना प्रकट है । इसीसे भगवानने यह ऊपरकी बातें कही हैं कि "तुझे और जो देखना है सो भी देख ले ।"

हे अर्जुन ! तू अपनी इन आँखोंसे सचमुच मेरे रूप को न देख सकेगा । इसी कारणसे मैं तुझे दिव्य नेत्र देता हूँ । इनसे मेरे योग और ऐश्वर्य्य (विश्वरूप) को देख ।

ईश्वरका विश्वरूप दिखाना ।

सञ्जयने कहा :—

हे राजन ! यह कहकर महायोगेश्वर श्रीकृष्णने अपना परम ऐश्वर्य्य रूप दिखाया ।

उस रूपमें अनेक मुँह, अनेक आँखें, अनेक अद्भुत दर्शन, अनेक दिव्य आभूषण और अनेक प्रकारके दिव्य अस्त्र थे ।

वह रूप दिव्य मालाएँ और वस्त्र पहने हुए था । उसपर दिव्य सुगन्धित चीज़ोंका लेपन हो रहा था । वह

रूप सब आश्चर्य विस्मय पैदा करनेवाला, प्रकाशमान, अन्तरहित था। उसके हर ओर मुँह ही मुँह थे।

अगर आकाशमें हज़ार सूर्योंका प्रकाश एक साथ हो तो वह विश्वरूप भगवानके तेजके समान शायद हो सके।

अर्जुनने उस देवोंके देवके शरीरमें एकही जगह अनेक प्रकारसे सारे संसारको देखा।

उस विश्वरूपको देखकर अर्जुनको बड़ा आश्चर्य हुआ, उसके रोएँ खड़े हो गये। वह सिर झुकाकर और हाथ जोड़कर भगवानसे कहने लगा—

अर्जुनने कहा :—

हे भगवन ! मैं आपके शरीरमें सब देवताओंको, सब प्राणीसमूहको, कमलपर बैठे हुए ब्रह्माको, तमाम ऋषियोंको और दिव्य साँपोंको देखता हूँ।

हे भगवन ! मैं आपके शरीरमें सारे देवताओंको, चराचर प्राणियोंको, सृष्टिके रचयिता, चतुर्मुख ब्रह्माको तथा वशिष्ठ आदि महर्षियोंको एवं वासुकि आदि नागोंको देखता हूँ।

हे विश्वेश्वर, हे विश्वरूप ! मैं आपकी देहमें हर जगह अनेक मुख, अनेक भुजाएँ, अनेक पेट और अनेक आँखें देखता हूँ। न तो आपका कहीं आदि दिखाई देता है न मध्य और न अन्त।

मुझे दीखता है कि आपके किरीट, गदा और चक्र

धारण कर रक्खे हैं। आपकी हर ओर तेजपुञ्ज छा रहा है। आपका रूप अग्नि और सूर्य्यके समान चमक रहा है उसपर नज़र ठहरनी कठिन है। आपके रूपकी सीमाएँ नहीं हैं।

हे कृष्ण! आप अक्षर—अविनाशी—हैं। आप मोक्ष चाहनेवालोंके जानने योग्य परब्रह्म हैं, इस जगत्‌के परम आधार आप हैं। आपही सनातन धर्म्मके विनाश रहित रखवाले हैं। आपही सनातन पुरुष हैं, यह मेरी राय है।

हे कृष्ण! आपका आदि, मध्य और अन्त नहीं है। आपकी शक्तिका अन्त नहीं है। आपके अनेक भुजाएँ हैं। सूर्य्य और चन्द्रमा आपकी आखें हैं। जलती हुई आगके समान आपका चेहरा है। आप अपने तेजसे सारे जगत्‌को तपा रहे हैं।

हे कृष्ण! ज़मीन और आसमानके बीचकी पोल और सारी दिशाओंमें आप अकेलेही व्याप रहे हैं। आपके इस अद्भुत और भयङ्कर रूपको देखकर तीनों लोक काँप रहे हैं।

देवताओंके झुण्डके झुण्ड आपकी शरण आये हैं कितनेही भयभीत होकर आपके गुणोंका बखान कर रहे हैं। महर्षि और सिद्धोंके झुण्ड स्वस्ति कहकर आपकी अनेक प्रकारसे स्तुति कर रहे हैं।

ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु, साध्य नामक

देवता, तेरह विश्वदेव, दो अश्विनीकुमार, उनचास मरुत, पितर, गन्धर्व, देवता और सिद्ध सब आश्चर्य चकित हो कर आपको देख रहे हैं।

हे महाबाहो ! आपके अनेक मुँह और अनेक आँखें हैं। अनेक भुजा, जाँघ और पैर हैं तथा अनेक पेट हैं, अनेक डाढ़ोंसे आप बहुतही भयानक दिखायी देते हैं। आपके इस विश्वरूपको देखकर सारे लोक भयातुर हो रहे हैं और वही हाल मेरा भी है।

आपका शरीर आकाशको छू रहा है, अनेक रङ्गोंमें चमक रहा है, मुँह खुले हुए हैं, बड़े बड़े नेत्र आगके समान चमक रहे हैं। आपको देखकर मेरा हृदय भय-भीत है। वह किसी तरह धीरज और शान्ति नहीं धारण करता।

आपके मुख, डाढ़ोंके मारे, भयङ्कर और कालाग्निके समान मालुम होते हैं, भयके मारे मुझे दिशाएँ नहीं दीखतीं और न मुझे शान्ति मिलती है, हे देवेश ! हे जगत्-निवास ! मुझपर कृपा कीजिये।

खुलासा—आपके मुख डाढ़ों सहित उस कालाग्निके समान मालुम होते हैं जो प्रलयके समय सब लोकों को भस्मीभूत कर देतीहै। भयके मारे मैं ऐसा ज्ञान-शून्य हो गया हूँ कि मुझे पूरब पश्चिम आदि दिशाएँ भी नहीं जान पड़तीं।

अर्जुनको अपने शत्रुओंकी हार दीखना ।

अब आँखें चकराने आनेका जो भय मेरे मनमें था वह भी अब चला गया है ; क्योंकि,

हे कृष्ण ! धृतराष्ट्रके ये सब पुत्र, भीष्म, द्रोण, कर्ण समेत आपके मुखमें जल्दी जल्दी घुसे जा रहे हैं । हमारी ओरके मुख्य मुख्य योधा धृष्टद्युम्न आदि भी आपके मुखमें प्रवेश कर रहे हैं ।

ये लोग आपको विकराल डाढ़ोंवाले मुँहमें जल्दी जल्दी घुसे जा रहे हैं । इनमेंसे कितनेही तो आपके दाँतोंके बीचमें चिपट गये हैं और उनके सिर चूर चूर हो गये हैं ।

जिस भाँति नदियोंकी अनेक धाराएँ समुद्रकी ओर दौड़ती हैं उसी भाँति ये नरलोकके वीर आपके प्रज्व-लित मुखोंमें घुसे जा रहे हैं ।

जिस तरह पतङ्ग अपने नाशके लिये तेज़ आगमें झपटकर जाते हैं उसी तरह ये सब लोग अपने नाशके लिये आपके मुखोंमें झपटे चले जा रहे हैं ।

विश्वरूपका प्रताप ।

हे विष्णो ! आप अपने प्रज्वलित मुखोंसे सब लोगोंको खा खाकर चाटे जाते हो । आपकी उग्र कान्ति अपने तेजसे सब जगत्को पूर्ण करके तपा रही है ।

हे भगवन ! आप ऐसे भयानक रूपवाले कौन हैं ?

मैं आपको नमस्कार करता हूँ । मैं आप आदि पुरुष को जानना चाहता हूँ । मैं आपके विषयमें कुछ भी नहीं जानता ।

भगवानने कहा :—

मैं लोकोंके नाश करनेवाला शक्तिमान् काल हूँ, इस समय लोकोंके नाश करनेमें लगा हुआ हूँ । ये बड़े बड़े योधा जो शत्रु-सेनामें सजे खड़े हैं तेरे द्वारा न मारे जानेपर भी निश्चयही मरेंगे ।

इसवास्ते हे अर्जुन ! तू उठ और यश कमा । शत्रुओंको जीत और समृद्धिशाली राजको भोग । ये तो मेरे द्वारा पहलेही मारडाले गये हैं । हे सव्यसाचिन ! तू तो केवल निमित्त मात्र हो जा ।

खुलासा—हे अर्जुन । तू कमर कसकर खड़ा होजा और इन देवताओंसे भी अजय, भीष्म, द्रोण आदिको मारकर यश लूट ले । मैंने इन सबको पहलेही मार डाला है । तू इनको न मारेगा तोभी ये मरेंगे । इससे तू इनके मारनेमें निमित्त मात्र होकर यशस्वी हो ।

अर्जुनको सव्यसाची इसलिये कहते थे कि वह बायें हाथसे भी बाण चला सकता था ।

द्रोण, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण तथा अन्यान्य वीर योधा मेरे द्वारा मारे डाले गये हैं । इन मरेहुओंको ही तू मार डाल । मनमें भय न कर, उठ, लड़, तू अपने शत्रुओंको अवश्य जीतेगा ।

अर्जुनके मनमें द्रोण, भीष्म, जयद्रथ और कर्णसे भय था । उनका मरना

वह कठिन समझता था। दूसरे द्रोणाचार्य्य और भीष्मका लिहाज़ भी करता था। द्रोण अर्जुनके धनुर्विद्या सिखानेवाले गुरु थे। उनके पास दिव्य अस्त्र थे। भीष्म किसीके मारनेसे न मर सकते थे। उनका मरना उनकी इच्छापर था। सोयही उनके पास भी अनेक दिव्य अस्त्र शस्त्र थे। एकबार उनका और परशुरामजीका युद्ध हुआ था उसमें भी वे न हारे। जयद्रथके बापने तपस्या करके वरदान था कि जो तुम्हारे बेटेका सिर काटेगा उसका भी सिर कटकर गिर पड़ेगा। कर्ण सूर्य्य भगवानसे पैदा हुए थे। उनके पास इन्द्रकी दी हुई लोक-संहारिणी शक्ति थी। इन्हीं सब कारणोंसे अर्जुन मनमें घबराता था। इसीसे विश्वरूप भगवानने कहा "हे अर्जुन! तू क्यों घबराता है? इन सबको तो मैंने मार डाला है। मरे हुओंको मारकर तू यश लूट ले।

अर्जुन द्वारा विश्वरूप भगवानकी स्तुति ।

सञ्जयने कहा :—

हे राजन! केशवकी यह बातें सुनकर अर्जुन काँपने लगा और हाथ जोड़कर नमस्कार करने लगा। भयके मारे घबराकर फिर नमस्कार करने लगा और गद्गद वाणीसे कहने लगा :—

सञ्जयका इस मौके पर धृतराष्ट्रको समझाना बड़ा प्रयोजनीय है। कैसे? सञ्जयको विश्वास था कि धृतराष्ट्र महाराज अपने पुत्रको, द्रोण, भीष्म, कर्ण इत्यादिके मरनेसे, सहायहीन समझकर अपनी जयकी आशा परित्याग कर देंगे और सन्धि कर लेंगे। इससे दोनों पक्षवालोंको सुख होगा, किन्तु प्रबल भावीके वश होकर धृतराष्ट्रने इस बातपर भी कान न दिया।

अर्जुनने कहा :—

हे हृषीकेश! यह ठीक है कि आपकी महा महिमा

और अद्भुत प्रभाव के कारण से जगत् आपसे खुश है और आपकी भक्ति करता है ; राक्षस भयके मारे दशों दिशाओं में भागे फिरते हैं और सिद्धलोग आप को नमस्कार करते हैं

नीचे लिखे हुए कारणोंसे भी जगत आपको नमस्कार करता और आप में भक्ति रखता है :—

हे महात्मन! हे अनन्त ! हे देवेश ! हे जगत्निवास! यह सब जगत् आपको नमस्कार क्यों न करे जबकि आप ब्रह्मा से भी बड़े हैं, ब्रह्मा के भी पैदा करनेवाले हैं। सत् और असत्से भी परे जो अक्षर ब्रह्म है वह भी आपही हैं।

आपको सबके नमस्कार करनेके इतने कारण है—(१) आप महात्मा हैं, (२) आप अनन्त हैं, (३) देवताओंके भी ईश्वर है (४) जगत्के निवास-स्थान है, (५) आप ब्रह्मासे भ बड़े और उनके कर्त्ता है, (६) सत् असत् यानी व्यक्त और अव्यक्तसे भी बड़ा जो अक्षर —अविनाशी—ब्रह्म है वह आप है। मतलब यह कि आप सत् असतसे भी परे अक्षर— अविनाशी—पूर्ण ब्रह्म, शुद्ध सच्चिदानन्द है।

हे भगवन ! आप आदि देव और पुराण पुरुष हैं। इस सम्पूर्ण संसार के लय स्थान आपही हैं। आप सब के जाननेवाले हैं। आप जानने योग्य हैं। आप परम धाम हैं। आप से ही यह संसार व्यापत हो रहा है। आप अनन्त रूप हैं।

हे भगवन। आप जगत्के रचनेवाले हैं। आप प्राचीन पुरुष हैं।

जो इस जगत्‌में जानने लायक है, उसके जाननेवाले आप हैं। महाप्रलयके समय यह सब जगत् आपहीमें निवास करता है। हे अनन्त! आपही इस विश्वमें व्याप्त हो रहे हैं इन सब कारणोंसे आप नमस्कार-योग्य हैं।

आप वायु हैं, यम हैं, अग्नि हैं, वरुण हैं, चन्द्रमा हैं, प्रजापति हैं, ब्रह्मा के पिता हैं, इसलिये आप को हज़ार बार नमस्कार है, और फिर भी आप को नमस्कार है।

भगवानको बारम्बार नमस्कार करनेसे यह मालुम होता है कि अर्जुन भगवानमें परले सिरेकी श्रद्धा और भक्ति रखता था इसीसे हजारों नमस्कार करनेसे भी अघाता न था।

हे सर्व! आपको आगे से नमस्कार है पीछे से नमस्कार है और हर ओर से नमस्कार है, आप अनन्त शक्ति और अनन्त वीर्य से सबमें व्यापक हैं; इसी कारण से आप सर्व हैं।

आपको पूरबमें नमस्कार है और हर दिशामें नमस्कार है क्योंकि आप सब दिशाओंमें मौजूद हैं। जो वीर्यवान होते हैं वे साहसी नहीं होते किन्तु आपमें अनन्त शक्ति और अनन्त साहस है। अपने एक आत्मासे आप जगत्‌में व्यापक हैं, आपही सर्व हैं। आपके बिना कुछ नहीं है।

अर्जुनका ईश्वर से क्षमा मांगना।

मैंने अज्ञानताके कारण आपकी महिमा नहीं जानी। मैंने आपको अपना मित्र समझकर, अथवा अपने मामाका बेटा भाई समझकर आपका कितनेही मौकोंपर जो अपमान किया है उसके लिये मुझे क्षमा कीजिये—यही बात कहकर आगेके दो श्लोकोंमें अर्जुन माफी मांगता है।—

मैंने आपको अपना मित्र समझकर जो आपको हे कृष्ण ! हे यादव ! हे मित्र ! कहकर ढिठाई या प्रेम से सम्बोधन किया है वह आपकी महिमा न जानने के कारण किया है। खेलने के समय, सोने के समय, बैठने के समय, खाने के समय, एकान्त में या सभामें हे अच्युत ! मैंने जो आपका अनादर किया हो उसके लिये आप मुझे क्षमा कीजिये। आप अप्रमेय प्रभाव वाले हैं।

आप इस चराचर जगत् के पिता हैं; आप इस जगत् के पूज्य हैं; आप सबसे बड़े गुरु हैं; क्योंकि आपकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है । हे अमित प्रभाव शालिन ! आपसे बढ़कर इस त्रिलोकी में कौन हो सकता है ?

हे भगवन् ! आपके प्रभावकी सीमा नहीं है। आपही इस जगत्के रचने और पालन करनेवाले हैं। आप इस जगत्के पूज्य और महान गुरु हैं। आपकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है, क्योंकि दो ईश्वरोंका होना असम्भव है। यदि एकसे अधिक ईश्वर होता तो यह दुनिया इस भांति न रहती। जब एक ईश्वर सृष्टि रचना चाहता तो दूसरा उसे नाश करना चाहता। इस बातका कोई निश्चय नहीं कि दोनों भिन्न भिन्न ईश्वरोंका एक दिल होता; क्योंकि दोनोही एक दूसरेसे स्वतन्त्र होते। दोनोही अपनी अपनी मनमानी करते। इसका फल यह होता कि दुनिया आजकी तरह न दिखाई देती। इसलिये हे पूजने योग्य ! मैं सिर नवाकर, साष्टाङ्ग दण्डवत करके आपसे क्षमा प्रार्थना करता हूं, कि आप मेरे अपराधोंको उसी तरह क्षमा कीजिये जैसे पिता पुत्रके, मित्र मित्रके तथा प्रेमी अपनी प्रेमिकाके अपराध को क्षमा करता है।

अर्जुन भगवान से अपना पहला रूप धारण करनेकी प्रार्थना करता है।

हे देवों के देव ! हे जगत्-निवास ! मैंने आपका यह रूप पहले कभी नहीं देखा था। इस रूपको देखकर मैं प्रसन्न हुआ हूँ तथापि मेरा मन डरके मारे घबरा रहा है; इसलिये मुझे अपना पहलाही रूप दिखाइये।

हे महाबाहो ! हे विश्वमूर्ते, मैं आपको पहले की भाँति किरीट मुकट धारण किये, गदा चक्र हाथ में लिये, चतुर्भुज रूपमें देखना चाहता हूँ

भगवान अपना पहला रूप धारण करते हैं।

अर्जुनको भयभीत देखकर भगवानने विश्वरूपको समेट लिया और अर्जुनको मीठे मीठे शब्दोंमे समझा देते हुए कहा :—

भगवान ने कहा :—

हे अर्जुन ! मैंने खुश होकर अपनी योग-शक्तिसे तुझे अपना यह आदि, अनन्त, तेजोमय परम विश्वरूप दिखाया है, जिसे तेरे सिवाय पहले किसी ने नहीं देखा।

हे कुरुश्रेष्ठ ! मेरे इस रूपको तेरे सिवाय इस मृत्यु-लोक में कोई वेद पढ़कर, यज्ञ करके, दान करके, अग्नि-होत्र करके, कठिन तपस्या करके नहीं देख सकता है।

हे अर्जुन मेरे इस भयङ्कर रूपको देखकर, न तो

घबरा न भय कर; निर्भय और प्रसन्नचित्त होकर मेरे पहले रूपको फिर देख।

सञ्जय ने कहा :—

यह बातें कहकर वासुदेव ने अर्जुन को अपना पहला रूप फिर दिखाया और उस महात्मा ने शान्तरूप धारण करके डरे हुए अर्जुन को तसल्ली दी।

अर्जुन ने कहा :—

हे जनार्दन! आपका यह शान्त मनुष्य-रूप देखकर मेरा घबराहट जाता रहा है और मेरे जी में जी आ-गया है।

भगवान ने कहा :—

हे अर्जुन! तू ने मेरा यह रूप जो देखा है इस का देखना कठिन है। देवता भी इस रूपको देखनेकी इच्छा रखते हैं

हे अर्जुन! मेरा यह रूप जो तू ने अभी देखाहै इसको देवता भी देखना चाहते हैं मगर उन्होंने यह रूप कभी नहीं देखा और न कभी इसे देखेंगे।

क्यों ?

जो रूप तूने देखा है उसे वेद पढ़कर, तपकरके, दान देकर, यज्ञ करके कोई नहीं देख सकता।

हे परंतप! मेरे इस रूपको मनुष्य अनन्य भक्तिद्वारा जान सकते और देख सकते हैं और तत्त्व ज्ञानद्वारा मुझमें प्रवेश कर सकते हैं।

गीता की समस्त शिक्षाओं का सार

अब यहां तमाम गीता शास्त्रकी शिक्षाओंका सार जो मोक्ष दिलानेमें परम सहायक है कहा जायगा। इसपर सभीको अमल करना चाहिये।

वह जो मेरेही लिये कर्म करता है, मुझेही परम पुरुषार्थ समझता है, मुझ में ही भक्ति रखता है, जो आसक्ति रहित है, जो किसी प्राणीसे बैर नहीं रखता, हे पाण्डव! वही मुझे पाता है।

खुलासा:—जो मुझ परब्रह्म मानकर मेरे लिये अपना कर्त्तव्य पालन करता है, जो मेरा भक्त है, जिसे फलोंमें मोह नहीं है, जो किसीका शत्रु नहीं है, जो अपने तकलीफ पहुंचानेवालोंसे भी बैर नहीं रखता, वह मुझ ईश्वरको अवश्य पाता है। जो अपने स्वार्थके लिये कर्म करता है, मुझमें भक्ति नहीं रखता, अपने कुटुम्बी स्त्री, पुत्र, मित्र आदिमें मन लगाये रहता है, हर किसीसे बैर रखता है ऐसे मनुष्यको मैं नहीं मिलता।
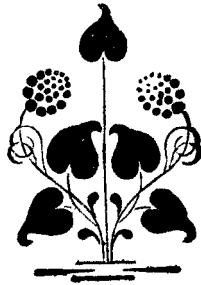
भक्तियोग।

कौन श्रेष्ठ हैं—ईश्वरके उपासक अथवा अक्षरके उपासक?

अर्जुन आगे भगवानसे इस बातका शक दूर करना चाहता है कि ईश्वरको सगुण मानकर उपासना करने वाला अच्छा है अथवा निर्गुण मानकर उपासना करने वाला अच्छा है। अर्जुन भगवानसे कहता है कि दूसरे अध्यायसे दशवें अध्याय तक ईश्वरकी विभूतियोंका वर्णन हुआ है। वहां आपने उपाधि रहित अक्षर, अविनाशी ब्रह्मकी उपासनाका उपदेश दिया है और कितनीही जगह उपाधिसहित—सगुण ईश्वरकी उपासनाका उपदेश दिया है। ग्यारहवें अध्यायमें जो आपने विश्वरूप दिखाया है वह भी इसी ग़रज़से दिखाया है। आपने वह रूप दिखाकर मुझे आपकी ही गरज़से काम करनेका उपदेश दिया है। इसीसे मैं पूछता हूं कि दोनों प्रकारकी उपासनाओंमेंसे कौनसी अच्छी है? ईश्वरकी उपासना श्रेष्ठ है या अक्षर—अविनाशी—ब्रह्मकी उपासना श्रेष्ठ है?

अर्जुनने कहा :—

जो हमेशा भक्तिमें लवलीन होकर आपके सगुण विश्वरूपकी उपासना करते हैं वे अच्छे हैं अथवा जो आपको अक्षर—अविनाशी—अव्यक्त मानकर उपासना करते हैं वे उत्तम हैं?

ईश्वरके उपासक ।

भगवानने कहा :—

हे अर्जुन ! जो हमेशा भक्ति-योगमें युक्त होकर केवल मुझमें ही मन लगाकर अत्यन्त श्रद्धासे मेरी उपासना करते हैं, मेरी समझमें, योगियोंमें वे ही श्रेष्ठ हैं ।

जो भक्त मुझे विश्वरूप परमेश्वर और योगेश्वरोंका भी ईश्वर समझ कर मुझमें चित्त लगाते हैं और मुझमें परले सिरेकी श्रद्धा भक्ति रखते हैं,—वे मेरी समझमें योगियोंमें श्रेष्ठ हैं। वे दिवा रात मेरे ही ध्यानमें लगे रहते हैं इसी लिये उन्हें श्रेष्ठ योगी कहा है।

अक्षरके उपासक ।

जब आपको सगुण मानकर उपासना करनेवाले श्रेष्ठ योगी हैं तब तो आपको निर्गुण मानकर उपासना करने वाले क्या श्रेष्ठ योगी नहीं हैं ?—

ठहर, उनके विषयमें मैं जो कहता हूँ सो सुन—

जो अपनी सारी इन्द्रियोंको वशमें करके, सदा समान नज़रसे देखते हुए, सब प्राणियोंका भला चाहते हुए, मुझे अविनाशी, अनिर्देश्य, अव्यक्त, सर्वव्यापक, अचिन्त्य, कुटस्थ, अचल और ध्रुव समझकर मेरी उपासना करते हैं वे मुझे पाते हैं ।

अविनाशी = जिसका कभी नाश न हो।

अनिर्देश्य = जिसका बयान न किया जा सके।

अव्यक्त = जो इन्द्रियोंसे न जाना जावे।

सर्व व्यापक = जो सब जगह मौजूद हो।

अचिन्त्य = जो ध्यानमें न आवे।

अचल = जो हिले चले नहीं।

ध्रुव = जो नित्य और स्थिर हो।

कूटस्थ = वह है जो मालिक होकर मायाके कामोंको देखे।

अक्षर ब्रह्म आकाशकी तरह सर्व व्यापक है। वह अचिन्त्य है क्योंकि वह इन्द्रियोंसे देखा और जाना नहीं जा सकता। वह मायाके कामों का देखने वाला उसका मालिक है; इसीसे वह व्यापार रहित, नित्य और स्थिर है। यही अक्षर—अविनाशी—ब्रह्मके गुण हैं। वे लोग जो अपनी तमाम इन्द्रियोंको वशमें करके, सब जीवोंको समान समझ करके, अक्षर ब्रह्मका ध्यान करते हैं वे स्वयं मेरे पास आते हैं—यह कहनेकी जरूरत भी नहीं है कि वे मेरे पास आते हैं; क्योंकि सातवें अध्यायके १८ वें श्लोकमें कहा गया है 'बुद्धिमान मेरा ही आत्मा है'—यह भी कहनेकी ज़रूरत नहीं है कि वे सर्व्व श्रेष्ठ योगी हैं—क्योंकि वह और ईश्वर एक ही हैं।

लेकिन।

जिनका चित्त अव्यक्त रूपमें लगा हुआ है उनको बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है; क्योंकि शरीरधारियोंको अव्यक्तकी उपासना करना बड़ा कष्ट दायक है।

जो मेरे लिये ही सब कर्म्म करते हैं उनको भी सचमुच बड़ा कष्ट होता है; किन्तु जो अक्षर परब्रह्मकी उपासना और ध्यान करते हैं उनको और भी अधिक कष्ट होता है,—क्योंकि उनको अपनी देहकी ममता भी त्यागनी पड़ती है। शरीर धारियोंको परब्रह्म अविनाशी तक पहुंचना बहुत ही कठिन है क्योंकि उनको अपने शरीरमें मोह है। शरीर की ममता त्यागे बिना अक्षर ब्रह्मकी उपासना होती नहीं और शरीरकी ममता छोड़नेमें बड़ा कष्ट होता है।

ईश्वरोपासनासे मुक्ति।

अक्षर-उपासकोंका ज़िक्र आगे चलकर किया जायगा।

लेकिन जो सब कर्म्मोंको मेरे अर्पण करके, मुझे ही अत्युच्च समझ कर, सबको छोड़ कर, योगद्वारा एकमात्र मेरा ही ध्यान और स्मरण करते हैं; जिनका चित्त मुझ में लगा रहता है उन्हें मैं शीघ्र मृत्यु रूप संसार-सागरसे बचा लेता हूँ।

जो सबको छोड़ कर केवल मेरी ही उपासना करते हैं, मैं, परमात्मा, उनको मृत्यु रूपी संसार-सागरसे निकाल लेता हूं क्योंकि उनके चित्त मेरे विश्वरूपमें लगे हुए हैं।

हे अर्जुन! तू अपना चित्त एक मात्र मुझमें जमा दे, अपनी बुद्धिको मुझमें लगा दे। तू मृत्युके बाद निस्सन्देह अकेले मुझमें निवास करेगा।

अपना मन—अपने कर्म्म और ख़्यालात—मुझ, विश्वरूप परमेश्वरमें जमा दे। अपनी बुद्धिको जो विचार करती है मुझमें लगा दे। क्या नतीजा निकलेगा?—सुन—तू इस कायाके नाश होने बाद निश्चय ही मुझ में स्वयं मेरी तरह निवास करेगा। तू इस विषयमें सन्देह न कर।

अभ्यास योग।

हे धनञ्जय! अगर तू अपना चित्त स्थिरतासे मुझमें नहीं लगा सकता, तो बारम्बार अभ्यास योग द्वारा मेरे पास पहुँचनेकी चेष्टा कर।

अगर तुम अपना चित्त स्थिरतासे जैसा कि मैंने बताया है मुझमें नहीं

लगा सकते तो चञ्चल चित्तको बारम्बार विषयोंसे हटाकर अभ्यास योग द्वारा मेरे विश्वरूपमें पहुंचनेकी कोशिश करो ।

चित्तको बारम्बार सब ओरसे हटाकर, फिर फिर कर अपने ध्येय पदार्थ पर लगानेको "अभ्यास" कहते हैं । अभ्यासके माइने समाधान या चित्तकी स्थिरता है जो अभ्यास करनेसे होती है ।

ईश्वर सेवा ।

अगर तू अभ्यास भी न कर सके तो मेरे लिये कर्म्म करने पर लगा रह । मेरे लिये कर्म करते हुए भी तुझे सिद्धि प्राप्त हो जायगी ।

अगर तू अभ्यास न कर सके तो केवल मेरे लिये कर्म कर, इस तरह करनेसे तुझे सिद्धि मिल जायगी :—पहले तेरा चित्त शुद्ध हो जायगा, इसके बाद चित्तकी स्थिरता होगी, इसके बाद ज्ञान होगा और अन्तमे मोक्ष हो जायगी, सारांश यह है कि ईश्वरके लिये कर्म करनेसे चितकी शुद्धि हो जायगी ।

कर्मफलोंका त्याग ।

अगर तू यह भी न कर सके तो अपने मनको वशमें करके, मेरी शरण आ और सब तरहके कर्मों के फलकी इच्छा त्याग दे ।

अगर तू मेरे उपदेशानुसार मेरे लिये कर्म न कर सके तो तू कर्म कर और उन सब कर्मों को मेरे अर्पण कर दे और उन कर्मोंके फलकी वासना त्याग दे ।

आगे भगवान सब कर्मों के फलोके त्यागनेकी प्रशंसा करते हैं ।

अभ्याससे ज्ञान अच्छा है; ज्ञानसे ध्यान अच्छा है; ध्यानसे कर्म-फलोंका छोड़ देना अच्छा है। कर्मफलोंके त्याग देने पर शीघ्रही शान्ति मिल जाती है।

अज्ञानता सहित अभ्याससे ज्ञान अच्छा है। उस ज्ञानसे ज्ञान सहित ध्यान अच्छा है। ज्ञान सहित ध्यानसे कर्म-फलोंका त्याग अच्छा है। मनको वशीभूत करके कर्म-फलोंके त्यागनेसे संसारके बन्धनसे शीघ्र ही छुट्टी हो जाती है; इसमें विलम्ब नहीं होता।

अक्षर ब्रह्मके उपासक।

भगवान कृष्णचन्द्रने अल्पमतियोंके लिये निर्गुण ब्रह्मकी उपासना कठिन समझी थी इसीसे सगुण ब्रह्मकी उपासना अच्छी बतलाई। जो लोग सगुण ब्रह्मकी उपासना भी नहीं कर सकते उनके लिये पहले अभ्यास बताया। जिनसे अभ्यास भी नहीं हो सकता उनके लिये सब कर्म ईश्वरके लिये करने की सलाह दी। जिनसे वह भी नहीं हो सकता उनको कर्म-फल त्यागने की सलाह दी। यह सब विधियाँ बतानेसे भगवानका मतलब यह है, कि अधिकारी मनुष्य सब रुकावटोंसे अलग होकर निर्गुण ब्रह्म-विद्या सीखे। उनका मतलब यह है कि ऊपर लिखे साधन मनुष्य करे और उसे उसके फल स्वरूप निर्गुण ब्रह्म-विद्या मिले। जब मनुष्यका मन सगुण ब्रह्मकी उपासना करते करते वशमें हो जावे तब वह निर्गुण ब्रह्ममें मन लगावे। जो अज्ञानी हैं, तीव्र-मति नहीं हैं उनके लिये भगवानने सीढ़ी सीढ़ी चलकर ऊंचे चढ़नेकी सलाह दी है।

भगवानने जो पहले इसी अध्यायमें निर्गुण उपासनाकी बुराई की है वह इस लिये नहीं की है, कि निर्गुण उपासना सगुण उपासनासे बुरी है अथवा निर्गुण उपासना न करनी चाहिये। उनकी वह निर्गुण उपासना की निन्दा केवल सगुण उपासनाकी प्रशंसाके लिये है। भगवानकी रायमें

निर्गुण ब्रह्मकी उपासना ही सर्व श्रेष्ठ है इसीसे वह आगेके ७ श्लोकोंमें निर्गुण ब्रह्मके उपासकोंकी तारीफ करते हैं।

जो किसीसे वैर नहीं रखता, जो सबसे मित्र-भाव रखता है, जो सब पर दया करता है, जो ममता और अहङ्कारसे अलग रहता है, जो सुख दुःखको समान जानता है, जो शान्त रहता है, जो जितना मिल जाय उसीमें सन्तुष्ट रहता है, जो मनको वशमें रखता है, जो स्थिरचित्त होकर मुझमें ही मन लगाए रहता है, जो मन और बुद्धिको मुझमें ही लगा देता है, वह मुझे प्यारा लगता है।

खुलासा—जो किसीसे भी ईर्षा द्वेष नहीं रखता, यहाँतक कि अपनी बुरो करनेवालोंसे भी वैर नहीं रखता वह मुझे प्यारा है। जो सब जीवों को अपने समान समझता है, जो सब से मित्रता रखता है और सब पर दया करता है वह मेरा प्यारा है। जो किसी चीज को अपनी नहीं समझता तथा जो अहङ्कार से रहित है यानी जिसके दिलमें "मैं" नहीं है वह मुझे प्रिय है। जो सुखसे राजी नहीं होता और दुःख से दुःखी नहीं होता, जो गालियाँ खाने और पिटनेपर भी शान्तचित्त बना रहता है, जो रोज के खाने भरको मिलजाने और न मिलने पर भी सन्तुष्ट रहता है वह मुझे प्यारा लगता है। जो स्थिरचित्त रहता है, जिसे आत्माके विषयमें दृढ निश्चय है, जो सब ओर से मन हटा कर मेरी अनन्य भक्ति करता है और अपनी बुद्धि भी मुझमें ही लगा देता है वह मुझे प्यारा है। ऐसी ही बात सातवें अध्याय के १७वें श्लोक में कही गयी है—"ज्ञानीको मैं प्यारा हूँ और ज्ञानी मुझे प्यारा है" वही बात यहाँ भी कही गयी है।

जिससे कोई प्राणी दुःखी नहीं होता और जो किसी से दुःखी नहीं होता ; जो खुशी, रञ्ज, भय और डाहसे रहित है वह मुझे प्यारा है।

खुलासा—जिससे किसी जीव को डर नहीं लगता, जो किसी जीव से नहीं डरता, जो किसी इच्छित वस्तुके मिलनेसे खुश नहीं होता, जो किसी वस्तुके नाश होने से दुःखी नहीं होता और जो किसी से भी द्वेष भाव नहीं रखता तथा जो किसीसे नहीं डरता वह मेरा प्यारा है।

जो किसी चीज़की इच्छा नहीं रखता, जो पवित्र है, चतुर है, सबसे बेलाग है, जिसके मनमें कुछ दुःख नहीं है, जिसने सब प्रकार के उद्यम त्याग दिये हैं, ऐसा भक्त मुझे प्यारा है।

जो शरीर, इन्द्रियों और इन्द्रियोंके विषयों और उनके आपसके सम्बन्ध से उदासीन रहता है ; जो भीतर और बाहर दोनों ओर से शुद्ध है, जो मित्र और शत्रु किसी की ओर नहीं होता ; जो इस लोक और परलोक के फल देनेवाले कामोंको छोड़ देता है वह मुझे प्यारा है।

जो न तो खुश होता है, न नफरत करता है, न रञ्ज करता है, न कुछ इच्छा रखता है, तथा जो बुरे भलेको छोड़ देता है वही भक्त मेरा प्यारा है।

जो अपनी मन-चाही चीज़के मिलने पर खुश नहीं होता, जो अप्रिय वस्तुसे घृणा नहीं करता, जो अपनी प्यारी चीज़ से अलग होने पर रञ्ज नहीं करता, जो न मिली हुई चीज़ की इच्छा नहीं रखता, वह मुझे प्यारा है।

जो शत्रु, मित्र, प्रतिष्ठा, अप्रतिष्ठाको एकसा सम-

झता है; जो सर्दी गर्मी, सुख और दुःखको बराबर समझता है और किसीमें आसक्त नहीं होता, जो निन्दा स्तुतिको एकसा समझता है, जो चुप रहता है, जो कुछ मिल जाय उसीमें सन्तुष्ट रहता है, जो एक जगह घर बनाकर नहीं रहता है, जिसका चित्त चञ्चल नहीं है, वह भक्त मुझे प्यारा है।

खुलासा—जो किसी भी तरहकी चीज़ से प्रेम नहीं रखता, जो शरीर चलने योग्य जीविका मिलने से भी सन्तुष्ट हो जाता है वह अच्छा है। महाभारत, शान्तिपर्व्व मोक्षधर्म्म २४५-१२ में लिखा है—

जो किसी चीज़से भी शरीर ढक लेता है, जो किसी भी चीज़ से पेट भर लेता है, जो चाहे जहाँ पड़ रहता है, उसे देवता 'ब्राह्मण' कहते हैं।

जो लोग श्रद्धा पूर्व्वक इस अमृत-मय नियम पर चलते हैं, जो मुझ अविनाशी आत्माकी ही उपासना करते हैं वे मुझे प्यारे लगते हैं।

खुलासा—जो अभी वर्णन किये हुए अमृतरूपी नियम पर चलते हैं वे विष्णुभगवान परम परमात्मा के बहुत प्यारे होजाते है। इसलिये इस अमृतरूपी नियमपर, प्रत्येक मोक्ष चाहनेवाले को, जो विष्णुके परमधाम को प्राप्त करना चाहता है, चलना चाहिये।

तेरहवाँ अध्याय।

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ।

सातवें अध्यायमें परमात्मा की दो प्रकार की प्रकृतियों का वर्णन किया गया था,—एक तीन गुणों से बनी हुई, आठ भागोंमें बँटी हुई प्रकृति कही थी। उसका नाम अपरा प्रकृति कहा था क्योंकि वह जड़ है और संसारका कारण है; दूसरी परा प्रकृति का वर्णन किया था उसे जीव रूप बताया था। इन दोनों प्रकृतियोंसे ही ईश्वर पैदा करनेवाला, पालन करनेवाला और नाश करनेवाला है। पहले भी अपरा प्रकृतिको क्षेत्र और परा को क्षेत्रज्ञ कहा था। अब उन दोनों प्रकृतियों पर अधिकार रखनेवाले ईश्वरका असल स्वभाव वर्णन करने की गरज़ से ही क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का खुलासा ज़िक्र किया जाता है।

बारहवें अध्याय के १३ वें श्लोक से अन्ततक तत्त्वज्ञानी संन्यासियों के जीवन बितानेके तरीके कहे गये थे। उसी से यह सवाल पैदा होता है कि पूर्व्वोक्त विधि से जीवन बिताने वाले संन्यासी किस प्रकार का तत्त्व-ज्ञान रखने से ईश्वरके प्यारे होते हैं?—यह अध्याय इस सवाल के जवाब में ही चलता है।

भगवानने पिछले अध्यायोंमें अपने तईं अधिकारी लोगों को संसार-सागर से बचानेवाला कहा है; किन्तु बिना आत्मज्ञान हुए उद्धार हो नहीं सकता। आत्माका ज्ञान होने से ही अविद्या रूप अज्ञान की निवृत्ति होती है। जिस आत्मज्ञानसे प्राणी संसार-सागर से पार होता है और जैसे तत्त्वज्ञानी संन्यासियों का १२ वें अध्यायमें ज़िक्र हुआ है उस आत्म-ज्ञानका बताना बहुत ही ज़रूरी है।

तत्त्वज्ञानसे जीवात्मा और परमात्मा में कुछ भेद नहीं रहता। जीव ब्रह्मका भेद ही अनेक अनर्थोंका कारण है। जो जीव और ब्रह्मको दो समझता है वही बारम्बार जन्मता और मरता है। लेकिन जब तक जीव और ब्रह्म एक नहीं समझे जाते तब तक यह भेद भ्रम नहीं मिटता।

ईश्वर और जीव एक ही है, इसमें अनेक लोग यह शंका किया करते हैं—'मैं सुख पाता हूँ', 'मैं दु:ख भोगता हूँ', ऐसा अनुभव सब प्राणियोंको होता है; अगर सब जीव एक होते तो एक को जो दु:ख होता वह सभी को होता, जो एक को सुख होता तो सभी को सुख होता; इससे मालूम होता है कि सभी भिन्न भिन्न शरीरोंमें भिन्न भिन्न आत्मा हैं। सब जीव एक नहीं हैं और परमात्मा एक है और वह सुख दु:खों से रहित है। सारांश यह कि इन उपरोक्त दलीलोंके देखते हुए आत्मा और परमात्मा एक नहीं हैं। इस शंकाके दूर करने को ही भगवान इस अध्यायमें यह दिखाते हैं कि क्षेत्रज्ञ या जीवात्मा सब शरीरोंमें एक हैं और वह देह इन्द्रिय, अन्त: करण आदि से अलग है।

खुलासा—इस अध्यायमें और आगे के अध्यायों मे आत्मज्ञान यानी शरीर और जीव का भेद खूब खोल खोल कर समझाया जायगा। तथा जीव और ब्रह्म की एकता दिखायी जायगी।

भगवानने कहा—

हे कौन्तेय! इस शरीरको क्षेत्र कहते हैं; जो मनुष्य इसे जानता है उसे शरीर-शास्त्र जानने वाले क्षेत्रज्ञ कहते हैं।

भगवान इस अध्यायमें आत्मज्ञान सिखावेंगे; क्योंकि बिना आत्मज्ञानके संसार से छुटकारा नहीं हो सकता। इसलिये वह पहले 'क्षेत्र' और "क्षेत्रज्ञ" का अर्थ बताते हैं। शरीर को 'क्षेत्र' इसलिये कहते हैं कि

इसमें खेतों की तरह पाप और पुण्य से फल पैदा होते हैं। जो इस को जानता है उसे क्षेत्रज्ञ या खेत के जाननेवाला कहते हैं, यानी जो क्षेत्रको सिरसे पाँव तक समझता है, जो इसे ज्ञान द्वारा अपनेसे अलग समझता है वही क्षेत्रज्ञ यानी क्षेत्रके जाननेवाला है। असल बात यह है कि प्राणी का जो शरीर है वह क्षेत्र या खेत है, पाप पुण्य इसी खेतमें पैदा होते हैं। क्षेत्रज्ञ या जीवका खेत के पाप पुण्योंसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

आगे भगवान जीव और ईश्वर की एकता दिखाते हैं—

हे भारत! सब क्षेत्रों—शरीरों—में क्षेत्रज्ञ—जीव—मुझे ही जान। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका ज्ञान ही मेरी समझमें ज्ञान है।

वह क्षेत्र—शरीर—क्या है, उसका स्वभाव कैसा है, उसके विकार क्या हैं, किन किन कारणोंसे क्या क्या कार्य्य होते हैं, वह क्या है और उसकी शक्ति क्या है, इन सबको तू मुझसे संक्षेपमें सुन।

खुलासा—हे अर्जुन! वह क्षेत्र—शरीर—जिसका ज़िक्रमें पहले कर चुका हूँ किस जड़ पदार्थ से बना है, उसका स्वभाव और धर्म क्या है, वह कैसे कैसे विकारों से युक्त है, और कैसे प्रकृति पुरुष के संयोग से पैदा हुआ है वह मैं तुझे संक्षेप में बताता हूँ। साथ ही यह भी बताता हूँ कि क्षेत्रज्ञ—जीव—का स्वरूप और ऐश्वर्य्य कैसा है।

हे अर्जुन! क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका स्वरूप ऋषियोंने अनेक प्रकारसे वर्णन किया है; ऋक् साम आदि वेदोंने भी भिन्न भिन्न करके इनका स्वरूप वर्णन किया है;

युक्तियों और निश्चित अर्थवाले ब्रह्म सूत्र पदोंमें उनका स्वरूप अनेक तरहसे कहा गया है।

खुलासा—यहां भगवान क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के विषयमें अर्जुन को उपदेश करना चाहते हैं इसी गरजसे अनेक ऋषियों, और वेदों तथा व्यास कृत ब्रह्मसूत्रोंका हवाला देकर अर्जुन की दिलचस्पी बढाना चाहते हैं जिस से वह ध्यान पूर्वक सुने। वह कहते हैं कि क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का स्वरूप वशिष्ट पराशर आदि ऋषियों ने खूब खोल खोलकर अनेक तरह से योग-शास्त्रोंमें कहा है, ऋक् साम आदि वेदोंमें भी इसको खूब कहा है। इनके सिवाय व्यास कृत ब्रह्म सूत्रोंमें यह विषय इस तरह से समझाया है कि फिर सन्देह करने को जगह नहीं रह जाती।

पाँच महाभूत, अहङ्कार, बुद्धि, अव्यक्त, दस इन्द्रियाँ, एक मन, और पाँच इन्द्रियोंके विषय, ये चौबीस तत्त्व और इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, शरीर, चेतना, और धीरज, इन सबसे यह शरीर बना है। यानी ये सब क्षेत्र और क्षेत्रके विकार हैं।

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पांच महाभूत हैं। इन सब का कारण अहङ्कार है, अहङ्कार का कारण बुद्धि है, बुद्धिको महत्तत्त्व भी कहते हैं। बुद्धिका कारण सत्त्व, रज, तम गुणात्मक अव्यक्त है। जो अव्यक्त सबका कारण रूप है वह किसी का भी कार्य रूप नहीं है। पांच महाभूत, अहङ्कार, बुद्धि (महत्तत्त्व) और अव्यक्त इन आठों को ही सांख्य शास्त्र वाले आठ प्रकारकी प्रकृति कहते हैं। आंख, कान, नाक, जीभ और चमड़ा ये पांच ज्ञान की इन्द्रियां हैं और हाथ, पांव, मुंह, लिंग और गुदा ये पांच कर्म-इन्द्रियां हैं। ग्यारहवां संकल्प विकल्पों

से बना हुआ मन है। इनके सिवा इन्द्रियों के ५ विषय हैं। इस तरह ये २४ हुए। सांख्य लोग इन्हीं चौबीसों को चौबीस तत्त्व कहते हैं।

भगवान कहते हैं कि उनको जिन्हें वैसेषिक लोग आत्मा की सहजात उपाधियाँ कहते हैं वे एक मात्र क्षेत्र की उपाधियाँ हैं किन्तु क्षेत्रज्ञ की उपाधियाँ नहीं हैं—

इच्छा—जो सुखकारी वस्तु पहले अनुभवकी है, वैसी ही फिर देखने पर जो उसके लाभ करने की उत्तेजना देती है उसे इच्छा कहते हैं। इच्छा अन्तः करणका स्वाभाविक गुण है; वह क्षेत्र है क्योंकि वह समझने लायक है। इसी तरह द्वेष वह है जो दुःखदायी चीज़ में अनिच्छा पैदा कराता है, यह भी क्षेत्र है क्योंकि यह भी जानने योग्य है। इसी तरह सुख, दुःख आदि सभी क्षेत्र हैं और ये सब अन्तःकरणकी उपाधियाँ हैं। ये सब क्षेत्रज्ञ की उपाधियाँ नहीं हैं। यहाँ क्षेत्र अपने विकारों सहित वर्णन कर दिया गया है।

आत्मज्ञानमें वृद्धि करनेवाले गुण।

क्षेत्र के विषयमें ऊपर संक्षेपमें कहा जा चुका है। क्षेत्रज्ञ के विषय में इसी १३ वें अध्याय के १२ वें श्लोक में कहा जायगा। इस जगह कृष्ण क्षेत्रज्ञ के जानने योग्य साधनों को विस्तार से कहते हैं क्योंकि उन सब साधनों के जानने से आत्मज्ञानमें सहायता मिलती है अथवा यों कह सकते हैं कि आत्मज्ञानके उन उपायों बिना आत्मज्ञान नहीं होसकता। जो आत्मज्ञान-विद्याको जानना चाहते हैं उन्हें इन उपायोंको ज़रूर जानना चाहिये—क्योंकि ज्ञानके साधन होने से ये भी ज्ञान रूप हैं।

अमानित्व, अदम्भित्व, अहिंसा, क्षांति, सरलस्वभाव, गुरुसेवा, पवित्रता, स्थैर्य, आत्माका निग्रह; इन्द्रियोंके विषयोंसे वैराग्य होना, अहङ्कार न होना, जन्म, मरण,

बुढ़ापे, रोग और दुःखको बुराइयोंको बारम्बार विचारना, पुत्र, स्त्री, घर, धन आदिसे मनको अलग रखना, उनके सुख दुःखोंमें मन न लगाना, प्यारी और कुप्यारी चीज़के मिलने पर एकसा रहना, मुझ परमात्मामें अनन्य योग अथवा सर्वत्र आत्म-दृष्टिसे एकान्त भक्ति होना, एकान्त स्थानमें रहना, संसारी लोगोंकी सङ्गतिसे अरुचि, अध्यात्म ज्ञानमें सदा नित्य भाव और तत्त्वज्ञानके विषय मोक्षको सर्व श्रेष्ठ मानना, अमानित्वसे लेकर यहाँ तक ये सब क्षेत्रज्ञके ज्ञानके साधन कहे हैं, ये सब ज्ञान है इसके विपरीत मान, दम्भ आदि अज्ञान है।

ऊपर ७ से लेकर ११ तक पाँच श्लोकोंका अर्थ एकही जगह कर दिया है। अलग अलग लिखनेसे पढ़नेवालोंका असुभीता होता।

अमानित्व = मानकी चाह न होना।

अदंभित्व = अपनी बड़ाई न मारना।

अहिंसा = किसी जीवको न मारना, न दुःख देना।

क्षांति = दूसरोंके दुःख देनेपर भी नाराज़ न होना।

सरल स्वभाव = जो दिलमें हो उसे ही बाहर कर देना।

गुरुसेवा = ब्रह्म विद्या सिखानेवाले गुरुकी टहल करना।

पवित्रता = पवित्रता दो प्रकार की है (१) वाह्यशौच (२) अन्तर शौच, जल और मिट्टी द्वारा शरीर के मैल के हटानेको वाह्यशौच कहते हैं। विषयोंमें दोष दिखाकर, मनको राग द्वेष आदिसे रहित करने को अन्तर शौच कहते हैं।

स्थैर्य = स्थिरता—सब जगहसे मन हटाकर एकमात्र मोक्षकी राहमें

चेष्टा करना। बारम्बार विघ्न होने पर भी मोक्ष लाभ की चेष्टासे मन न हटाना।

आत्माका निग्रह=शरीर और मन का स्वभाव है कि वे सब ओर जाते हैं उन्हें सब ओरसे हटाकर ठीक राहपर लगाने को आत्मनिग्रह कहते हैं।

इन्द्रियोका विषयों से वैराग्य=कान आँख वगैर इन्द्रियोका अपने अपने विषयो में रुचि न होना।

अहङ्कार=गर्व—घमण्ड

जन्म=मा के पेटमें नौ महीने तक रहना और फिर बाहर निकलना।

मृत्य =शरीर छोडनेके समय मर्मस्थानमें छिदने की सी पीड़ा होना।

बुढापा=जिस अवस्थामे बुद्धि मन्द होजाय, अङ्ग शिथिल होजायँ और घर बाहर के लोग अनादर और घृणा करने लगें उस अवस्थाका नाम बुढापा है।

रोग=ज्वर, अतिसार, खाँसी, संग्रहणी आदि रोग कहलाते हैं।

दु ख—इष्ट वस्तु के वियोग होने और अनिष्ट वस्तुके सयोग में जो चित्तका परिताप रुप परिणाम है उसीका नाम द:ख है।

जन्म, मरण, बुढापे, रोग और दु.खकी बुराइयोंका बारम्बार विचारना, जन्मके समय नौ महीने माके पेटमें रहना, फिर खूब सुकड़कर छोटी राह से निकलना, मा के पेटमें रहते समय मल मूत्र रक्त आदि में रहना और वहां के मलके कीड़ों द्वारा काटा जाना और माता की जठराग्नि द्वारा जलना इस तरह के अनेक दोषों का विचारना। इसी तरह मरण के समय सारी नसोंका खिचाव होना, मर्म-स्थानोंमें बिच्छूओंके काटने के समान पीड़ा होना, ऊपर का सांस चलना,, भारी तकलीफ होनेके कारण बेहोशी.होना, बेहोशीमें पड़े पड़े ही मल मूत्र निकल जाना इत्यादि दु:खोंपर विचार करना चाहिये। इसी तरह बुढ़ापे में शरीर शिथिल

हो जाना, आँखोंसे दिखाई न देना, कानोंसे सुनाई न पड़ना, हाथ पैर आदि इन्द्रियों का निकम्मा होजाना, साँस चढ़ना, उठने की चेष्टा करना और गिर पड़ना, शरीर कांपना, क्षुधा मन्द होजाना, हरदम खाँसी के मारे खों खों करना, घरके लोगों स्त्री पुत्र आदि द्वारा अनादर होना, इत्यादि दोषोंपर विचार करना। इसी तरह रोगोंमें दुःख पाना और दुःखों से भी जलना इत्यादि पर विचार करना चाहिये। इन विषयों पर बार-म्बार विचार करने से वैराग्य हो जाता है। जन्म मरण बुरा लगने लगता है। तब मनुष्य मोक्ष की इच्छा करके मोक्ष-साधन के उपायोंमें चित्त लगाता है।

यह चीज़ मेरी है ऐसा समझकर किसी चीज़में प्रीति न रखना, स्त्री पुत्र नौकर चाकर महल मकान आदि से मन अलग रखना, अच्छी और प्यारी चीज़ के मिलने पर प्रसन्न न होना बुरी और कुप्यारी चीज़ के मिलनेपर दुःखी न होना, यह समचित्तता भी ज्ञान बढ़ानेवाली है। स्थिर और अटल चित्त से मुझ वासुदेवमें ही भक्ति रखना, किसी भी कारण से किसी अवस्थामें भी मेरी भक्ति से न डिगना और मुझे ही अपनी परमगति समझना, मुझसे परे किसी को भी न समझना, यह भक्ति भी ज्ञान का कारण है। जहाँ साँप चीते और चोरो का भय न हो, जहाँ किसी तरह का झंझट न हो, ऐसी नदी के किनारेपर अथवा वनमें अकेले रहना क्योंकि आत्मा का ध्यान एकान्त स्थानमें अच्छा होता है। विषयी या पापियोंकी मण्डलीमें न रहना किन्तु महात्माओंकी संगति करना ये सब तरीके आत्मज्ञान प्राप्त करने में सहायक हैं।

ब्रह्म जानने योग्य है।

अमानित्व से लेकर तत्त्व ज्ञानके विषय मोक्ष तक जो बीस ज्ञान नाम के साधन हैं उनसे किस चीज़ को जानना चाहिये? इसके जवाब के लिये भगवान आगे फिर छः श्लोक कहते हैं—

हे अर्जुन! जो जानने योग्य है उसे मैं कहता हूं, उसके जाननेसे मनुष्यकी मुक्ति हो जाती है, वह अनादि, परब्रह्म है, उसे सत्-असत् नहीं कहते।

ब्रह्मही चेतनता का कारण है।

उस परब्रह्मके हर ओर हाथ और पाँव हैं, उसके हर तरफ आँख, सिर और मुख हैं, उसके हर तरफ कान हैं। वह सबको व्याप्त करके स्थित है।

खुलासा—उसके चारों ओर हाथ, पाँव, आँखें, कान, मुख और सिर हैं, वह सब जगह फैल रहा है। कोई भी स्थान ऐसा नहीं है जहाँ वह नहीं है। सारा संसार उसी पर ठहरा हुआ है। वह सब के काम देखता और सबकी बातें सुनता है।

हमारे नख से शिख तक वह व्याप्त है। हम उसी की सत्तासे चलते फिरते और काम करते हैं, हम उसी की चेतनता से देखते, सुनते, बोलते और सूंघते हैं। जिस तरह रथ, गाड़ी वग़ैर: जड़ पदार्थ चेतनकी सहायतासे चलते हैं, बिना चेतनकी सहायता नहीं चलते, ऐसे ही हाथ पैर आदि जड़ पदार्थ बिना चेतन की सहायता के कोई काम नहीं कर सकते।

वह नेत्रादि सब इन्द्रियोंके व्यापारसे भासता है (तथापि) इन्द्रियोंसे रहित है। वह सङ्ग-रहित है तथापि सारे ब्रह्माण्डको धारण कर रहा है। वह सत्त्व आदि गुणोंसे रहित है; तथापि उनका भोगनेवाला है।

खुलासा—परब्रह्म के कान आँख, नाक आदि कोई भी इन्द्रिय नहीं है परन्तु वह सब इन्द्रियोंमें उनके गुण देनेवाला है। वह इन्द्रिय-बिना

होने पर भी सब इन्द्रियोंके गुणों से मालूम होता है। असल बात यह है कि यह आत्मा आंख न होनेपर भी देखता है, कान न होने पर भी सुनता है, हाथ न होनेपर भी चीज़ को पकड़ता है, पैर न होने पर भी चलता है, इसी से इसका होना जान पड़ता है। वह परब्रह्म असंग है तथापि सबको धारण करता है। वह सत्व, रज और तम—इन गुणोंसे रहित है तथापि गुणों का भोगनेवाला है यानी विषयों से पैदा हुए सुख दु:ख आदि का अनुभव करता हुआ जान पड़ता है।

ब्रह्म सर्व है।

वह (सब) प्राणियोंके भीतर और बाहर है। वह अचर भी है और चर भी है। क्योंकि वह बहुत ही सूक्ष्म—बारीक—है इसीसे वह जाना नहीं जा सकता। वह दूर भी है और पास भी।

खुलासा- वह सारे चराचर प्राणियों के भीतर और बाहर है। जिस तरह चन्द्रमा की चांदनी सब जगह व्याप्त है किन्तु कारण विशेष से कहीं दीखती और कहीं नहीं दीखती है, उसी तरह जिनकी ज्ञान की आंखें नहीं खुली हैं उन्हें वह नहीं दीखता किन्तु जिनकी ज्ञान की आंखें खुल गयी हैं उनको दीखता है। वह चर भी है और अचर भी है। मनुष्य पशु पक्षी आदि हिलने डोलनेवालों के साथ चर मालूम होता है किन्तु पेड़ वृक्ष आदि एक जगह ठहरे रहनेवालों के साथ अचर (न हिलने डोलनेवाला) मालूम होता है। वह सूक्ष्म यानी बहुतही छोटा है इसीसे वह जाना नहीं जा सकता। तीव्र बुद्धिवाले ज्ञानी उसे जान सकते हैं किन्तु मोटी बुद्धिवाले उसे नहीं जान सकते। वह पास भी है और दूर भी। जो अपने आत्माको ही क्षेत्रज्ञ, परमात्मा, समझते हैं और यह समझते हैं कि आत्मा के सिवाय और परमात्मा नहीं है वह उनके

पास है ; किन्तु जो आत्मा के सिवाय और को परमात्मा समझते हैं और उसकी तलाशमें जगह जगह मारे मारे फिरते हैं उनसे वह परमात्मा दूर है। जिस तरह मृग की नाभि में ही कस्तूरी रहती है मगर वह, उसकी सुगन्धसे उसे अपने में न समझ कर, उसकी तलाश में मारा मारा फिरता है और उसे नहीं पाता ; इसी तरह अपने भीतर ही आत्माको छोड़कर, अज्ञान से उसे अपने अन्दर न समझ कर, उसकी तलाश में पूरब से पच्छम और उत्तरसे दक्खन तक जो मारे २ फिरते हैं उन्हें वह कभी नहीं मिलनेका।

ब्रह्म सबमें एक है।

यद्यपि उसके भाग नहीं हो सकते तथापि वह सब प्राणियोंमें बँटा हुआ जान पड़ता है। वह ज्ञेय ब्रह्म सब प्राणियोंका पालन करनेवाला, नाश करनेवाला और पैदा करने वाला है।

वह भिन्न भिन्न शरीरोंमें बँटा हुआ नहीं है, वह आकाश के समान एक है तथापि वह भिन्न भिन्न शरीरोंमें भिन्न भिन्न मालूम होता है। मतलब यह है कि वह सब में एक ही है, मगर शरीरों में रहता हुआ, उपाधिके सम्बन्ध से, अलग अलग मालूम होता है। वास्तवमें वह निर्विकार है।

ब्रह्म सब का प्रकाशक है।

वह ज्योतियोंकी भी ज्योति है, इसीलिये वह अज्ञान से परे कहा जाता है। वही ज्ञान है, वही जानने योग्य वस्तु है, वही ज्ञानसे मिलता है, वह सब प्राणियोंके हृदयमें ठहरा हुआ है।

वह जानने योग्य ब्रह्म ज्योतियोंकी भी ज्योति है। यानी वह सूर्य चाँद बिजली आदि चमकीली चीज़ोंमें भी प्रकाश करनेवाला है। जिसतरह वह

इन बाहरी ज्योतियोंमें प्रकाश करनेवाला है उसी तरह वह मन बुद्धि आदि अन्दर ज्योतियोंका भी प्रकाशक है इत्यादि।

हे अर्जुन! क्षेत्र (शरीर,) ज्ञान, और ज्ञेय (क्षेत्रज्ञ) ये तीनों संक्षेप से कहे गये। इन्हें जानकर मेरा भक्त मेरे भावको प्राप्त हो जाता है।

खुलासा—इसी तेरहवें अध्यायके ५।६ श्लोकोंमें "क्षेत्र" का वर्णन किया गया है। सातवें श्लोकसे लेकर ग्यारहवें तकमें (अमानित्व आदिसे तत्त्व ज्ञानके विषय मोक्षतक) ज्ञानका वर्णन किया गया है। बारहवें से सत्रहवें तक ज्ञेय (जानने योग्य) का वर्णन संक्षेप में दिया गया है। यही गीता और वेदोंका उपदेश है।

जो मनुष्य मेरी भक्ति करता है, जो मुझे, वासुदेव, परब्रह्म, सर्वव्यापक परम गुरु, और हर प्राणीका आत्मा समझता है यानी जिसके दिलमें यह ख्याल है कि मैं जो देखता, सुनता या छूता हूँ वह वासुदेवके सिवाय कुछ नहीं है, वह मेरी भक्तिमें लीन होकर तथा ऊपर कहे हुए 'क्षेत्र', 'ज्ञान', और 'ज्ञेय'का ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पा जाता है।

प्रकृति और पुरुष सनातन हैं।

सातवें अध्यायके छठे श्लोकमें "क्षेत्र" और 'क्षेत्रज्ञ'के अनुरूप "परा" और "अपरा" दो प्रकारकी प्रकृतियोंका वर्णन किया गया था और यह भी कहा गया था कि यही सब जीवोंको पैदा करनेवाली है; प्रश्न हो सकता है कि क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों प्रकृतियां सब जीवोंको पैदा करनेवाली किस तरह हैं? आगे इस प्रश्नका उत्तर दिया जायगा—

हे अर्जुन! प्रकृति और पुरुष दोनों ही अनादि हैं। शरीर, इन्द्रिय आदि सब विकार और सुख, दुःख, मोह आदि गुण, इनको प्रकृतिसे पैदा हुए जानो।

प्रकृति और पुरुष—क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ—ये दोनों ईश्वरकी प्रकृतियाँ हैं। ये दोनों प्रकृति और पुरुष आदि रहित हैं यानी अनादि हैं। अब ईश्वर अनादि है तो उसकी प्रकृतियां भी अनादि होनी चाहियें। ईश्वरका ईश्वरत्व अपनी दोनों प्रकारकी प्रकृतियोंके ऊपर अधिकार रखनेसे है। उन दोनों प्रकृतियोंसे ही वह जगत् को पैदा करता, पालन करता और नाश करता है। दोनों प्रकृतियां आदि रहित हैं और इस लिये वे संसारकी कारण हैं।

कुछ लोग ऐसा अर्थ करते हैं कि प्रकृतियां अनादि नहीं हैं। इस अर्थमें वे ईश्वरको जगत्का कारण ठहराते हैं। वे कहते हैं कि अगर प्रकृति और पुरुष सनातन हैं तो संसारका कारण वे प्रकृतियां ही हैं। ईश्वर जगत्का रचनेवाला नहीं है।

यह बात गलत है। अगर प्रकृति और पुरुष अनादि नहीं हैं तो उन दोनोंके पैदा होने तक ईश्वर किस पर शासन करता होगा? यदि शासन करनेको कोई न रहे तो ईश्वर ईश्वर नहीं है। इसके सिवाय यह भी है कि अगर संसारका कारण ईश्वरके सिवाय और कुछ न होता तो संसारका भी अन्त न होता। इस बातसे शास्त्र भी निकम्मे हो जाते साथही मोक्ष और संसारबन्धनका झगड़ा भी न रहता।

प्रकृति और पुरुष ही संसार के कारण हैं।

अगर ऊपरकी बातके विपरीत ईश्वरकी प्रकृतियां अनादि मान ली जायँ तो यह गूढ़ रहस्य झटपट खुल जाता है।—कैसे? शरीर इन्द्रिय आदि विकार सुख दुःख मोह आदि गुण, तीन गुणोंसे बनी हुई प्रकृति—माया—से उत्पन्न होते हैं। वह ईश्वरीय प्रकृति—माया—ही रद्दोबदल करती है।

प्रकृतिसे पैदा हुए विकार और गुण क्या हैं? भगवान कहते हैं—

कार्य्य और कारणको पैदा करनेवाली प्रकृति है और सुख दुःखको भोगनेवाला पुरुष है।

"कार्य" शरीर है। कारण १३ हैं जो शरीरमें मौजूद हैं। पांच ज्ञानेन्द्रियां, और पांच कर्मेन्द्रिया, मन, बुद्धि और अहंकार ये १३ कारण हैं।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश ये पांच भूत शरीरको बनाते हैं और पांच ज्ञानेन्द्रियाँ प्रकृतिके विकार हैं, ये सब "कार्य" शब्दके अन्तर्गत हैं। सुख दुःख मोह आदि गुण जो प्रकृतिसे पैदा होते हैं "कारण" कहलाते हैं। शरीर, इन्द्रियों तथा विकारोंका कारण प्रकृति कही जाती है, क्योंकि प्रकृति ही इन्हें पैदा करती है। जबकि प्रकृति शरीर और इन्द्रियोंको पैदा करती है तब वही संसारका कारण है।

आगे यह बताया जायगा कि पुरुष संसारका कारण किस तरह है, ध्यान रखना चाहिये कि 'पुरुष' 'जीव' 'क्षेत्रज्ञ' 'भोक्ता' एकही अर्थ सूचक शब्द हैं यानी इन सबका एक ही अर्थ है।

शंका—प्रकृति अचेतन है इस लिये वह खुद शरीर वगैरह नहीं पैदा कर सकती। पुरुष निर्विकार है इस लिये उसे सुख दुःखका भोगनेवाला कहना अनुचित है।

उत्तर- प्रकृति अचेतन है मगर चेतनके साथ सम्बन्ध होनेसे वह जगत्के उपादानका कारण है। इसी तरह निर्विकार पुरुष भी जड़ प्रकृतिके सम्बन्धसे भोक्ता मालूम होता है। जिस तरह चुम्बकके पास पहुंचनेसे लोहा चला करता है, उसीतरह प्रकृति और पुरुष पास पास होनेसे अपना अपना काम करते हैं। पुरुषके पास होनेसे प्रकृति कर्ता है और प्रकृतिके पास होनेसे पुरुष भोक्ता है। इससे सिद्ध होता है कि प्रकृति और पुरुष दो संसारके कारण हैं। उनमेंसे एक शरीर और इन्द्रियोंको पैदा करता है और दूसरा सुख दुःखोंको भोगता है।

अविद्या और काम बारम्बार जन्म लेनेके कारण हैं।

कहा गया है कि पुरुष सुख दुःखोंको भोगता है वहाँ यह सवाल

पैदा होता है कि वह सुख दुःखोंको क्यों भोगता है? भगवान कहते हैं—

पुरुष, प्रकृतिमें रहकर, प्रकृतिसे पैदा हुए सुख दुःखोंको भोगता है। प्रकृतिके गुणोंके सङ्गके कारणसे ही उसे नीची ऊँची योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है।

क्योंकि पुरुष—भोक्ता—प्रकृति यानी अविद्यामें रह कर अपने तईं अपने शरीर और इन्द्रियोंसे अभिन्न समझता है, यह उसकी भूल है। वह यह नहीं समझता कि शरीर और इन्द्रियाँ प्रकृतिके विकार हैं; इसीलिये वह प्रकृतिके सुख दुःख आदि गुणोंको भोगता है। वह समझता है, "मैं सुखी हूं, मैं दुखी हूं, मैं मूर्ख हूं, मैं बुद्धिमान हूं"। वह अपने तईं सुखी दुःखी समझता है इसीसे उसे जन्म लेना पड़ता है।

इस देहमें रहकर यह पुरुष देखनेवाला (साक्षी), सलाह देनेवाला, पोषण करनेवाला, भोगनेवाला, महेश्वर और परमात्मा है।

हे अर्जुन! जो इस तरहसे पुरुषको जानता है और गुणों सहित प्रकृतिको जानता है वह संसारमें रहता हुआ भी फिर जन्म नहीं लेता।

कितनेही मनुष्य मनसे ध्यान करके अपनेमेंही आत्मा को देखते हैं। कितनेही सांख्य योग यानी प्रकृति पुरुषके विचारसे देखते हैं और कितनेही कर्म्म योगसे देखते हैं।

ऊँचे दरजेके योगी या उत्तम अधिकारी सब ओरसे चित्तको हटा कर उसे आत्मामें लगा देते हैं। ध्यानका प्रवाह लगातार जारी रहनेसे उनका

अन्त: करण शुद्ध हो जाता है तब उन्हें अपने ही भीतर आत्मा—परमात्मा दिखाई देने लगता है। सांख्य योगवाले ऐसा विचार करते हैं कि सत्त्व, रज, और तम तीन गुण हैं। आत्मा सनातन और उनके कामोंको देखनेवाला है और उन गुणोंसे अलग है। इस तरहका विचार करनेवाले मध्यम अधिकारी कहलाते हैं। ये लोग आत्मामें आत्माको आत्माद्वारा देखते हैं, यह कर्म योग है। यानी वह कर्म जो ईश्वरकी सेवाके लिये किया जाता है योग है। ऐसे कर्मको योग इस लिये कहते हैं कि वह योगकी राह दिखलाता है। कुछ लोग इस कर्म योगसे आत्माको देखते हैं। यानी ईश्वरके लिये कर्म करनेसे चित्त शुद्ध हो जाता है और फिर ज्ञान हो जाता है।

हे अर्जुन! कितने ही ऐसे हैं जो सांख्य योग और कर्म्म योग दोनोंको नहीं जानते; किन्तु दूसरोंसे सुनकर ही उपासना करते हैं। वे भी श्रद्धा पूर्वक उसके सुनने से संसार सागरसे तर जाते हैं।

हे अर्जुन! संसारमें जो स्थावर और जंगम प्राणी उत्पन्न होते हैं वे सब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके मिलनेसे पैदा होते हैं, ऐसा जान।

सबमे एक आत्मा है।

हे अर्जुन! जो सारे प्राणियोंमें परमेश्वरको समान भावसे देखता है और प्राणियोंके नाश होने पर भी आत्माको अविनाशी देखता है—वही देखता है।

जो देखता है कि ईश्वर सबमें समान भावसे वर्त्त-

मान है वह आत्मासे आत्माको नष्ट नहीं करता इसलिये उसकी मोक्ष हो जाती है।

खुलासा—जो ईश्वर या जीवको विकारवान समझता है वह अपना नाश आप करता है। जो आत्माको ईश्वरकी तरह सब जगह देखता है, ईश्वर और आत्मामें भेद नहीं समझता वह आत्माको नाश नहीं करता।

जो पुरुष यह समझता है कि सारे काम प्रकृति ही करती है, आत्मा कुछ नहीं करता, वही आत्माको ठीक तरहसे पहचानता है।

खुलासा—जो यह समझता है कि सभी भले बुरे कर्म शरीर इन्द्रियों और अन्तःकरण द्वारा होते हैं, आत्मा कुछ भी नहीं करता, वही आत्माको अच्छी तरह जानता है और उसीकी मोक्ष होती है।

हे अर्जुन! जो पुरुष स्थावर जङ्गम सब प्राणियोंके जुदे जुदे भेदोंको, प्रलयकालमें, ईश्वरकी एकही शक्ति—प्रकृति—में टिका हुआ मानता है और उसी प्रकृतिमें सब प्राणियोंके विस्तारको मानता है वह ब्रह्म हो जाता है।

हे अर्जुन! यह परमात्मा अनादि, गुण रहित और अविनाशी है। यद्यपि वह देहमें रहता है तथापि न कर्म करता है और न कर्म-फलोंमें लिप्त होता है।

खुलासा—आत्मा अनादि और निर्गुण है; इसीसे वह कभी नाश नहीं होता। जो आदि सहित और गुण युक्त होता है उसका नाश हो जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि परमात्मा अविनाशी है। यद्यपि वह शरीरमें

रहता है तथापि वह काम नहीं करता। क्योंकि वह कर्म नहीं करता इसीसे उसे कर्म-फलोंमें लिप्त नहीं होना पड़ता। साफ़ मतलब यह है कि जो कर्त्ता है वही कर्म फल भोगता है लेकिन यह आत्मा तो अकर्त्ता है इसीसे कर्म-फलोंसे दूषित नहीं होता।

हे अर्जुन! जिस तरह सर्वत्र व्यापक आकाश अपनी सूक्ष्मताके कारणसे दूषित नहीं होता; उसी तरह सारी देहमें बैठा हुआ आत्मा भी दूषित नहीं होता।

खुलासा—शरीरके किये दोषोंसे आत्मा कभी दूषित नहीं होता।

जिस भाँति एक सूर्य्य सारे जगत्‌में प्रकाश करता है उसी तरह एक क्षेत्री सारे शरीरोंमें प्रकाश करता है।

खुलासा—जिस तरह एक सूर्य्य सारे संसारमें उजियाला करता है उसी तरह एक क्षेत्री—परमात्मा—सारे शरीरोंमें वर्त्तमान है

जो ज्ञानकी आँखोंसे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका फर्क अच्छी तरह देखते हैं और प्रकृतिसे मोक्षके उपाय धारणा आदिको जानते हैं उनको मोक्ष हो जाती है।

खुलासा—बन्धनका कारण भी प्रकृति है और मोक्षका कारण भी प्रकृति है। तमोगुण रजोगुणके सम्बन्धसे बन्धन होता है; किन्तु सतोगुणके सम्बन्धसे मोक्ष होती है।

चौदहवाँ अध्याय।

तीन गुण।

यह पहले कहा गया है कि सभी जो पैदा हुए हैं क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके सम्बन्धसे पैदा हुए हैं।—यह कैसे हो सकता है?—यह अध्याय इसी सवालके जवाबके लिये कहा गया है।

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, दोनोंही ईश्वरके आधीन हैं और वेही संसारके कारण ठहरते हैं, यही दिखानेके लिये कहा गया है कि क्षेत्रज्ञका क्षेत्रमें रहना और उसका गुणोंमें अनुराग होनाही संसारका कारण है।—किस तरह और किन गुणोंमें क्षेत्रज्ञका अनुराग है? गुण क्या हैं? वह उसे किस तरह बन्धनमें फंसाते हैं? गुणोंसे छुटकारा किस तरह हो सकता है? मुक्त आत्माके स्वभावके विशेष लक्षण क्या हैं?—इन सब प्रश्नोंके उत्तर भगवान नीचे देते हैं :-

जगत्‌की उत्पत्तिका ज्ञान मोक्षके लिये जरूरी है।

भगवान बोले :—

हे अर्जुन! मैं तुझे उस बड़े और सबसे उत्तम ज्ञानका उपदेश फिर करता हूं; जिसके जान जानेसे सम्पूर्ण मुनि लोग मोक्ष पा गये।

इस ज्ञानका सहारा लेकर जो मुनि लोग मेरे साधर्म्यको प्राप्त हो गये हैं; वे न तो सृष्टि-रचनाके

समय पैदा होते हैं और न प्रलयके समय दुःख भोगते हैं ।

जिस ज्ञानका उपदेश मैं तुझे अभी अभी करनेवाला हूँ, वह ज्ञान ऐसा उत्तम है कि उसकी सहारेसे जो मुनि लोग मेरे अनुरूप हो गये हैं उन्हें कभी जन्म लेना और मरना नहीं पड़ता ।

क्षेत्र क्षेत्रज्ञके मेलसे जगत्‌का प्रसार ।

महत् ब्रह्म मेरी योनि है; उसमें मैं बीज डालता हूं हे भारत! उसीसे सब प्राणी पैदा होते हैं ।

खुलासा—महत् ब्रह्मसे यहां मतलब प्रकृतिसे है । प्रकृति मेरी स्त्री है । मैं उसमें हिरण्यगर्भके पैदा होनेके लिये बीज डालता हूँ । उससे सब जगत् पैदा होता है । मेरे अधिकारमें दो शक्तियां हैं यानी क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ रूपी दो प्रकृतियां हैं । मैं क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका मिलान कर देता हूँ । क्षेत्रज्ञ अविद्या, काम और कर्ममें युक्त हो जाता है । इस तरह गर्भाधान करनेसे हिरण्य गर्भकी पैदायश होती है और उससे तमाम जगत् पैदा होता है ।

हे कौन्तेय! सब योनियोंसे जितने प्रकारके शरीर पैदा होते हैं उन सबकी योनि प्रकृति है । और मैं उसमें बीज डालनेवाला पिता हूँ ।

खुलासा—हे अर्जुन! देव, पितर, मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि जो सब योनियोंसे पैदा होते हैं उन सबकी कारण रूप माता प्रकृति है और गर्भाधान करनेवाला पिता मैं हूँ ।

गुण आत्माको बाँधते हैं ।

हे महाबाहो! सतोगुण, रजोगुण, और तमोगुण,

ये तीन गुण प्रकृतिसे पैदा होकर अविनाशी जीवको देहमें बाँधते हैं।

गुणोंका स्वभाव और कर्म।

हे पापरहित! इन तीनों गुणोंमेंसे सतोगुण निर्मल, रोग-रहित और शान्ति-स्वरूप है, इसीसे यह सुख और ज्ञानके लालचमें बाँधता है।

खुलासा—हे अर्जुन! इन तीनों गुणोंमें सतोगुण निर्मल है। यह ज्ञानका प्रकाशक है, इसके सिवा यह शान्तिस्वरूप है, इसीसे सुखकारी है। सतोगुणकी कारणसे "मैं सुखी हूँ" "मैं ज्ञानी हूँ", ऐसा ख़याल आत्मा करता है। यह अहङ्कार है और इस अहङ्कारसे ही आत्माका बन्धन होता है।

हे अर्जुन! रजोगुणको रागात्मक जान। इससे तृष्णा और संगकी पैदाइश होती है। रजोगुण जीवको काममें लगाकर बन्धनमें बाँधता है।

खुलासा—रजोगुण मनुष्यको संसारी विषयोंमें लगाता है, विषयोंमें प्रीति कराता है। जिस समय रजोगुणका दौर दौरा होता है, तब मनुष्य जो जो चीज़ें देखता या सुनता है उन सबके पानेकी इच्छा करता है। मनमें सोचता है इस चीज़के मिलनेसे मुझे सुख होगा। जब वह इच्छित वस्तु मिल जाती है तब उसमें उसकी मुहब्बत हो जाती है। जब वह चीज़ उससे अलग हो जाती है तब उसे दुःख होता है। और भी खुलासा यह है कि रजोगुणही आत्माको काममें लगाता है। आत्मा कुछ भी करनेवाला नहीं है। रजोगुण उस आत्माके दिलमें यह ख़याल पैदा करके कि "मैं करता हूँ" काम कराता है। रजोगुण ही मनुष्यको काम करनेके लिये उकसाता

करता है। रजोगुणके प्रभावसे मनुष्य कर्म करने लगता है और देहके बन्धनमें फंसता है।

हे भारत! तमोगुण अज्ञानसे पैदा होता है; इस लिये वह सब शरीरधारियोंको भूलमें डालता है। वह आलस्य, नींद और प्रमादसे जीवको बाँधता है।

खुलासा—तमोगुण ज्ञानपर पर्दा डालनेवाला और जीवोंके मनमें भ्रम पैदा करनेवाला है। भगवान आगे इन्हीं तीनों गुणोंके विषयमें संक्षेपसे कहते हैं।

हे भारत! सतोगुण जीवको सुखमें लगाता है। रजोगुण मनुष्यको काममें लगाता है। तमोगुण ज्ञानको ढक कर जीवको प्रमादमें लगाता है यानी आवश्यक कर्त्तव्य कार्यों से रोकता है।

गुणोंके परस्पर कार्य।

ऊपर कहे हुए कार्य गुण कब करते हैं? क्या वे अपने कार्य एक साथ करते हैं अथवा अलग अलग समयोंपर, अपनी अपनी बारीसे? इसका जवाब भगवान नीचे स्वयं देते हैं:—

रजोगुण और तमोगुणको दबाकर सतोगुण प्रकट होता है। सतोगुण और तमोगुणको दबाकर रजोगुण प्रकट होता है और सतोगुण तथा रजोगुणको दबाकर तमोगुण प्रकट होता है।

खुलासा—जब एक गुण प्रकट होता है तब दूसरे दो गुण दब जाते हैं। तीनों या दो गुण एक समय नहीं रहते। जब सतोगुणका जोर होता है

तब रजोगुण और तमोगुण दब जाते हैं। इसी तरह औरोंको समझ लो। जिस समय सतोगुण प्रकट होगा, उस समय सतोगुणका काम अच्छा लगेगा। उस समय ज्ञानचर्चा अच्छी लगेगी। इसी तरह जब रजोगुणका समय होगा तब ज्ञानचर्चा तो अच्छी न लगेगी; किन्तु नाच गाना थियेटर आदि अच्छे लगेंगे। सतोगुणके समय यही नाच गाना स्त्री वगैर: अच्छे न लगेंगे। इसी तरह तमोगुणके समय नाच गाना, स्त्री तथा ज्ञानचर्चा कुछ अच्छी न लगेगी। उस समय केवल नींद और आलस्य घेरेगा।

किस समय कौनसे गुणकी प्रवलता है, यह जाननेकी तरकीब।

हे अर्जुन! जिस समय इस देह और इन्द्रियोंमें ज्ञानका प्रकाश हो, उस समय सतोगुणकी वृद्धि जाननी चाहिये।

हे अर्जुन! जब रजोगुणकी वृद्धि होती है तब मनुष्यमें लोभ बढ़ जाता है और उसको काम करनेकी इच्छा होती है। उस समय वह काम आरम्भ करने लगता है, अशान्ति और तृष्णा पैदा हो जाती है।

खुलासा—जिस समय दूसरेके मालको अपना करनेकी इच्छा हो, जिस समय काम करनेको जी चाहे, जिस समय चित्तमें खुशी या प्रेम वगैर: न हो किन्तु बेचैनी हो, जिस समय देखी या सुनी चीज़ोंको प्राप्त करनेकी इच्छा हो, उस समय समझना चाहिये कि रजोगुणकी प्रवलता है।

जिस समय तमोगुणकी प्रवलता होती है उस समय अप्रकाश, अप्रवृत्ति, प्रमाद और मोह पैदा होता है।

खुलासा—जिस समय ज्ञान न रहे, काममें मन न लगे, काममें भूल

होने लगे तथा असावधानता होने लगे उस समय समझना चाहिये कि तमोगुणकी प्रबलता है।

किस गुणके समयमें मरनेसे कैसी गति होती है।

अगर कोई मनुष्य सतोगुणकी प्रबलताके समय मरे तो वह हिरण्यगर्भ आदिके उपासकोंके निर्मल लोकमें जाता है।

जो रजोगुणकी प्रबलताके समय मरता है वह कर्म संगी मनुष्योंमें पैदा होता है और जो तमोगुणके समय मरता है वह पशु पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेता है।

अच्छे कर्मोंका फल सात्विक और निर्मल है। रजोगुण सम्बन्धी कर्मोंका फल दुःख है और तमोगुण सम्बन्धी कर्मोंका फल अज्ञान है।

खुलासा—जो सतोगुण सम्बन्धी कर्म करते हैं वे सुख पाते हैं। जो रजोगुण सम्बन्धी कर्म करते हैं वे दुःख भोगते हैं। जो तमोगुण सम्बन्धी कर्म करते हैं उन्हें अपने उन कर्मोंका फल अज्ञान मिलता है।

हे अर्जुन! सतोगुणसे ज्ञान, रजोगुणसे लोभ, और तमोगुणसे असावधानता, मोह और अज्ञान पैदा होता है।

सतोगुणी ऊपरके लोकमें जाते हैं, रजोगुणी मध्य लोकोंमें जाते हैं, तमोगुणी नीचेके लोकोंमें जाते हैं।

खुलासा—जो सतोगुणके काम करते हैं वे सत्यलोकमें जाते हैं यानी उत्तम गति पाते हैं; जो रजोगुणके काम करते हैं वे मनुष्यलोकमें जन्म लेते हैं

और अनेक प्रकारके जन्म मरण आदि दुःख भोगते हैं; जो तमोगुण सम्बन्धी कर्म करते हैं वे नीच लोकमें जाते हैं यानी पशु पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेते हैं।

आत्माको गुणोंसे परे जाननेवालेकी मोक्ष हो जाती है।

जो विवेकी पुरुष गुणोंके सिवा और किसीको कर्त्ता नहीं जानता है और आत्माको गुणोंसे परे साक्षीरूप जानता है वह मेरे रूपको प्राप्त होता है।

खुलासा—जो यह समझता है कि सब कर्मोंके करनेवाले गुण हैं, आत्मा कुछ नहीं करता है, आत्मा तो साक्षी मात्र है, ऐसी समझ रखनेवाला मनुष्य शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूपको प्राप्त होता है।

जो देहधारी शरीरसे पैदा हुए प्रकृतिके तीनों गुणों (सत्व, रज, तम) को उल्लङ्घन करता है वह जन्म मृत्यु बुढ़ाई और रोगोंसे छुटकारा पाकर अमर हो जाता है।

खुलासा—सत्व, रज, तम, ये तीन गुण देहकी उत्पत्तिके बीज हैं, इनकी ममता और सङ्ग छोड़ देना ही इनका जीत लेना है। इन तीन गुणोंके सम्बन्धसेही जन्म, मृत्यु और बुढ़ापा वगैर: दुःख होते हैं। इनके सम्बन्धसेही आत्मा अपने शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूपको भूल जाता है। इनके छोड़नेमें चेष्टा करनी पड़ती है, तकलीफ उठानी पड़ती है; किन्तु परमानन्द की प्राप्तिमें इतनी कोशिश और तकलीफकी दरकार नहीं होती।

अर्जुनने कहा :—

हे प्रभो! जो इन तीन गुणोंको उल्लंघन करता है उसकी क्या पहचान है? उसका आचरण कैसा है? इन तीनों गुणोंका उल्लंघन कैसे होता है?

भगवानने कहा :—

हे पाण्डव ! प्रकाश, प्रवृत्ति, मोहके वर्त्तमान होने पर वह इनसे द्वेष नहीं करता और इनके वर्त्तमान न रहने पर वह इनको चाह नहीं रखता ।

खुलासा—प्रकाश सतोगुणका कार्य-रूप है ; प्रवृत्ति (काममें लगना) रजोगुणका कार्य-रूप है ; मोह तमोगुणका कार्य-रूप है । इन तीनों गुणोंके कार्यके मौजूद होनेपर वह इनसे घृणा नहीं करता और इनके मौजूद रहने पर वह इनकी चाह नहीं रखता है । जिसको शुद्ध ज्ञान नहीं होता, वह इनसे इस भांति नफ़रत करता है—इस समय मेरा तामसी भाव है जिससे मुझे मोह हो रहा है, इस समय मुझमें राजसी प्रवृत्ति है जो दुःखदायी है, इस रजोगुणके तरग़ीब देनेसे मैं अपने स्वभावसे नीचे गिर गया हूं । इस समय मुझमें सतोगुणी भाव है । सतोगुण मुझे सुखका लालच दिखाकर मुझे बन्धनमें फंसाता है, ये सब दुःखदायी हैं । जो मनुष्य गुणोंको उल्लङ्घन कर जाता है वह इनसे न तो घृणा करता है और न इनकी चाह रखता है, बल्कि उदासीन सा रहता है ।

हे अर्जुन ! जो उदासीन की तरह रहता है और सत्व, रज, तम इन तीन गुणोंके सुख दुःख रूपी कामोंसे चलायमान नहीं होता और ऐसा समझता है कि ये तीनों गुण अपने अपने काममें आपही लगे हुए हैं, वह गुणातीत है ।

जो सुख दुःखको समान समझता है, जो मानसिक विकारोंसे अलग रहता है, जो कंकर, पत्थर और सोनेको समान समझता है, जो प्यारी और कुप्यारी चीज़को

एक सी समझता है, जो धीर है, जो बड़ाई और बुराई को समान समझता है, वह गुणातीत है।

जो मान, अपमानको एकसा समझता है, जो शत्रु मित्रको बराबर समझता है, जो किसी काममें हाथ ही नहीं लगाता, वह गुणातीत है।

खुलासा—वह दृश्य और अदृश्य फलोंके देनेवाले कामोंको त्याग देता है सिर्फ इतनाही करता है जो शरीर रक्षार्थ ज़रूरी है।

जो कोई अखण्ड भक्तिसे मेरी सेवा करता है वह इन तीनों गुणोंको पार करके ब्रह्म-भावको प्राप्त होने योग्य होजाता है यानी मोक्षके योग्य होजाता है।

अविनाशी, निर्विकार ब्रह्मका स्थान मैं हूँ, सनातन धर्मका स्थान मैं हूँ और एकान्त सुखका स्थान मैं हूँ।

खुलासा—मैं अविनाशी ब्रह्म, सनातनधर्म भक्तियोग—एकान्त सुख—अपने स्वरूपकी प्राप्ति -का आधार हूँ, इसलिये जो अखण्डित भक्ति योगसे मेरी सेवा करता है वह सत्व, रज, तम इन तीनों गुणोंको उल्लङ्घन करके मेरे भावको प्राप्त होता है यानी ब्रह्म ही जाता है।

पन्द्रहवाँ अध्याय ।

संसार-वृक्ष ।

क्योंकि सब जीव कर्म फलोंके लिये और ज्ञानी अपने ज्ञानके फलके लिये मेरे आधीन हैं, इसवास्ते जो लोग भक्ति-योगसे मेरी सेवा करते हैं, ज्ञानप्राप्त करके मेरी कृपासे गुणोंको पार कर जाते हैं और मुक्ति पा लेते हैं, इसी तरह वह भी मोक्ष पा जाते हैं जो आत्माके असली तत्त्वको जान जाते हैं। इसी कारणसे भगवान अर्जुनके बिना पूछे आत्माके असली तत्त्वका वर्णन इस अध्यायमें करते हैं।

वैराग्य बिना ज्ञान और भक्ति दोनोंहीका होना महाकठिन है। इसी वजहसे भगवान वृक्षके रूपालङ्कारसे संसारके स्वरूपका वर्णन करते हैं। क्योंकि मनुष्य बिना विरक्ति हुए ईश्वरीय ज्ञानके प्राप्त करने लायक ही नहीं होता।

भगवानने कहा :—

कहते हैं कि अविनाशी अश्वत्थ वृक्षकी जड़ ऊपर है और शाखें नीचे हैं। इसकी पत्तियाँ वेद हैं। जो इसे जानता है वह वेदोंको जानता है।

कठोपनिषदमें लिखा है "इसकी जड़ ऊपर और शाखाएं नीचेकी

ओर हैं, वह अश्वत्थ अनादि * है।" पुराणमें भी कहा है—"ब्रह्मके अनादि वृक्षकी जड़ अव्यक्त है। वह अव्यक्तकी शक्तिसे बढ़ा है। उसका धड़ बुद्धि है। इन्द्रियोंके छेद उसकी खोखलें हैं। महाभूत उसकी शाखाएं हैं। इन्द्रियोंके विषय उसकी डाली और पत्ते हैं। धर्म और अधर्म उसकी कलियां हैं। सुख और दुःख उसके फल हैं जो सब प्राणियोंकी जीविका हैं। यह ब्रह्मके आवागमनकी जगह है। ज्ञानरूपी तेज तलवारसे जो इस वृक्षको छेद काटकर परमगति पा जाता है उसे फिर नहीं लौटना पड़ता।

और भी कहा है कि यह मायामय संसार वृक्षके समान है जिसकी जड़ ऊपर है। महत्, अहङ्कार, तन्मात्राएं उसकी शाखाओंके समान हैं और वह नीचेकी ओर फैली हुई है। इसीसे इसकी डालियां नीचे हैं। इस वृक्षको अश्वत्थ इसलिये कहते हैं कि यह कलतक भी नहीं ठहरेगा; क्योंकि इसका नाश हर क्षण होता है। संसारी माया अनादि है इसी लिये यह वृक्ष भी अनादि कहा जाता है। जन्म बराबर होता रहता है यानी जन्मनेका तार कभी नहीं टूटता इसीसे इसे अनादि कहा है। वेद इसके पत्तोंके समान है। जिस तरह पत्तोंसे वृक्षकी रक्षा होती है उसी तरह ऋक्, यजुः, सामसे संसार-वृक्षकी रक्षा होती है। जो संसार-वृक्ष और उसकी जड़को जानताहै वह वेदको शिक्षाओंको जानता है। इस संसार-वृक्ष और उसकी जड़के ज्ञान आनेपर कुछ भी और जाननेको बाकी नहीं रहता। जो इसके विषयमें जानता है वह सर्वज्ञ है।

आगे इस वृक्षके अवयवोंका दूसरा रूपालङ्कार बताया जाता है:

गुणोंसे पोषण हो कर उसकी शाखायें नीचे और

---

* यह वृक्ष ब्रह्मके अधिकारमें है। वही इसकी रक्षा करता है, वही इसका शासन करता है, इसको अनादि इसलिये कहा है कि यह ज्ञानके सिवा और किसी चीजसे काटा नहीं जा सकता।

ऊपर फैली हुई हैं। इन्द्रियोंके विषय उसकी कोपलें हैं; नीचे मनुष्य लोकमें कर्मोंके परिणाम स्वरूप उसकी जड़ें फैली हुई हैं।

खुलासा—संसार-वृक्षकी शाखाएं सत्व, रज, और तम,इन गुणोंसे सींची जानेके कारणसे ऊपर और नीचे फैल रही हैं। इन्द्रियोंके विषय शब्द, रूप, रस, गन्ध आदि—इसकी कोपलें हैं। मनुष्य-लोकमें कर्मोंके फल स्वरूप जड़ें फैल रही हैं। मतलब यह है कि जो सतोगुणके कर्म करते हैं वे देवताओंके लोकमें जन्म लेते हैं, जो नीच कर्म करते हैं वे पशु पक्षी आदि नीच योनियोंमें जन्म लेते हैं। जो जैसे कर्म करता है उसे वैसाही फल मिलता है।

वृक्षको काटो और मूल कारणकी खोज करो।

इसके रूप, इसके आदि अन्त और इसके अस्तित्वका पता नहीं लगता। इस मज़बूत जड़वाले अश्वत्थको उदासीनताकी तेज़ तलवारसे काट कर, संसारके मूल कारण ईश्वरकी खोज करनी चाहिये, जहाँ जाकर फिर लौटना नहीं पड़ता। उस आदि पुरुषकी शरण जाना चाहिये जिससे इस पुरातन संसार का निकास हुआ है।

जैसे वृक्षका बयान पहले कर आये हैं उसका रूप किसीको नहीं दीखता; क्योंकि वह स्वप्न, मृगतृष्णा, अथवा मायावी द्वारा रचे हुए गन्धर्व-नगरके समान है। वह दीखता है और नहीं दीखता। इसीसे उसका अन्त नहीं है न उसका आदि है—कोई नहीं जानता कि वह किस जगहसे निकला है। उसका अस्तित्व भी किसीको नहीं मालूम होता। उस मज़बूत जड़ वाले वृक्षकी जड़ वही काट सकता है जो धन दौलत स्त्री पुत्र और इस

जगत्‌से मोह न रखे । एकचित होकर परमात्मामें मन लगावे और तत्त्व-ज्ञानके विचारोंमें लीन हो ।

इस तरह माया ममताके त्यागकी तेज तलवारसे उस वृक्षको जड़ काट कर उस वृक्षके परे, ज्ञानीको मूल कारणकी खोज करनी चाहिये । जो इस मूल कारण—ईश्वर—के पास पहुँच जाते हैं उन्हें फिर इस संसारमें लौटना नहीं पड़ता । उस आदि पुरुषकी शरणका प्रार्थी होनेसे वह मिल जाता है । वह आदि पुरुष वह है जिससे मायारूपी संसारके वृक्षका कुल्ला फूटा है ।

मूल कारणके पास पहुंचनेकी राह ।

किस प्रकारके लोग उस मूल कारणके पास पहुँचते हैं ?—सुनो :—

जिनको मान अपमानका ख्याल नहीं है; जिनको मोह नहीं है; जिनका स्त्री पुत्र आदिमें मन नहीं है; जिनका ध्यान हर समय आत्माके ज्ञानमें लगा रहता है ; जिनकी सब सांसारिक वासनाएँ दूर हो गयी हैं ; जिनका सुख दुःख, गरमी, सरदी, हानि लाभ आदि इन्होंसे पीछा छूट गया है; ऐसे ही ज्ञानी उस सनातन-आदि पुरुष—मूल कारणको पाते हैं ।

जिसको सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि प्रकाशित नहीं कर सकते; वह मेरा परम धाम है । जहाँ पहुँचकर किसी को लौटना नहीं होता ।

जीव ईश्वरका अंश है ।

यह कहा गया है कि "वहाँ पहुँचनेपर लौटना नहीं पड़ता ।" लेकिन इस बातको हर शख्स जानता है कि जो आता है वह जाता है. जो जाता

है वह आता है, जो मिलता है वह अलग होता है। फिर यह बात कैसे कही गयी है कि उस धाममें पहुंचनेपर लौटना नहीं होता? सुनो :—

हे अर्जुन! इस जीव-लोकमें सनातन जीव मेरा अंश है। वह जीव प्रकृतिमें स्थित होकर आँख कान आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों और छठे मनको सांसारिक भोगों के लिये खींचता है।

खुलासा—संसारमें सनातन जीव मेरा—परमात्मा का—अखण्ड अंश है। वह हर शरीरमें अपने तईं कर्त्ता और भोक्ता प्रकट करता है। वह उस सूर्यके समान है जो जलमें दिखाई देता है; किन्तु पानीके हटा लेने पर वह पानीमें दीखनेवाला सूर्य असली सूर्यमें मिल जाता है और उसी सूर्यके समान रहता है।—अथवा वह घड़े मे आकाशके समान है। जो घड़े की उपाधिसे सीमाबद्ध है। यह घड़े का आकाश अनन्त आकाशका एक अंश मात्र है। जो घड़े के फोड़ देनेपर उसीमे मिल जाता है और फिर नहीं लौटता। इसी तरह उपाधि रहित होनेपर जो मुझमें मिल जाता है फिर नहीं लौटता।

शङ्का—परमात्माके खण्ड नहीं है इसलिये उसका टुकड़ा कैसा हो सकता है? अगर उसके खण्ड हैं तो वह अपने खण्डोंके अलग होनेपर नाश हो जायगा।

उत्तर—हमारी कल्पनामें यह शङ्का नहीं हो सकती; वह ख्याली खण्ड मान लिया गया है। 'तेरहवें अध्यायमें सिद्ध कर दिया गया है कि वह परमात्माका अंश नहीं है बल्कि परमात्मा ही है।

जीव शरीरमें किस तरह रहता है और किस तरह उसे छोड़कर जाता है?

यह आत्मा या जीव जो मेरा खाली अंश है किस तरह इन्द्रियोंमें रहता

है और किस तरह उसे छोड़ता है? यानी जब कि परमात्मा है तो उसे संसारी या दुनियाँसे जानेवाला क्यों कहते हैं?—सुनो—वह अपने गिर्द कान आदि इन्द्रियों और छठे मनको खींचता फिरता है। ये छः इन्द्रियाँ प्रकृतिमें रहती हैं। यानी अपनी अपनी जगहोंमें रहती हैं जैसे कानकी इन्द्रिय कानके छेदमें रहती है।

वह उन्हें कब खींच फिरता है?

जब यह देहका मालिक शरीर धारण करता है और इसे छोड़ता है तब यह इस तरह इन्हें ले जाता है जिस-तरह हवा सुगन्धको लेकर दूसरी जगह चली जाती है।

खुलासा—जब देह इन्द्रिय और मनका स्वामी, कर्मों की वासनासे दूसरा शरीर धारण करता है अथवा मरनेके समय पहला शरीर छोड़ता है तब अपने पहले शरीरके मन और इन्द्रियोंको संग लेकर दूसरे शरीरमें इस तरह चला जाता है जैसे हवा फूलोंसे सुगन्ध लेकर दूसरी जगह चली जाती है।

हे अर्जुन! वह कान, आँख, चमड़ा, जीभ, नाक और मनको काममें लाकर इन्द्रियोंके विषयोंको भोगता है।

ज्ञान चक्षुसे आत्मा दीखता है।

जीवका शरीर बदलना यानी एकको छोड़ना और दूसरेमें जाना सब को क्यों नहीं दिखाई देता?

शरीरको छोड़ते हुए, शरीरमें ठहरे हुए, विषय भोगोंको भोगते हुए, सत्व रज, तम इन गुणोंसे युक्त

हुए आत्माको मूढ़लोग नहीं देखते—वे देखते हैं जिनके ज्ञानकी आँखें हैं ।

खुलासा—जो शरीरमें रहता है, जो एक दफेके धारण किये हुए शरीरको छोड़ता है, जो शरीरमें ठहरता है, जो शब्द, रूप रसादिका अनुभव करता है, जो हमेशा गुणों (सत्व, रज, तम) के संग रहता है, यानी जो हमेशा सुख, दुःख, मोह आदिका अनुभव करता है, उसे मूढ लोग नहीं देखते। यद्यपि वह (जीव) बिल्कुल उनकी नज़रके सामने रहता है तथापि वह (मूढलोग) उसे नहीं देख पाते क्योंकि उनके चित्त देखी और अनदेखी विषय भोगकी चीज़ोंमें लगे रहते हैं. लेकिन जिनकी ज्ञानकी आखें ज्ञानसे खुल गयी हैं, यानी जिनमें विचारशक्ति है वे उसे देखते और पहचानते हैं।

बिना योग आत्मज्ञान नहीं ।

जो योग युक्त हो कर (समाधिस्थ होकर) चेष्टा करते हैं वे अन्त: करणमें आत्म-स्वरूपको देखते हैं; जो ज्ञान रहित हैं, जिनका चित्त शुद्ध नहीं है वे चेष्टा करने पर भी उसे नहीं देखते ।

जो चित्तको ठिकाने करके चेष्टा करते हैं वे उसे—आत्माको अपनी बुद्धिमें ही रहता हुआ देखते हैं। वे उसे पहचानते हैं, 'यह मैं हूं' लेकिन जिनका चित्त तप और इन्द्रियोंके वश न करनेसे शुद्ध नहीं हुआ है जिन्होंने कुकर्म नहीं छोड़े हैं, जिनका अहङ्कार नहीं गया है, वे उसे शास्त्रोंकी सहायतासे नहीं देख सकते। मतलब यह है कि जिनका मन शुद्ध नहीं हुआ है, जिन्होंने नित्य, अनित्य, असली और नकलीका भेद नहीं समझा है वे केवल शास्त्र, बुद्धि और विद्वानोंकी सहायतासे उसे नहीं देख सकते।

ईश्वर की विभूतियाँ ।

सर्व प्रकाशक चैतन्यतात्मक ज्योति ।

जिस परब्रह्मरूप पद को सारे जगत् में प्रकाश करनेवाले सूर्य्य चन्द्रमा और अग्नि नहीं प्रकाश करते, जहां पहुंच कर मोक्ष के खोजी फिर संसार में नहीं आते, जीव जिस के अंशमात्र हैं और जो उपाधि के कारण से अलग दीखते हैं—जैसे घड़े में आकाश घड़े की उपाधि से महा आकाश से अलग दीखता है किन्तु असल में उसीका अंश है। घड़े के फूटते ही वह उसी महा आकाश में आ मिलता है। इसी तरह जीव अविद्या आदि उपाधियों से निवृत्त होने पर परब्रह्म में मिल जाते हैं, दोनों में कुछ भेद नहीं रहता। यह बात दिखाने के लिये कि वह परब्रह्मरूप पद सब का आत्मा और सारे व्यवहारों का साधक है ; भगवान आगेके चार श्लोकों में संक्षेपसे अपनी विभूतियों को कहते हैं।

वह तेज जो सूर्यमें रहकर तमाम जगत्में प्रकाश फैलाता है, वह तेज जो चन्द्रमामें है, वह तेज जो अग्नि में है, उस तेजको तू मेरा ही जान।

यहां तेज से मतलब चैतन्यता करनेवाली ज्योति से भी हो सकता है।

शंका—जब एक परब्रह्म का तेज सब चराचर चीज़ों में समान भाव से है तब सूरज चन्द्रमा अग्निमें वह तेज अधिकता से क्यों दिखाई देता है ?

उत्तर—यद्यपि चर अचर पदार्थों में चैतन्यता की ज्योति समान ही है तथापि सतोगुण की उत्कर्षता से सूर्य्य वगैरः अधिक तेजवान दीखते हैं। जिन वस्तुओं में रजोगुण या तमोगुण प्रधान है उनमें वह ज्योति साफ़ नहीं दीखती, जिस तरह हम अगर अपना मुंह लकड़ी के तख़्ते या भीत में देखें तो साफ़ न दीखेगा लेकिन कांच (आइना) जितना ही ज़ियादा साफ होगा

उसमें हमारा मुंह उतनाही अच्छा दीखेगा। काँच भी जितना ही कम साफ होगा उतनाही मुंह कम साफ दीखेगा।

ईश्वर सब को धारण और पोषण करता है।

मैं ही पृथ्वी-रूप होकर अपने बलसे सब प्राणियोंको धारण करता हूँ; और रसात्मक सोम (चन्द्रमा) होकर सबका पोषण करता हूँ।

यानी मेरा बल ही पृथ्वी के थाम्हें रहने को उसके अन्दर घुसा हुआ है। मेरे उस बल के कारण से ही पृथ्वी नीचे नहीं जाती और उसके टुकड़े टुकड़े नहीं हो जाते। इसीसे कहा है कि मैं पृथ्वीरूप होकर या पृथ्वीमें घुस कर सब चराचर प्राणियों को धारण करता हूँ। मैं ही रसात्मक सोम (चन्द्रमा) होकर पृथ्वी पर पैदा होनेवाली औषधियों (गेहूँ, जौ, चांवल, आदि को) पोषण करता हूँ। यह बात सच है कि चन्द्रमा ही सारी वनस्पतियों को उनमें रस डालकर पोषण करता है।

ईश्वर ही जठराग्नि है।

मैं ही वैश्वानरके रूपमें प्राणियोंकी देहमें घुसकर प्राण और अपान वायुको संग लेकर चारों प्रकारके भोजनको पचाता हूँ।

वैश्वानर या जठराग्नि उस अग्नि को कहते हैं जो पेट में रहती है और भोजन पचाती है।

भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, ये चार प्रकार के भोजन होते हैं। जो चीज़ दांतों से तोड़ कर खाई जाती है उसे भक्ष्य कहते हैं जैसे पूरी। जो चीज दांतों की बिना सहायता जीभ हिलाने से गले के भीतर चली जाय उसे भोज्य कहते हैं; जैसे खीर। जो चीज़ जीभ पर पहुंच कर उसके

स्वाद से भीतर चली जावे उसे लेह्य कहते हैं जैसे चटनी, अमरस, शिखरन इत्यादि । जो चीज़ चूसी जाती है उसे चोष्य कहते हैं जैसे ऊख वगैरः ।

जो यह समझता है कि खानेवाला वैश्वानर अग्नि है और जो खाया जाता है सो सोम रूप है—अग्नि और सोम दोनों सर्व रूप हैं, उसे बुरे भोजन का दोष नहीं लगता है ।

ईश्वर सबके हृदय में वास करता है ।

मैं ही सब प्राणियोंके हृदयमें बैठा हुआ हूँ. मुझसे ही पहली बातें याद आती हैं । मुझसे ही रूप आदि का ज्ञान होता है और मुझसे ही स्मृति और ज्ञानका अभाव होता है । सब वेदोंसे जानने योग्य मैं ही हूँ । मैं वेदान्तका कर्त्ता और वेदोंका जाननेवाला हूँ ।

नोट—जो पापी हैं उनमें स्मृति और ज्ञान का अभाव कर देता हूँ । जो पुण्यात्मा हैं उनमें स्मृति और ज्ञान पैदा करता हूँ । एक बात और है कि मैं प्राणियों के हृदय में रहकर उनके दिलों के बुरे, भले कामों को देखा करता हूँ । मैं तार खींचनेवाला—सूत्रधार—हूँ, जगत् रूपी मेशीन के पीछे खड़ा हुआ सब कामों की देख भाल किया करता हूँ ।

क्षर और अक्षर से ईश्वर अलग है ।

इस अध्याय के १२ वें श्लोक से यहाँतक ईश्वर की विभूतियों का वर्णन किया गया । अब आगे के श्लोकों में कृष्ण महाराज ईश्वर के क्षर, अक्षर से परे निरुपाधिक शुद्ध रूपका वर्णन करते हैं ।

इस जगत्में दो प्रकारके पुरुष हैं—क्षर और अक्षर । जो देह धारी हैं वे क्षर हैं और जो विकार रहित हैं वे अक्षर हैं ।

लेकिन इन दोनोंसे अलग उत्तम पुरुष है जिसे परमात्मा कहते हैं। वह अविनाशी ईश्वर तीनों लोकोंमें प्रवेश करके तीनों लोकोंका पालन करता है।

हे अर्जुन! मैं क्षरसे उत्तम हूँ और अक्षरसे भी उत्तम हूँ इसीसे दुनिया और वेदमें मैं पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूँ।

खुलासा—ऊपर के तीनों श्लोकों का सारांश यह है कि दुनिया मे तीन चीज़ें हैं (१) क्षर (२) अक्षर (३) पुरुषोत्तम। क्षर प्रकृति को कहते हैं क्योंकि वह हमेशा बदलती रहती है। अक्षर नाम जीव का है। उसे अक्षर इसलिये कहते हैं कि उसका कभी नाश नहीं होता और वह विकार रहित है। तीसरा पुरुषोत्तम है। वह क्षर और अक्षर दोनों से बड़ा और उनसे अलग है। वही मूल कारण है। उसी के हाथ मे जगत् की बागडोर है। वही संसार-रूपी नाटक का सूत्रधार है। वही संसार-वृक्ष की वह मूल है जहां से यह संसार निकला है। वही इस जगत् में व्याप्त हो रहा है। वही सब का पालन करनेवाला और नाश करनेवाला है। वही सर्वेश्वर है। उससे ऊपर और कुछ नहीं है।

हे भारत! जो क्षर और अक्षरसे अलग नित्य मुक्त शुद्ध सच्चिदानन्द पुरुषोत्तमको जानता है वह सर्वज्ञ विद्वान सम्पूर्ण भावोंसे मुझे भजता है।

जिसे आत्मज्ञान हो जाता है वह सदा आत्मानन्द में रत रहता है अथवा यों कह सकते हैं कि जिसे ईश्वर के अपरोक्ष रूप का ज्ञान हो जाता है वह सदा ईश्वर की भक्ति में ही लगा रहता है।

हे पाप-रहित अर्जुन! मैंने तुझसे यह बहुत गुप्त

विषय कहा है; इसके जान जाने पर मनुष्य बुद्धिमान और कृतकृत्य हो जाता है।

यों तो सारा गीता ही शास्त्र है। तथापि उपरोक्त वाक्य से मालुम होता है कि यह पन्द्रहवा अध्याय ही गीता शास्त्र है। बात भी सच है समस्त गीता का साराश इस अध्याय में कह दिया गया है। गीता के उपदेश ही नहीं, वेद की शिक्षाओं का सारा तत्त्व यहां कह दिया गया है। यह कहा गया है कि जो इसे (अश्वत्थ वृक्ष) जानता है वेद को जानता है और जिसे वेदों द्वारा जानना चाहिये वह मैं हूं। इस उपरोक्त उपदेश के जान जाने पर मनुष्य बुद्धिमान् हो जाता है। जो इसे जान जाता है वह अपने तमाम कर्तव्य कर्म पूरे कर चुकता है।

सोलहवाँ अध्याय।

ब्रह्मवाद और देहात्मवाद।

दैवी सम्पत्ति अथवा प्रकृति।

नवें अध्याय में विचार शक्ति रखनेवाले जीवों की तीन प्रकार की प्रकृतियां कही गयी थीं। यानी दैवी प्रकृति, आसुरी प्रकृति और राक्षसी प्रकृति। इस सोलहवें अध्याय में वही बात बढ़ाकर - विस्तार से—बताई जाती है। इन तीनों प्रकृतियों में से दैवी प्रकृति संसार बन्धन से छूटने की राह बताती है और आसुरी तथा राक्षसी प्रकृतियां संसार बन्धन की राह दिखाती हैं। अब इस मौके पर दैवी और आसुरी तथा राक्षसी तीनों प्रकृतियों का वर्णन इस मतलब से किया जायगा कि दैवी प्रकृति समझदारों को ग्रहण करनी चाहिये और दूसरी दोनों प्रकृतियां छोड़ देनी चाहियें।*

भगवान ने कहा—

निर्भयता, अन्तः करणकी शुद्धि, ज्ञान और योगमें निष्ठा, दान, इन्द्रिय-निग्रह, यज्ञ, वेद पढ़ना, तप, सीधापन।

---

* ये क्रमशः सात्विकी, राजसी और तामसी प्रकृतियां हैं जो मनुष्यों में उनके पूर्व्वजन्मके कर्मों के अनुसार होती हैं। ये वासना हैं जो अपने तई कर्म-रूप में प्रकट कर रही हैं। इनको १५ वें अध्याय के दूसरे श्लोक में संसार की अप्रधान जड़ कहा है।

निर्भयता = भय-रहित होकर शास्त्र के उपदेशानुसार चलना। अन्तःकरण की शुद्धि = छल, कपट और झूठ को सब व्यवहारों में छोड़ देना। ज्ञान और योग मे निष्ठा = शास्त्रों से आत्मा का स्वरूप समझना और सब जगह से मन को हटाकर हर समय उसी स्वरूप मे लीन रहना। दान = सुपात्रों को अन्न, धन, धरती वगैर' अपनी शक्ति अनुसार देना। इन्द्रिय निग्रह = बाहरी इन्द्रियों को वशीभूत करना। यज्ञ = श्रुति में लिखा हुआ अग्नि होत्र, सोम याग आदि करना तथा स्मृतियों में लिखे हुए देव-यज्ञ आदि करना। वेद पढना = पुराणों की उत्पत्ति के लिये ऋग्वेद, आदि वेद पढना। तप = कायिक, वाचिक और मानसिक तप, इसके विषय में आगे लिखा जायगा।

अहिंसा, सच बोलना, क्रोध न करना, त्याग, शान्ति, चुगलखोरी न करना, प्राणीमात्र पर दया, निर्लोभता, कोमल स्वभाव रखना, लज्जा, चञ्चलताका त्याग।

अहिंसा = किसी को तकलीफ न पहुंचाना। सच = अनर्थ न हो ऐसा सच बोलना। क्रोध न करना = अगर कोई गाली दे या मारे तोभी क्रोध न करना। त्याग = संन्यास ; कर्मों का त्याग , त्याग के माइने 'दान' के भी हैं मगर यहां वह माइने नहीं लिया गया है क्योंकि 'दान' के विषयमें पहले कह आये हैं। शान्ति = चित्तमें उद्विग्नता न होने दना। चुगलखोरी न करना = किसी के पीठ पीछे, किसी के सामने किसी की निन्दा न करना। प्राणीमात्र पर दया = सब जीवों को अपने समान समझ कर उनके कष्टों से उन्हें छुड़ाने का भरसक यत्न करना। निर्लोभता = विषय भोगों के मौजूद होने पर और उनके भोगने योग्य शक्ति रहने पर भी उनमें मन न लगाना। कोमल स्वभाव = किसी से भी कड़वी बात न कहना, छोटे बड़े, नीचे ऊंचे सब से मीठी बात बोलना। लज्जा = न करने योग्य कामों के करने

से लजाना। चञ्चलताका त्याग=बिना मतलब या बिना काम न बोलना और वृथा हाथ पैर आदि न चलाना।

तेज, क्षमा, धीरता, पवित्रता किसीसे घृणा या बैर न करना, अपने तईं बड़ा समझ कर घमण्ड न करना; ये २६ दैवी सम्पत्ति हैं। ये उसीमें होती हैं जिसका आगे भला होनेवाला होता है।

तेज=सामर्थ्य, प्रभाव। क्षमा—सामर्थ्य होनेपर और अपने को सताने पर भी क्रोध न करना। धीरता—शरीर और इन्द्रियों के व्याकुल होने पर उनकी व्याकुलता के दबाने की चेष्टा करना। पवित्रता—शौच, शौच दो प्रकार का है। (१) वाह्य शौच। (२) आभ्यन्तरिक शौच। जल और मिट्टी से शरीर शुद्ध करने को वाह्य शौच कहते हैं। छल कपट द्वेष आदि से मन के अलग रखने को आभ्यन्तरिक शौच कहते हैं। किसी से घृणा या वैर न रखना=किसी को तकलीफ पहुँचाने की इच्छा न रखना।

आसुरी सम्पत्ति अथवा प्रकृति।

आगे आसुरी सम्पत्ति का वर्णन किया जाता है—

दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, निठुरता और अज्ञान ये छः प्रकृतियाँ उनकी होती हैं जिनका बुरा होनेवाला होता है।

दम्भ—अपने को बड़ा साबित करने को लोगों के सामने अपना धर्मात्मापना दिखाना। दर्प=विद्या, धन और ऊँचे कुल वगैरः का घमण्ड करना। निठुरता—किसी के सामने रूखी (कड़वी) बात कहना। अज्ञान—कर्त्तव्य विषयों की विचार-हीनता।

दो प्रकारकी प्रकृतियों का परिणाम ।

दैवी प्रकृतिसे मोक्ष होती है। आसुरीसे बन्धन होता है। हे! पाण्डव तू सोच मत कर, तू दैवी प्रकृति लेकर जन्मा है।

खुलासा—जिनकी प्रकृति दैवी होती है वे ही तत्त्वज्ञान के अधिकारी होते हैं। तत्त्वज्ञान से उनको मोक्ष होजाती है। जिनकी प्रकृति आसुरी होती है उनको निश्चय ही संसार-बन्धन में फँसना पड़ता है। यह सुनते ही अर्जुन के मनमें सन्देह हुआ कि "मैं आसुरी प्रकृतिवाला हूँ या दैवी प्रकृतिवाला?" भगवानने उसके चहेरे से ही यह बात समझ कर कह दिया कि तू सोच मत कर, तू दैवी प्रकृति लेकर जन्मा है यानी तेरी प्रकृति दैवी है। तू तत्त्वज्ञान का अधिकारी है। तेरी मोक्ष होगी।

असुर लोग ।

इस संसारमें दो तरहके जीवोंकी सृष्टि है, दैवी और आसुरी। दैवीका वर्णन विस्तारसे कर दिया है। हे पार्थ! अब आसुरीका वर्णन सुन।

आसुरी प्रकृतिवाले लोग यह नहीं जानते कि उन्हें क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये, उनमें न पवित्रता है, न आचार है और न सच है।

खुलासा—असुर प्रकृतिवाले कर्त्त्व्याकर्त्तव्य का ज्ञान नहीं रखते; इसके सिवाय वे अपवित्र, बदचलन और झूँठे होते हैं।

जगत्के विषयमें आसुरी प्रकृतिवालों का सिद्धान्त ।

वे कहते हैं—जगत असत्य है, आधारहीन है,

अनीश्वर है। स्त्री पुरुषके संयोगसे पैदा हुआ है। इसका कारण काम है; इसके सिवाय दूसरा कारण नहीं है।

खुलासा—असुर रूपी (नास्तिक) मनुष्य कहते हैं,—"जिस भाँति हम असत्य हैं, उसी तरह यह जगत् मिथ्या है। धर्म और अधर्म उसके आधार नहीं हैं। धर्म अधर्म के अनुसार इस जगत् का शासनकर्त्ता कोई ईश्वर नहीं है। इसलिये जगत् बिना ईश्वर के है। सारा जगत् स्त्री पुरुष के काम से पैदा हुआ है। इसके सिवाय जगत् का कारण और क्या होसकता है?" आसुरी प्रकृतिवाले लोगों की ऐसी ही राय है।

हे अर्जुन! पूर्वोक्त दृष्टिका आश्रय लेकर, ये नष्ट-आत्मा अल्पबुद्धि, भयंकर कर्म करनेवाले, जगत्के शत्रु, जगत्के नाश करनेको पैदा हुए हैं।

आसुरी प्रकृतिवालों का जीवन।

भगवान ने उन्हे नष्टात्मा इसलिये कहा है कि उन्होंने उच्च लोकों में जाने का अवसर गँवा दिया है। अल्पबुद्धि इसलिये कहा है कि उनकी बुद्धि में विषय भोगोंके सिवाय और कोई चीज नही जंचती। भयङ्कर कर्म करनेवाले इसलिये कहा है कि रात दिन दूसरों को कष्ट देने के काम किया करते हैं।

असुर-प्रकृतिके लोग ऐसी ऐसी कामनाएँ किया करते हैं जो बड़े बड़े कष्ट उठाने पर भी पूरी न हों। उनमें छल, कपट और मद भरा रहता है। मूर्खतासे अशुभ कर्मोंको ग्रहण करके वेद विरुद्ध कर्म करते हैं।

वे ऐसी घोर चिन्ताओंमें लगे रहते हैं जो उनको मृत्युके समय ही उनका पीछा छोड़ती हैं। विषय भोगोंको वे परम पुरुषार्थ समझते हैं।

आशा-रूपी अनेक फाँसियोंमें बंधे हुए, काम और क्रोधके आधीन हुए, विषय भोग भोगनेके लिये वे अन्याय कर्मों से धन जमा करनेकी चेष्टा करते हैं।

खुलासा—असुर-स्वभाव वाले इन्द्रिय सुखको ही परम पुरुषार्थ समझते हैं। उनका ख्याल है कि इस सुखसे बढकर और सुख नहीं है। इन्द्रिय-सुखके सामान जुटाने के लिये वे रात दिन चिन्तामे फसे रहते हैं। उनकी चिन्ता का अन्त उनके अन्त होनेके समय ही होता है। चिन्ताके सिवाय हजारों प्रकार की आशाएँ उनको लगी रहती हैं। रात दिन वे काम और क्रोध मे अन्ध रहते हैं। वे इन्द्रियों के सुख भोगने के लिये धन जमा करने को लोगोंका गला काटते हैं, चोरी करते हैं, डाका डालते हैं। ऐसा बुरा कोई काम नही है जो स्वार्थ साधन करने को वे न करते हों।

असुर-प्रकृतिवालों की इच्छाएँ।

असुर प्रकृतिवाले हर समय ऐसी बातोंके फेरमें पड़े रहते हैं—आज मुझको यह मिल गया है; मेरा यह मनोरथ पूरा होगा; यह मेरा है, और भविष्यतमें यह दौलत भी मेरी हो जायगी; उस दुश्मनको मैंने मार-डाला है, दूसरोंको कल मारूँगा।

मैं मालिक हूँ, मैं भोग भोगता हूँ, मैं सिद्ध हूँ, कृत कृत्य हूँ, बलवान और तन्दुरुस्त हूँ।

अमुक अमुक शत्रु को मैंने मार डाला, दूसरोंको भी मारडालूँगा। मै

ग़रीब क्या कर सकते हैं ? मेरी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है ।—किस तरह ? मैं मालिक हूँ, मैं भोगता हूँ, मैं हर तरह से कामयाब हूँ, मेरे बेटे पोते हैं ; मैं साधारण आदमी नहीं हूँ, मैं अकेला ही बलवान और स्वस्थ हूँ ।

मैं अमीर हूँ, मैं अच्छे कुलमें पैदा हुआ हूँ, मेरी बराबरी कौन कर सकता है? मैं यज्ञ करूँगा, मैं दान दूँगा, मैं आनन्द करूँगा। इस तरह अज्ञानसे भूल कर ये आसुरी प्रकृतिवाले अनेक प्रकारके ख्यालातोंमें भ्रमते हुए अज्ञानके जालमें फँसे हुए, विषयोंकी तृप्तिमें लगे रहकर घोर नरकमें पड़ते हैं।

आसुरी प्रकृतिवालों के यज्ञ ।

ऐसे लोग अपनी बड़ाई आप किया करते हैं, किसीका सत्कार नहीं करते, धनके नशे और मदमें चूर रहते हैं। वे नाममात्रके वेद विरुद्ध यज्ञ कपटसे करते हैं।

आसुरी प्रकृति वाले ईश्वरकी आज्ञा नहीं मानते ।

ये लोग अहंकार, बल, घमण्ड काम और क्रोध के आधीन रहते हैं। ये दुष्टात्मा अपने और पराये शरीरमें रहनेवाले मुझ अन्तर्यामीसे घृणा करते हैं।

वे शास्त्रोंमें लिखी ईश्वर-आज्ञाओंको जानना और उनका पालन करना पसन्द नहीं करते ।

आसुरी प्रकृतिवालों का पतन ।

मुझसे द्वेष रखनेवाले इन निर्दयी नराधमोंको, इन कुकर्म्मियोंको, इस संसारके बीच, बारम्बार असुर-योनियोंमें ही डालता हूँ ।

असुर योनियों से मतलब शेर, चीते, बाघ, तेंदुए आदि की योनियोंमें डालने से है ।

वे मूर्ख जन्म जन्ममें असुर योनि पानेसे मुझ तक कभी नहीं पहुँचते ; इससे हे अर्जुन ! वे और भी नीची गतिको प्राप्त हो जाते हैं ।

खुलासा—ये मूढ लोग, जन्मसे, तामसी योनियोंमें जन्म लेते हैं और नीचीसे नीची गतिको प्राप्त होते जाते हैं । बतायी राह पर न चलने से वे नीच योनियोंमें जन्म लेते हैं । सबका सार मर्म यह है कि आसुरी स्वभाव पापोत्पादक और मानवी उन्नतिका शत्रु है । मनुष्यको उसे अपनी स्वतन्त्रता में अलग कर देना चाहिये । ऐसा न हो कि उसे कोई ऐसी योनि मिल जाय जिसमें वह परतंत्र होजाय और फिर कुछ भी न कर सके । सब प्रकार की उन्नति और मोक्षके लिये मनुष्यका चोला उपयुक्त है । जिसने इस मनुष्य-चोले में कुछ न किया वह अन्य चोलोंमें कुछ भी न कर सकेगा ।

नरकके तीन द्वारोंसे बचना चाहिये ।

यहाँ तमाम आसुरी प्रकृतिका तीन सूरतोंमें खुलासा कर दिया जाता है । इन तीन सूरतोंसे बचनेपर मनुष्य सारी आसुरी प्रकृति से जो सब दोषोंकी खान है बच जाता है ।

हे अर्जुन ! नरकके तीन द्वार हैं—काम, क्रोध,

और लोभ, ये तीनों आत्माके नाशक हैं ; अतः मनुष्यको इन तीनोंको त्याग देना चाहिये ।

जो मनुष्य काम, क्रोध और लोभ, इन तीन नरक-द्वारोंको त्याग देता है, हे अर्जुन! वह अपनी आत्माका भला करता है और परम गतिको प्राप्त होता है ।

शास्त्रकी मर्यादा पर चलना उचित है ।

जो मनुष्य शास्त्रकी मर्यादा छोड़ कर, अपनी इच्छानुसार चलता है, उसे न सिद्धि मिलती है, न सुख मिलता है और न मोक्ष मिलती है।

जो मनुष्य वेद-विहित कर्म नहीं करता है, मनमें आता है वही करता है, उसे सिद्धि, इस लोक में सुख और देह छोड़ने पर स्वर्ग या मोक्ष कुछ भी नहीं मिलता ।

क्या करना उचित है और क्या करना अनुचित है ? इस व्यवस्थामें शास्त्र प्रमाण है। अब तुझे शास्त्र विधिसे अपना कर्त्तव्य कर्म करना उचित है ।

सत्रहवाँ अध्याय।

तीन प्रकारकी श्रद्धा।

मूर्ख, किन्तु श्रद्धावान्।

भगवान ने पिछले १६ वें अध्याय के २४वें श्लोकमें जो शब्द कहे हैं उन्हीं से अर्जुन को प्रश्न करने का मौका मिला है। अर्जुनके मनमें यह शङ्का पैदा होती है कि कर्म करनेवाले तीन तरह के होते हैं। कितने लोग तो ऐसे हैं जो शास्त्र विधि को जानते हैं, किन्तु शास्त्रमें श्रद्धा न होने से शास्त्र विधिकी उपेक्षा करते हैं और मनमानी रीति से थोड़े बहुत कर्म करते हैं। ऐसे लोग असुर कहलाते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो शास्त्र-विधि को जानते हैं और उसमें अत्यन्त श्रद्धा रखकर शास्त्र-विधि के अनुसार अच्छे कर्म करते हैं। ऐसे लोग देव कहलाते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो आलस्य से शास्त्र को नहीं देखते, किन्तु पूर्व पुरुष जिन कर्मों को करते आये हैं उनको वे भी श्रद्धापूर्व्वक करते हैं और जिन कर्मों को पूर्व्व पुरुषोंने बुरा समझा है उन्हें त्याग देते हैं। ये तीसरी श्रेणीके लोग जो शास्त्र-विधि पर ध्यान नहीं देते यह तो उनका असुरधर्म है और वे जो श्रद्धा सहित बड़ोंकी देखा देखी अच्छे कर्म करते हैं यह उनका देवधर्म है। ऐसे असुरधर्म और देवधर्म से मिले हुए पुरुष किस एक श्रेणीमें गिने जायँगे, इसी संशयको मनमें लेकर अर्जुन भगवानसे पूछता है।

अर्जुन बोला :—

हे कृष्ण! जो पुरुष शास्त्र विधिको त्याग कर, श्रद्धा सहित यज्ञ करते हैं उन लोगोंकी निष्ठा कैसी है? सात्त्विकी है, राजसी है अथवा तामसी है?

तीन प्रकारकी श्रद्धा।

श्री कृष्ण बोले :—

हे अर्जुन! शरीर धारियोंकी श्रद्धा स्वभावसे तीन प्रकारकी होती है। सात्त्विकी, राजसी और तामसी। उसके विषयमें सुन।

हे भारत! सब देहधारियोंकी श्रद्धा उनके अन्त:करणके अनुसार होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है। जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वह वैसाही होता है।

खुलासा—ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, जिसकी कहीं श्रद्धा न हो। जिनकी श्रद्धा सात्त्विकी है, वे सात्त्विक हैं, जिनकी श्रद्धा रजोगुणी है वे रजोगुण युक्त हैं और जिनकी श्रद्धा तमोगुणी है वे तमोगुण युक्त हैं।

सबकी श्रद्धा अपने अपने अन्त:करण के अनुसार होती है। जिनके अन्त:-करणमें सत्त्व गुण की प्रधानता है उनकी श्रद्धा सात्त्विकी है।' जिनके अन्त: करणमें रजोगुण की प्रधानता है उनकी श्रद्धा रजोगुणयुक्त है इसी भांति जिनके अन्त: करणमें तमोगुण की प्रधानता है उनकी श्रद्धा तमो-गुण-विशिष्ट है। पुरुषकी श्रद्धा किस तरह जानी जा सकती है?—सुनो—

सतोगुणी पुरुष सत्त्व गुणवाले देवताओंकी उपासना करते हैं; रजो गुणी पुरुष यक्ष, राक्षसोंकी पूजा करते हैं; तमोगुणी पुरुष भूत प्रेतोंको पूजते हैं।

खुलासा—शास्त्रज्ञानसे युक्त पुरुष अपनी स्वाभाविक श्रद्धासे महादेव आदि सात्विक देवताओं को पूजते हैं। वे सतोगुणी हैं, जो लोग रजोगुणी कुबेर आदि यक्षों तथा राक्षसोंको पूजते हैं वे रजोगुणी हैं। जो तमोगुणी भूत प्रेतों को पूजते हैं वे तमोगुणी हैं। लोगोंकी उपासना से अथवा उनकी श्रद्धा से भली प्रकार जाना जा सकता है कि वे सतोगुणी हैं, रजोगुणी हैं, या तमोगुणी।

एक बात और है कि जो जैसे को भजता है वह वैसा ही हो जाता है। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य आदि लोग जो अपने धर्म से गिर कर भूत प्रेतों को आज कल पूजते हैं, आगे जाकर भूत प्रेत होते हैं। जो राक्षसोंको पूजते हैं वे राक्षस होते हैं। जो अच्छे देवताओंको पूजते हैं वे देव होते हैं। जो एक मात्र ब्रह्मकी उपासना करते हैं वे ब्रह्म हो जाते हैं। अब पाठकोंको स्वयं ही विचार कर लेना चाहिये कि कौनसी उपासना श्रेष्ट है।

हे अर्जुन! जो कपटी हैं, जो घमण्डी हैं, जो काम और विषयानुरागके बलसे युक्त हैं, वे शास्त्र विरुद्ध घोरतप करके शरीरके पञ्च महाभूतोंको कमज़ोर कर डालते हैं तथा अन्तर्यामी रूपसे मुझ अन्दर रहनेवालेको भी दुर्बल करते हैं—वे मूर्ख हैं, उनका निश्चय आसुरी समझो।

खुलासा—आज कल ऐसे ढोंगी साधुओंकी गिन्ती करना कठिन है, कितने तो वृक्षोंमें झूला डालकर ऊपर पैर और नीचे सिर करके लटकते हैं, कितने ही लोहेके शूलोंकी शैय्या बनाकर उसपर सोते हैं, कितने अपनी लिङ्गेन्द्रिय को जंजीरसे कस डालते हैं, कितने चारों ओर आग सुलगा कर उसमें बैठे रहते हैं, कितने तप्त (गर्म) शिलाओं पर तपते हैं, कहां तक गिनावें आज कल सैकड़ों प्रकार के ढोंगी साधु

देखे जाते हैं। ये लोग ऐसे ऐसे कितने ही कठिन काम लोगों को दिखाने और वाहवाही लूटने को करते हैं अथवा अपनी कोई कामना पूरी करने को करते हैं। ऐसे तपोंकी शास्त्रमें आज्ञा नहीं है। दूर जाने की क्या जरूरत है। भगवान् कृष्णचन्द्र के इस महावाक्य को देखने से क्या इस बात पर अविश्वास रह सकता है?

भारतमें आज कल ऐसे बनावटी साधु प्रायः हर जगह पाये जाते हैं। प्रयाग के कुम्भ के मेले, मथुरा वृन्दावन को रेतीली भूमि में ऐसे साधुओंकी भरमार रहती है। ये पाखण्डी अपना अड्डा ऐसी जगह जमाते हैं जहा से आदमियोंका जमघट, विशेष कर स्त्रियों के झुण्डके झुण्ड निकलते हैं। हमारे देशके अधिकांश पुरुष बिल्कुल ढपोलसङ्ख है, स्त्रिया तो कच्ची बुद्धि की होती ही हैं। पुरुष तो इन्हे पूजते ही हैं मगर स्त्रियोंकी भक्ति इनमे जल्दी पैदा हो जाती है। ऐसे महात्मा अच्छे अच्छे घरोंकी कुल बालाओ को तीर्थ स्थानों से उडा लेजाते हैं और उनका कुल-धर्म, पातिव्रत-धर्म नष्ट कर देते हैं। जो ऐसे दुष्टोंकी पूजा करते हैं वे भगवानकी आज्ञाको नहीं मानते, इसलिये उन्हें भी नरकमें जाना होगा।

भोजन, यज्ञ, तप और दानके तीन भेद।

आगे भगवान भोजन, उपासना, तप और दान की तीन तीन किस्मे बतलाते हैं। इन किस्मोंके जानने से मनुष्य सतोगुण को बढा सकता है और रजोगुण, तथा तमोगुणको घटा सकता है। इसके सिवाय भोजन आदि की किस्मों से सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी की पहचान भी जान सकता है। जो सतोगुणी भोजन करता है वह सतोगुणी है, जो तमोगुणी भोजन करता है वह तमोगुणी है। इसी तरह जो सात्विक, तप, दान, उपासना करता है वह सतोगुणी है। रजोगुणी, तमोगुणीको उनके तप दान आदि से समझना चाहिये।

हे अर्जुन! तीन प्रकारका आहार सबको अच्छा लगता है; इसी तरह उपासना, तप और दान भी सबको तीन प्रकारका अच्छा लगता है। उनके भेद सुन—

तीन प्रकारका आहार।

आयु, उत्साह, बल, आरोग्यता और प्रसन्नता बढ़ानेवाले रसीले, चिकने और बहुत समय तक देहमें रहनेवाले तथा हृदयको हितकारी भोजन सात्विकी लोगोंको प्यारे लगते हैं।

अति कड़वा, अति खट्टा, अति नमकीन, अति चरपरा, अति रूखा और दाह पैदा करनेवाला भोजन जिससे दुःख शोक और रोग बढ़ते हैं, रजोगुणीको अच्छा लगता है।

एक पहरका रक्खा हुआ रस रहित, सड़ा हुआ, बासी, जूठा और अपवित्र भोजन तमोगुणी लोगोंको अच्छा लगता है।

तीन प्रकार का यज्ञ।

हे अर्जुन! यज्ञ करना कर्त्तव्य धर्म है। ऐसा विचार कर जो यज्ञ बिना फल प्राप्तकी इच्छाके किया जाता है वह यज्ञ सात्विक कहलाता है।

हे अर्जुन! जो यज्ञ फलकी कामनासे अथवा ढोंग फैलानेको किया जाता है वह यज्ञ रजोगुणी है।

जो यज्ञ शास्त्र-विधिके विरुद्ध किया जाता है,

जिसमें भोजन नहीं कराया जाता, जिसमें वेद-मन्त्र नहीं बोले जाते, जिसमें दान नहीं दिया जाता, और जो श्रद्धा रहित होकर किया जाता है वह यज्ञ तमोगुणी है।

शारीरिक तप।

देवता, द्विज, गुरु और तत्त्व-ज्ञानियोंकी पूजा करना, भीतर बाहर पवित्र रहना, सबके सामने नम्र रहना, ब्रह्मचर्य्य व्रतका पालन करना, किसीको कष्ट न देना, यह शारीरिक तप कहलाता है।

देवता—ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य आदि।

द्विज—सदाचारी ब्राह्मण।

गुरु—माता, पिता, विद्या पढ़ानेवाला।

ब्रह्मचर्य्य—शास्त्रमें जो मैथुन मना है उसे न करना।

शारीरिक तपमे शरीर प्रधान है लेकिन इसके सहायक और भी हैं। केवल शरीर से जो तप किया जाता है उसे शारीरिक तप नहीं कहते। इस विषयमें भगवान आगे के १८ वें अध्याय में कहेंगे।

वाचिक तप।

अपनी बातसे किसीका दिल न दुखाना, सच बोलना, प्यारी और हितकारी बात कहना, वेदका अभ्यास करना, यह वाचिक तप है।

मानसिक तप।

चित्त प्रसन्न रखना, चित्तमें शान्ति रखना, मौन

रहना, मनको वशमें रखना, कपट न रखना, इसे मानसिक तप कहते हैं।

मनको एकाग्र करके आत्मा का ध्यान करने को मौन कहते हैं। कपट न रखना—दूसरे लोगोंसे व्यवहार में ईमान्दारी से चलना।

गुण अनुसार तीन प्रकारका तप।

पहले जो शारीरिक, वाचिक और मानसिक तीन प्रकारके तप कहे हैं व सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के हिसाब से तीन प्रकार के होते हैं।

फलोंकी इच्छा त्याग कर, अत्यन्त श्रद्धासे, एकाग्र चित्त मनुष्य जो तीन प्रकारके तप करते हैं वह सात्विक कहलाते हैं।

जो तप अपना मान बढ़ानेकी इच्छासे अपनेको पुजानेकी इच्छासे, केवल दिखावेके लिये किया जाता है वह राजस तप कहलाता है। वह तप तुच्छ और अनित्य है।

जो तप मूर्खतासे, अपने आत्माको दुःख देकर, दूसरेको दुःख पहुँचाने या नाश करनेके लिये किया जाता है वह तामस तप कहलाता है।

तीन प्रकार के दान।

जो दान अपना कर्त्तव्य धर्म समझ कर किया जाता है, जो दान उत्तम देश, उत्तम कालमें, सुपात्रको दिया जाता है जिसने कभी अपना उपकार न किया हो, वह सात्विक दान कहलाता है।

कई कई बदमाश लुच्चोंको देना अच्छा नहीं है। विद्वान, ब्रह्मचारी लोक की भलाई के लिये परिश्रम करनेवालोंको दान देना अच्छा है। ऐसे ही लोग सुपात्र कहलाते हैं। जिस से कभी उपकार की आशा हो या जिसने कभी उपकार किया हो उसे दान देना अनुचित है। कुरुक्षेत्र, प्रयाग आदि अच्छे स्थानों तथा संक्रान्ति आदि अच्छे पर्व्व-दिनों में दान देना चाहिये।

जो दान बदलेमें भलाईकी इच्छासे दिया जाता है, या फलकी कामनासे दिया जाता है, या दुःखित चित्त से दिया जाता है वह राजसी दान कहलाता है।

जो दान निषिद्ध देश और कालमें अयोग्योंको दिया जाता है अथवा योग्योंको निरादर और तिरस्कार के साथ दिया जाता है वह तामस दान कहलाता है।

अंगहीन क्रियाओं के पूर्ण करनेकी विधि।

नीचे लिखे विधि नियम यज्ञ, दान, और तपादि के पूर्ण करने या उनमे सिद्धि प्राप्त करनेको दिये जाते हैं।

हे अर्जुन ! "ओं तत् सत्" यह तीन अवयवोंवाला नाम परब्रह्मका है। इस नामसे ही प्राचीन कालमें ब्राह्मण वेद और यज्ञ उत्पन्न किये गये थे।

जिस भांति अकार, उकार, मकार, इन् अवयवों वाला (अ + उ + म + ओं = ॐ, ओ)' अथवा प्रणव परब्रह्मका नाम है उसी तरह से "ओं तत् सत्" भी परब्रह्मके नाम हैं। वेदान्त जाननेवालों ने पहले इसका स्मरण किया था। अधिकारी मनुष्य यदि यज्ञ, दान, आदि के पहले और पीछे तीन तीन बार "ओं तत् सत्" उच्चारण करे तो उसके यज्ञ, दान आदि में दोष न खड़े हों। इसके उच्चारण करने से अंगहीन क्रिया भी

सात्त्विकी फल देगी। यह विधि अनादि कालसे चली आती है। आगे भगवान "ओं, तत् सत्" इन तीनोंका माहात्म्य अलग अलग कहेंगे।

हे अर्जुन ! इसीलिये वेद जाननेवाले शास्त्र-विहित यज्ञ, तप, दान आदिके करनेसे पहिले ॐ शब्दका उच्चारण करते हैं।

जो केवल मोक्ष चाहते हैं और किसी फलकी चाहना नहीं रखते वे लोग यज्ञ, तप, दान आदिके पहिले "तत्" का उच्चारण करते हैं।

हे अर्जुन ! सद्भाव और साधुभाव में "सत्' शब्द कहा जाता है। विवाह आदि माङ्गलिक कामोंमें भी इस "सत्" शब्दका प्रयोग किया जाता है।

यज्ञ, तप और दानके कामको "सत्" कहते हैं। ईश्वरके लिये जो कर्म किया जाता है उसे भी "सत्" कहते हैं। परमात्माके लिये जो यज्ञ आदि कर्म किये जाते हैं यदि वे अंगहीन और गुण रहित भी हों, तोभी 'ओं तत्सत्' के पहिले उच्चारण करनेसे पूर्ण हो जाते हैं।

हे पार्थ ! जो यज्ञ, तप, दान आदि बिना श्रद्धाके किया जाता है वह 'असत्' कहलाता है; उसका फल न तो इस लोकमें मिलता है और न परलोकमें।

इस अध्याय का सारांश

वे भक्त हैं जो, शास्त्रके न जानने पर भी, श्रद्धावान हैं ; और जो, अपनी श्रद्धानुसार, सात्त्विक. राजसिक और तामसिक की श्रेणियोंमें विभक्त किये

जा सकते हैं। इनको चाहिये कि राजसी, तामसी, आहार, यज्ञ, दान और तप को छोड़कर सात्विक आहार, यज्ञ आदि करें। जब कि उनको यज्ञ दान आदिक क्रियाओंमें दोष हो तो वे ओम्, तत् और सत् का उच्चारण करें, इससे उनके कार्य पूर्ण होजायेंगे। इस भाँति अन्तः करण शुद्ध करके उन्हें शास्त्र पढने चाहियें और आगे चलकर ब्रह्म की खोज मे लगना चाहिये। इस तरह करने से उन्हें सत्यका अनुभव होगा और उनको मोक्ष होजायगी।
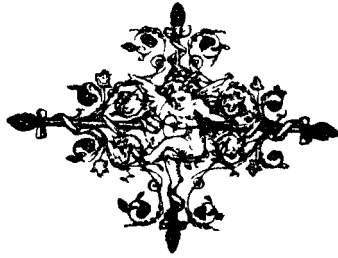
सिद्धान्त।

संन्यास और त्यागका भेद।

इस अध्यायमे भगवान सारे गीता शास्त्र और वेदके सारांश को एक जगह करके उपदेश देते हैं। पहली के अध्यायोंमें जो उपदेश दिया गया है वह सब निचोड़ इस अध्यायमें मिलेगा। लेकिन अर्जुन केवल यही जानना चाहता है कि "संन्यास" और "त्याग" शब्दों के अर्थ में क्या भेद है।

अर्जुन ने पूछा :—

हे महाबाहो! हे हृषीकेश! हे केशी राक्षसके मारनेवाले! मैं संन्यास और त्यागके तत्त्वको अलग अलग जानना चाहता हूँ।

हे भगवन्! संन्यास और त्याग शब्द में क्या फर्क है? इसे आप मुझे कृपा करके समझाइये।

संन्यास और त्याग शब्दों का ज़िक्र अनेक जगह पिछले अध्यायों में आया है मगर उनका खुलासा अर्थ कहीं नहीं किया गया; इसीसे अर्जुन पूछता है और भगवान आगे समझाते हैं।

पण्डित लोग काम्य कर्मोंके छोड़नेको 'संन्यास' कहते हैं; विचार-कुशल पुरुष सब कर्मोंके फल छोड़ने को 'त्याग' कहते हैं।

कुछ विद्वान समझते हैं कि फलोंकी इच्छा सहित अश्वमेध यज्ञ आदि काम्य कर्मोंको छोड़ना संन्यास है। सत्य असत्य की आलोचना करनेवाले विद्वानोंकी राय है कि नित्य नैमित्तिक कर्मोंके फल छोड़ने को त्याग कहते हैं।

संन्यास और त्याग दोनों का एकही अर्थ है। उनमें इतना फर्क नहीं है जितना कि "घड़े" और "कपड़े" में। हाँ, दोनों में ज़रा सा भेद है। संन्यास का अर्थ है अश्वमेध आदि काम्य कर्मोंका छोड़ना और त्यागका अर्थ है कर्म-फलों का छोड़ना।

शंका—नित्य और नैमित्तिक कर्मों का फल होते तो कहीं नहीं कहा गया है। क्या सबब है जो यहाँ उनके फल-त्यागकी बात कही गयी है? यह बात तो वैसी ही है जैसे बाँझ स्त्री का पुत्र त्याग करना।

उत्तर—यहाँ ऐसी शंका नहीं उठायी जासकती, क्योंकि भगवान की राय में नित्य नैमित्तिक कर्मोंका फल होता है। वह इसी अठारहवें अध्याय के १२वें श्लोक में बतायेंगे कि वे संन्यासी, जिन्होंने कर्म-फलोंकी तमाम इच्छाएं त्याग दी है, उनके फलोंसे सम्बन्ध नहीं रखते; किन्तु जो संन्यासी नहीं हैं उन्हें तो अपने नित्य नैमित्तिक कर्मों का फल भोगना ही होगा, जिनके करने को वे बाध्य हैं।

अज्ञानियोंको कर्म छोड़ने चाहियें या नहीं?

कितने ही तत्त्व ज्ञानी कहते हैं कि राग द्वेष आदि की तरह कर्म छोड़ देने चाहियें; कुछ कहते हैं कि यज्ञ, दान और तपको न छोड़ना चाहिये।

खुलासा—नित्य, नैमित्तिक, एवं काम्य कर्म आदि सभी मनुष्य को बन्धन में डालते हैं; क्योंकि वे राग द्वेष आदि के समान दोषोंसे भरे हैं। इसलिये अज्ञानी (जिसका अन्त: करण शुद्ध नहीं है) को वे सब कर्म छोड़

देने चाहियें। यह तो एक पक्षके विद्वानोंका मत है। दूसरे पक्षके विद्वान कहते हैं कि अज्ञानी को भी अन्तः करण की शुद्धि द्वारा, ज्ञान की उत्पत्ति के लिये, यज्ञ, दान, तप इन कर्मों को हरगिज़ न छोड़ना चाहिये। भगवान यहां दो प्रकार के लोगोंका मत कहकर आगे अपना निश्चय बताते हैं।

भगवानकी आज्ञा है कि अज्ञानियों को कर्म करने चाहियें।

हे भरत-कुल-श्रेष्ठ! इस त्यागके विषयमें मेरे निश्चयको सुन। हे पुरुष-श्रेष्ठ! त्याग तीन भाँतिका कहा गया है।

यज्ञ, दान और तप कर्मों को नहीं छोड़ना चाहिये। उनका करना ज़रूरी है। यज्ञ, दान और तप ज्ञानीके शुद्ध करनेवाले हैं।

खुलासा—यज्ञ,दान और तप तीनों प्रकारके कर्म अवश्य करने चाहियें; क्योंकि वे ज्ञानीके मनको शुद्ध करते हैं यानी जो फलोंकी इच्छा नहीं रखते उन ज्ञानियोंको शुद्ध करनेवाले हैं।

आवश्यक कर्म आसक्ति छोड़कर करने चाहियें।

हे अर्जुन! ये कर्म भी आसक्ति और कर्म-फलकी आशा छोड़ कर करने चाहियें। हे पार्थ! यह मेरा निश्चित और श्रेष्ठ मत है।

खुलासा—यज्ञ, दान और तप ये तीन कर्म "मैं करता हूं" ऐसा अभिमान छोड़कर तथा अपने किये हुए कर्मों से स्वर्ग, स्त्री पुत्र आदि फलोंकी आशा न रख कर करने चाहियें। मतलब यह है कि उन किये हुए कर्मों में आसक्ति न रखनी चाहिये और उनसे किसी फलके मिलनेकी उम्मेद न करनी चाहिये। अगर ये कर्म आसक्ति और फल-आशा त्याग कर

किये जायें तो मनुष्यको बन्धनमें न फँसावें। लेकिन जो ऐसा समझते हैं कि "हम यह कर्म करते हैं; हमें इनके करनेसे स्वर्ग, राज, धन दौलत आदि मिलेगी"—वे कर्म-बन्धनमें फँसेंगे—उनकी मोक्ष न होगी।

कर्मों का तामसी और राजसी त्याग।

नित्य कर्मोंका त्याग निश्चय ही अनुचित है; मूर्खतासे उनको त्याग देना तामसी त्याग कहलाता है।

खुलासा—अज्ञानी परन्तु मोक्षकी इच्छा करनेवाला काम करनेको वाध्य है, अत उसका नित्य कर्मों का त्याग करना ठीक नहीं है, क्योंकि कहा जाचुका है कि नित्य कर्मों से अज्ञानीका मन शुद्ध होता है। मन शुद्ध होनेसे मुक्तिकी राह दिखायी देने लगती है।

जो कोई, शारीरिक कष्टके भयसे, कर्मको दुःखदायी समझ कर छोड़ देता है, उसका यह त्याग राजसी त्याग है। इस त्यागका फल उसे कुछ भी नहीं मिलता।

सात्विक त्याग।

हे अर्जुन! "यह नियमित कर्म ज़रूर करना है" ऐसा समझ कर जो कर्म आसक्ति तथा फलकी आशा त्याग कर किया जाता है वह सात्विक त्याग कहलाता है।

खुलासा—कर्म करना चाहिये, किन्तु कर्म-फल की इच्छा न करनी चाहिये। फलकी इच्छा त्याग देनेको ही सात्विक त्याग कहते हैं।

जब कि आदमी कर्मके योग्य होने पर नित्य नैमित्तिक कर्म करता है और अपने कर्मों से प्रेम नहीं रखता एवं उनके फलकी इच्छा नहीं करता उसका अन्तः करण साफ़ हो जाता है। जब अन्तः-

करण शुद्ध और शान्त हो जाता है तब उसका अन्तःकरण आत्म-ध्यान करने योग्य हो जाता है। अब भगवान यह सिखाते हैं कि जिसका अन्तःकरण नित्यकर्मों से शुद्ध हो जाता है और जो आत्म-ज्ञान प्राप्त करने योग्य हो जाता है—धीरे धीरे ज्ञान निष्ठा प्राप्त कर सकता है।

सात्त्विक त्यागी मनुष्य सतो गुणसे व्याप्त होने पर तत्त्व-ज्ञानी हो जाता है, उसके सन्देह दूर हो जाते हैं; तब वह दुःखदायी कर्मों से परहेज़ नहीं करता और सुखदायी कर्मों से प्रसन्न नहीं होता।

खुलासा—जो दुःखदायी कर्मों काम्य कर्मों को संसारका कारण समझ कर उनसे घृणा नहीं करता और जो सुखदायी कर्मों -नित्य कर्मों—को अन्तःकरण शुद्ध करनेवाला और ज्ञान पैदा करके मोक्षकी राह बतानेवाला समझ कर उनसे राज़ी नहीं होता वह ठीक आदमी है। यह हालत मनुष्यकी उस समय होती है जब कि उसमें सतोगुण व्याप्त होजाता है और उस सतोगुणके कारणसे उसे आत्मा और अनात्माका ज्ञान हो जाता है। उस समय उसके अज्ञानसे पैदा हुए सन्देह नाश होजाते हैं तब उसे विश्वास हो जाता है कि आत्म-तत्वमें लीन रहनेसे ही मोक्ष होगी। इसके सिवाय मोक्षका और उपाय नहीं है।

सारांश यह है कि जब मनुष्य कर्म-योगके योग्य हो कर ऊपर लिखी विधिसे कर्म-योग करता है तब धीरे धीरे उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। उस समय वह अपने तईं जन्म-रहित और निर्विकार आत्मा समझने लगता है। इस तरहका ख्याल हो जानेसे, वह परमानन्द स्वरूप आत्माके मुक़ाबलेमें सब कर्मों के फलको तुच्छ समझता है।

अज्ञानी केवल फलही त्याग सकता है।

देहधारीसे कर्मोंका एक दम त्याग होना असम्भव

है ; जो कर्म-फलोंको त्याग देता है वह निश्चय ही त्यागी है ।

खुलासा—अज्ञानी देहधारी सारे कामोंको नहीं छोड़ सकता किन्तु वह कामोंके फलको छोड़ सकता है । कामोंका फल त्यागनेसे अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है ; पीछे ज्ञान होता है । जब तक अज्ञानका नाश न हो, तब तक काम न छोड़ने चाहियें । जो अज्ञानी ज़रूरी काम करता है किन्तु अपने कामोंके फलकी चाहना छोड़ देता है वह काम करता हुआ भी त्यागी कहलाता है ।

सब कामोंको वही त्याग सकता है जो परब्रह्म तत्त्वको जान गया है और जो शरीरको आत्मा नहीं समझता । मतलब यह निकला कि अज्ञानी काम करना नहीं छोड़ सकता लेकिन कामोंके फलको छोड़ सकता है । लेकिन आत्मज्ञानी (शरीर और आत्माको अलग अलग समझनेवाला) सारे कर्मोंको छोड़ सकता है । वह समझता है कि आत्मा कुछ नहीं करता, जो कुछ होता है वह शरीरसे होता है ; इसलिये वह काम करता हुआ भी काम नहीं करता ।

कर्मोंके फल ।

कर्मोंके फल तीन प्रकारके होते हैं—अनिष्ट, इष्ट, और मिश्र । ये फल मरने बाद उन्हें मिलते हैं जो कर्म-फलका त्याग नहीं करते । संन्यासियोंको यह फल भोगने नहीं पड़ते ।

खुलासा—जो फलोंकी इच्छा सहित काम करते हैं उनको अनिष्ट इष्ट, और मिश्र फल भोगने पड़ते हैं । पाप-कर्म का फल अनिष्ट होता है । पुण्य-कर्मका फल इष्ट होता है । पाप और पुण्यका फल मिश्र होता है । जो पाप कर्म करते हैं वह नरकमें जाते हैं यानी पशु-पक्षियोंकी

नीच योनियोंमें जन्म लेते हैं। जो पुण्य करते हैं वे स्वर्गमें जाकर देवता होते हैं। जो पाप और पुण्य दोनों करते हैं वे मनुष्य-योनिमें जन्म लेते हैं।

इस सबका सारमर्म यह है कि इन तीनों प्रकारके फलोंको वे भोगते हैं जो अत्यागी हैं (जिन्होंने कर्म-फलोंकी वासना नहीं छोड़ी है), जो अज्ञानी हैं, जो कर्म-योगके अनुयायी हैं, जो पक्के त्यागी (संन्यासी) नहीं हैं। किन्तु जो सच्चे संन्यासी हैं, जो एक मात्र ज्ञान-निष्ठामें लगे हुए हैं और जो संन्यासियोंकी सर्वोच्च श्रेणीमें हैं, जो परमहंस परिव्राजक हैं, उन्हें ये तीन प्रकारके फल नहीं भोगने पड़ते।

कर्मोंके पाँच कारण।

हे महाबाहो! सब कर्मोंकी समाप्ति करनेवाले सांख्य शास्त्रमें सब प्रकारके कर्मोंके जो पाँच कारण कहे हैं उन्हें तू मुझसे सुन।

सांख्य = वेदान्त (उपनिषद), इसे कृतान्त भी कहते हैं क्योंकि यह सब कर्मोंका अन्त कर देता है। दूसरे अध्यायके ४६ वें और चौथे अध्यायके ३३ वें श्लोक उपदेश करते हैं कि जब आत्मज्ञानका उदय होता है तब सब कर्मोंकी समाप्ति हो जाती है; इसीसे वेदान्तको, जो आत्मज्ञान देता है, 'कृतान्त' कहते हैं।

वे पाँच कारण ये हैं—

(१) अधिष्ठान यानी शरीर।

(२) कर्त्ता यानी स-उपाधि चैतन्य।

(३) करण यानी मन और पाँच इन्द्रियाँ।

(४) प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान वायु।

(५) दैव।

अधिष्ठान=शरीर, क्योंकि यही इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञान अज्ञानका आधार है। कर्त्ता=चैतन्य और जड़की मिलवाला अहंकार अथवा सउपाधि चैतन्य। (३) करण=मन और पाँच इन्द्रियोंके व्यापार (४) पाँच प्रकारकी वायु=जिनसे साँसके आने जाने आदिकी क्रियाएँ होती हैं। (५) दैव=जैसे सूर्यादि देवता, जिनकी मददसे आँख वगैर: इन्द्रियाँ अपने अपने काम करती हैं।

हे अर्जुन! मनुष्य शरीर,मन, और वाणीसे जो भले बुरे कर्म करता है उनके ये (जो ऊपर कहे गये हैं) ही पाँच कारण हैं।

हे अर्जुन! सब कर्म उपरोक्त पाँच कारणों से होते हैं। इस बातके निश्चय होजाने पर भी जो मूढ़ अपने शुद्ध आत्मा को कर्मों का कर्त्ता समझता है वह दुर्बुद्धि नहीं देखता है।

सब काम उपरोक्त पाँच कारणोंसे होते हैं; किन्तु मूर्ख मनुष्य अपनी अज्ञानताके कारण उन पाँच कारणोंके साथ अपने आत्माको समझता है और शुद्ध आत्माको कामका करनेवाला समझता है। असलमें काम उन पांचोंसे होता है। कामसे आत्माका कुछ सम्बन्ध नहीं है। आत्मा कभी कुछ भी नहीं करता। आत्मा उदासीन और असङ्ग है। जिसने वेदान्त नहीं पढ़ा है, जिसने ब्रह्मज्ञानी गुरुसे ब्रह्म-विद्याका उपदेश नहीं पाया है, जिसने तर्क शास्त्र नहीं सीखा है, वह मूर्ख ही आत्माको कामोंका करनेवाला समझता है। ऐसा आदमी मूर्ख है। वह असल राहसे भूला हुआ है। ऐसी समझवालेको बारम्बार जन्मना और मरना पड़ता है। यद्यपि ऐसा आदमी देखता है तथापि वह उस आदमीके समान तत्वको नहीं देखता जो आंखोंमें तिमिर (धुन्ध) रोग होनेसे एक चांदकी

जगह अनेक चाँद देखता है या उस मनुष्यके समान है जो चलते बादलोंमें चन्द्रमा को चलता हुआ देखता है अथवा उसके समान है जो गाड़ीमें बैठा हुआ अपने तईं चलता समझता है जब कि उस गाड़ीके खींचनेवाले चलते हैं ।

हे अर्जुन ! जिस विद्वान पुरुषके मनमें "मैं कर्त्ता हूँ" ऐसा विचार नहीं है, जिसकी बुद्धि कर्मों में लिप्त नहीं है—यद्यपि वह इन प्राणियोंको मारता है, तथापि वह नहीं मारता और उसे बन्धनमें भी नहीं फँसना होता है ।

जिसका मन शास्त्र-ज्ञानसे शुद्ध हो गया है, जिसने गुरुसे ब्रह्मविद्या की शिक्षा पाई है, उसके मनमें अहंकार नहीं रहता यानी वह "मैं कर्त्ता हूँ" ऐसा ख्याल कभी नहीं रखता । वह समझता है—"शरीर अन्तःकरण, इन्द्रिय, पञ्चवायु और दैव ही, जो सूक्ष्म मायासे कल्पना कर लिये गये हैं, सब कर्मों के कारण हैं; मैं किसी कर्मका कारण नहीं हूँ, मैं शरीर अन्तः करण इन्द्रिय आदि पाँचोंके कामोंका साक्षीभूत—देखनेवाला—हूँ । मैं क्रिया-शक्ति रखनेवाले प्राण-रूप उपाधि और ज्ञान शक्ति रखनेवाले अन्तः करण रूप उपाधिसे रहित हूँ; यानी प्राण वायु आदि वायुओं तथा अन्तः करणसे मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । मेरे न अन्तः करण है और न मैं साँस लेता हूँ । मैं शुद्ध हूँ, मैं सब विकारोंसे रहित हूँ, मेरा जन्म मरण नहीं होता, मैं अविनाशी और नित्य हूँ ।" जिसका अन्तः करण (बुद्धि) जो आत्माकी उपाधि है, कर्मों में लिप्त नहीं है वह इस तरह नहीं पछताता—"मैं ने यह काम किया है, इससे मुझे नरकमें जाना होगा ।" जिसके विचार ऐसे हैं वह ज्ञानी है ; वह ठीक देखता है ; चाहे वह इन सब प्राणियोंको मारे तोभी वह मारनेवाला नहीं है । उसपर इस कर्मका असर नहीं होता यानी उसे कर्मके बन्धनमें बँधकर अधर्मका फल नहीं भोगना पड़ता ।

ज्ञान, ज्ञेय, और परिज्ञाता ये तीन कर्म के प्रवर्त्तक हैं। करण, कर्म और कर्त्ता ये तीन कर्म के आश्रय हैं।

ज्ञान=जिससे किसी चीज़का यथार्थ स्वरूप मालूम हो वह 'ज्ञान' है। ज्ञेय=ज्ञान द्वारा जो चीज़ जानी जाय उसे 'ज्ञेय' कहते हैं। जो ज्ञानसे किसी चीज़को जाननेवाला है वह 'परिज्ञाता' है। ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञाता, इन तीनोंके मिले बिना कोई काम आरम्भ नहीं होता यानी इन तीनो में से किसी एक के न होने पर भी काम आरम्भ नहीं हो सकता। करण=जिससे क्रियाकी सिद्धि हो उसे करण कहते हैं; जैसे आंखसे देखा जाता है। करण दो भांतिके होते हैं (१) बाह्य करण, जैसे आंख कान आदि (२) अन्तः करण, जैसे मन, बुद्धि आदि। कर्म=जो काम किया जाय। कर्त्ता=जो काम करे। मैं हाथसे रोटी खाता हूं; इसमे "मैं" कर्त्ता है, "रोटी" कर्म है, "हाथसे" करण है और "खाता हूं" यह क्रिया है। कर्त्ता, कर्म और करण इन तीनोंसे कर्मका संग्रह होता है।

हे अर्जुन! सांख्य शास्त्रमें सत्व, रज, तम इन तीन गुणोंके भेद से ज्ञान, कर्म और कर्त्ता तीन प्रकारके कहे गये हैं। उनको भी तू ठीक ठीक सुन।

सात्विक ज्ञान।

जिस ज्ञानसे मनुष्य सब अलग २ प्राणियोंमें एक ही अभिन्न अविनाशी परमात्मा को देखता है वह सात्विक ज्ञान है।

जब मनुष्यको सात्विक ज्ञान हो जाता है तब वह ब्रह्मासे लेकर चींटी तकमें एक ही अविनाशी परमात्माको देखने लगता है। उस समय

भिन्न भाव नहीं रहता। वह ऐसा समझने लगता है कि देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी सबमें एक ही अविनाशी परमात्मा है। भिन्न भिन्न प्रकारकी देह होनेसे भिन्न भिन्न मालूम होते हैं, वास्तवमे सब एक हैं। अलग अलग शरीरमें अलग अलग आत्मा नही है।

राजस ज्ञान।

जिस ज्ञानसे सब प्राणियों की देहमें रहनेवाला एक ही आत्मा अलग अलग दिखायी देता है उसे राजस ज्ञान कहते हैं।

तामस ज्ञान।

जिस ज्ञानसे शरीर आत्मा समझा जाता है अथवा एक प्रतिमा में ईश्वर समझा जाता है, वह ज्ञान निर्मूल और तुच्छ है। ऐसे ज्ञानको तामस ज्ञान कहते हैं।

सात्विक कर्म।

जो कर्म नित्य नियम से किया जाता है, जिस कर्म में मनुष्य आसक्त नहीं होता, जो कर्म बिना राग द्वेष के किया जाता है, जो कर्म फलकी इच्छा छोड़ कर किया जाता है, वह सात्विक कर्म है।

राजस कर्म।

जो कर्म किसी प्रकार के फलकी इच्छा से, अहंकार से और बड़े कष्ट से किया जाता है वह राजस कर्म है।

तामस कर्म।

जो काम करनेसे पहले यह नहीं विचारा जाता

कि इसका नतीजा क्या होगा, कितना धन नाश होगा, दूसरोंको कितनी तकलीफ पहुँचेगी, मेरी सामर्थ्य इसके करनेकी है या नहीं, इन बातोंको विचार किये बिना ही जो कर्म किया जाता है वह तामस कर्म है।

सात्विक कर्त्ता।

जो कर्ममें आसक्त नहीं होता, जिसको अहंकार नहीं है, जो धैर्य्यवान और उत्साही है, जो कार्यकी सिद्धि और असिद्धिमें एकसा रहता है यानी काम बन जाने पर खुश नहीं होता और बिगड़ जाने पर रञ्ज नहीं करता—वह सात्विक कर्ता है।

राजस कर्त्ता।

हे अर्जुन! जो कामोंसे प्रेम रखता है, जो अपने किये हुए कामके फल पानेकी इच्छा रखता है, जो लोभी है, जो दूसरोंको तकलीफ पहुँचाने में उत्साही रहता है, जो अपवित्र है, जो हर्ष और शोक के आधीन है, वह राजस कर्त्ता है।

तामस कर्त्ता।

जो कर्म करने के समय कर्म में चित्त नहीं रखता, जो बालकोंकी सी बुद्धि रखता है, जो किसीके सामने सिर नहीं झुकाता, जो कपट रखता है, जो दुष्टता करता है, जो अपने कर्त्तव्य कर्म को नहीं करता, जो हर

समय शोकमें डूबा रहता है, जो समय पर काम न करके काम को टाला करता है, वह तामस कर्त्ता है।

हे अर्जुन! गुणोंके अनुसार बुद्धि और धृति (धैर्य) भी तीन तीन तरह की होती हैं। उन्हें मैं अच्छी तरह से अलग अलग कहता हूँ, सुन—

सात्विक बुद्धि।

जो बुद्धि प्रवृति और निवृति, कार्य और अकार्य, भय और अभय, बन्ध तथा मोक्षको जानती है वह सात्विकी बुद्धि है।

जो बुद्धि, प्रवृति और निवृति यानी कर्म-मार्ग और संन्यास-मार्गको जानती है, जो करने योग्य और न करने योग्य कर्मों को जानती है, जो भय और निर्भयताके कारण जानती है, जो बन्धन और मोक्षके कारण जानती है वह सात्विकी बुद्धि है।

राजसी बुद्धि।

जिस बुद्धि से धर्म, अधर्म और कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का ज्ञान नहीं होता वह राजसी बुद्धि है।

तामसी बुद्धि।

जो बुद्धि अज्ञान रूपी अन्धकार से ढकी हुई है, जो धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म समझती है तथा सारी बातोंको उलटी समझती है वह तामसी बुद्धि है।

सात्विकी धृति।

जो धृति योग से व्याप्त है, जिस धृति से मन, प्राण

और इन्द्रियोंकी क्रियाएँ रुकती हैं, वह सात्विकी धृति है।

राजसी धृति।

वह धृति, जिससे मनुष्य धर्म, अर्थ और काम की प्राप्तिमें लगता है और समय पर प्रत्येकका फल चाहता है, वह धृति, हे पार्थ! राजसी है।

तामसी धृति।

हे अर्जुन! जिस धृतिसे मूर्ख मनुष्य नींद, भय, शोक, विषाद, और मद (मस्ती) को नहीं छोड़ता वह धृति तामसी है।

खुलासा—मूर्ख आदमी इन्द्रियोंके विषयको खूब पसन्द करता है और कामातुरताको नहीं त्यागता है। वह समझता है नींद, भय वगैर: कर्त्तव्य कर्म हैं। यानी वह उठनेके समय सोता रहता है और कामके समय भय शोक और मदमें डूबा रहता है।

हे अर्जुन! अब मैं तीन भाँतिके सुखोंका वर्णन करता हूँ। उस सुखका अभ्यास करने से आनन्द होता है और दुःखोंका अन्त होजाता है।

सात्विक सुख।

जो सुख पहले विषके समान मालूम होता है; लेकिन परिणाम में अमृत के समान सुखदायी होता है, वह आत्म-बुद्धिकी शुद्धतासे पैदा हुआ सुख सात्विक सुख होता है।

खुलासा—उस सुखमें पहिले पहिल बड़ा दुःख होता है यानी उस सुखके प्राप्त करनेके पहिले ज्ञान, वैराग्य, ध्यान और समाधिकी प्राप्तिमें बड़ी बड़ी तकलीफें उठानी पड़ती हैं। अन्तमें ज्ञानके उदय होने तथा बाह्य पदार्थों से उदासीनता होनेसे अमृत समान सुख होता है। वह सुख सात्विक है। क्योंकि वह बुद्धि या अन्तःकरणकी शुद्धता अथवा पूर्ण आत्मज्ञान होनेसे होता है।

राजसी सुख ।

हे अर्जुन ! जो सुख इन्द्रियों और विषयोंके मेल से होता है वह पहले तो अमृत के समान मालूम होता है लेकिन अन्तमें वह विषके समान (दुःखदायी) होता है, ऐसे सुखको राजसी सुख कहते हैं ।

खुलासा—विषय-भोगसे पहले तो बड़ा आनन्द आता है किन्तु भोगनेके बाद वह जहरका काम करता है, क्योंकि उससे बल, शक्ति, रंग रूप, बुद्धि विवेक, धन और धैर्य सबका ह्रास होता है, इसके सिवा उससे पाप लगता है और वह नरकमें ले जाता है।

तामसी सुख ।

हे अर्जुन ! वह सुख जो पहले और अन्तमें आत्मा को मोह में फँसाता है, नींद, आलस्य और प्रमादसे पैदा होता—उसे तामसी सुख कहते हैं ।

कोई भी मनुष्य और देवता गुण रहित नहीं है ।

हे अर्जुन ! पृथ्वी या स्वर्ग में कोई मनुष्य और देवता ऐसा नहीं है जो प्रकृति से पैदा हुए सत्व, रज, तम, इन तीन गुणोंसे बचा हो ।

गुणोंके अनुसार चारों वर्णोंके कर्त्तव्य कर्म ।

हे परन्तप ! प्रकृतिसे पैदा हुए सत्व, रज, तम, इन गुणों के कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र के कर्त्तव्य कर्म अलग अलग ठहराये गये हैं ।

ब्राह्मणोंके कर्म ।

अन्तः करण का रोकना, इन्द्रियोंका वश करना, शारीरिक तपस्या, अन्तःकरण की शुद्धता, क्षमा, सिधाई, शास्त्रज्ञान, अनुभव ज्ञान और आस्तिकता, ये ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म हैं ।

क्षत्रियोंके कर्म ।

शूरता, साहस, धीरज, फुरती, युद्धसे न भागना, उदारता, प्रभुता, ये क्षत्रियोंके स्वाभाविक गुण हैं ।

वैश्यों और शूद्रोंके कर्म ।

खेती करना, मवेशी पालना, और व्योपार करना ये वैश्यों के स्वाभाविक कर्म हैं । शूद्रोंका स्वाभाविक कर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा करना है ।

अपने ही धर्म कर्ममें तत्पर रहनेसे सिद्धि मिलती है ।

जो मनुष्य अपने कर्म में तत्पर रहता है वह सिद्धि पाता है । अपने कर्ममें तत्पर रहनेवाला कैसे सिद्धि पाता है सो सुन :—

अपने कर्ममें तत्पर रहनेवालेको अन्त:करण शुद्ध होने पर मोक्ष मिलती है। केवल कर्म करनेसे मोक्ष मिल जायगी ऐसा हरगिज़ न समझना चाहिये। पहला काम अन्त:करणकी शुद्धि है वह कर्म करनेसे होती है। उसके बाद ज्ञान-निष्ठ होकर मनुष्य परमानन्दस्वरूप आत्माको पाता है। असलमे तो कर्म बन्धनका कारण है पर उसीसे चित्तकी शुद्धि होती है इस लिये कर्मको मोक्षके कारणोंमेंसे एक माना है। मतलब यह है कि जब तक चित्त शुद्ध न हो जाय मनुष्यको शास्त्रानुसार अपने कर्म करने ही उचित हैं।

जिस अन्तर्यामी परमात्मा से भूतोंकी प्रवृति होती है, यानी जिसकी सत्तासे सब जगत् चेष्टा करता है, जिससे यह सब जगत् व्याप्त हो रहा है, उस परमात्मा को जो अपने उचित कर्मों से पूजता है उसे सिद्धि मिलती है।

जिस अन्तर्यामी परमात्मासे यह जगत् पैदा हुआ है अथवा जिसकी सत्तासे यह चेष्टाए करता है और जो सारे संसारमे व्याप्त हो रहा है, उस परमात्माको जो मनुष्य अपने जाति धर्मानुसार कर्म करके पूजता है उसका अन्त: करण शुद्ध (निर्मल) हो जाता है। अन्त:करण शुद्ध होने पर मनुष्य ज्ञान-निष्ठ हो जाता है। ज्ञान-निष्ठ हो जाने पर उसे परमानन्द-स्वरूप आत्मा मिल जाता है। इस लिये,

पराये उत्तम धर्मसे अपना गुण हीन धर्म अच्छा है। अपना स्वाभाविक कर्म करने से मनुष्यको पाप नहीं लगता है।

खुलासा—जो अपने धर्मको बुरा समझ कर पराये धर्मको अंगीकार करता है उसे पाप लगता है; किन्तु जो अपने गुणके अनुसार नियत

कर्मको करता है उसे पाप नहीं लगता जिस तरह विषसे पैदा हुए कीड़े को विष नाश नहीं करता। अगर कोई गृहस्थ एक दम गृहस्था-श्रम छोड़ कर सन्यास लेले यानी कर्मों को छोड़ दे तो उससे वह कब निभ सकेगा? अन्त: करणसे रजोगुण तमो गुणके अलग हुए बिना उससे वह सन्यास कभी न हो सकेगा। ऐसे आदमी दीन दुनिया दोनोंसे जाते हैं।

किसीको अपना कर्म न छोड़ना चाहिये।

कह चुके हैं कि जो अपने गुणोंके अनुसार नियत कर्म करता है उसे विषमें पैदा हुए कीड़े की भांति पाप नहीं लगता। पर धर्ममें जानेसे भय होता है। जो आत्माको नहीं जानता एक वह क्षण भर भी बिना कर्म नहीं रह सकता। क्योंकि '

हे कुन्ती-पुत्र! अपने स्वाभाविक कर्ममें कुछ दोष भी हो तोभी उसे न छोड़ना चाहिये; जिस तरह आग में धूआँ है उसी तरह सभी कामोंमें दोष हैं।

संसारमे कोई काम अच्छा या बुरा ऐसा नहीं है जिसमें कुछ न कुछ ऐब (दोष) नहो, इस लिये जन्मके साथ जो कर्म पैदा हुआ हो उसे ही करना चाहिये। अर्जुन! तू क्षत्रिय-कुलमे पैदा हुआ है, तेरा कर्म युद्ध करना है, तू उसमे पाप समझता है और पराये धर्मको अच्छा समझता है। लेकिन तू खूब समझले कि कोई धर्म भी एक दम दोष रहित नहीं है। अग्नि भी धुए के कारणसे दोष सहित है लेकिन उसके दोष धुए -की तरफ ख्याल न करके उसके गुण तेज-से सब संसार मतलब रखता है। इसी तरह तू भी अपने कर्मके दोषको छोड़कर, चित्तके निर्मल होनेको गुणसे मतलब रख।

यदि कोई आदमी अपना धर्म त्यागकर, अपना स्वाभाविक कर्म छोड़कर,

परधर्मको अंगीकार करते तो वह दोष रहित नहीं हो सकता। दूसरेका धर्म भयावह है, इस लिये दूसरेका धर्म कभी अंगीकार न करना चाहिये। कोई भी मनुष्य बिना आत्मज्ञान हुए कर्मों को एक दम नहीं छोड़ सकता, अत: मनुष्यको कर्म नहीं छोड़ने चाहियें।

कर्मयोगमें सिद्धि प्राप्त कर लेने बाद मोक्षकी राह मिलती है।

जिसकी बुद्धि किसी चीजमें आसक्त नहीं है, जिसने अपने अन्त:करणको जीत लिया है, जिससे इच्छा किनारा कर गयी है, ऐसा मनुष्य संन्याससे नैष्कर्म्य सिद्धिको पाता है।

जिसके अन्त: करणमें पुत्र, स्त्री, धन, दौलत आदिकी ममता नहीं रही है, जिसने अपने अन्त:करणको सब ओरसे हटा कर वशीभूत कर लिया है। जिसे किसी प्रकारकी इच्छा नहीं रही है यहां तक कि शरीर कायम रखनेवाले खाने पीनेके पदार्थों में भी जिसकी इच्छा नहीं है, जो शरीर और जीवनकी भी इच्छा नहीं रखता। ऐसा शुद्ध अन्त:करण वाला पुरुष आत्माके ज्ञान जाने पर सन्याससे नैष्कर्म्य सिद्धि—कर्मोंसे एक दम छुटकारा—पा जाता है। निश्चय ब्रह्म और आत्माकी एकता ज्ञान होनेसे सब कर्म मनुष्यका पीछा छोड़ देते हैं। इस अवस्थाको एक दम कामोंसे छुटकारा पानेकी अवस्था कहते हैं। इसीको सिद्धि कहते हैं।

हे अर्जुन! इस सिद्धिको पाकर मनुष्य किस तरह ब्रह्मके पास पहुँचता है उस ईश्वरीय ज्ञानकी परानिष्ठा तू मुझसे संक्षेपमें सुन :—

सब कर्मों को अपने वर्णाश्रम धर्मके अनुसार पालन करके तथा अपने कर्मोंके फलकी इच्छा त्याग कर मनुष्य नैष्कर्म्य सिद्धि पाता है। नैष्कर्म्य

सिद्धि पाया हुआ मनुष्य ब्रह्मसे कैसे साक्षात करता—मिलता है उसे तू मुझसे संक्षेपमें सुन। यही ज्ञान सर्वश्रेष्ठ है, इसीसे इसे ईश्वरीय ज्ञानकी परानिष्ठा कहा है। क्योंकि इस ज्ञानसे अपर और ज्ञान नहीं है। इससे साक्षात मोक्ष मिलती है।

आत्मज्ञानकी निष्ठा परम सिद्धि है।

आत्मज्ञानकी निष्ठा और ब्रह्मज्ञानकी निष्ठा एक ही है। इनमें कुछ भी भेद नहीं है। ब्रह्मज्ञान और आत्मज्ञान एक ही बात है। इस विषयको हम नीचे प्रश्नोत्तरके रूपमें रखकर और भी समझा देते हैं।

प्र०—किसकी निष्ठा ?

उ०—ब्रह्मज्ञानकी निष्ठा।

प्र०—ब्रह्मज्ञानकी निष्ठा कैसी है ?

उ०—जैसी आत्मज्ञानकी निष्ठा।

प्र०—आत्मज्ञान कैसा है ?

उ०—जैसा आत्मा है।

प्र०—आत्मा कैसा है ?

उ०—आत्मा न कभी उत्पन्न होता है और न मरता है। उसी प्रकार ऐसा भी कभी नहीं होता कि वह पहले न हो और बादको हो या पहले हो और बादको न हो। उसका जन्म नहीं होता, वह सदा रहता है। उसमें कमी नहीं हुआ करती; अधिकता भी नहीं होती। शरीरके काट डालने पर भी वह नहीं कटता, ज्ञान निष्ठा * किस तरह प्राप्त होती है सुनो (अध्याय २ रा श्लोक २०वाँ)

* ज्ञान-निष्ठा = ब्रह्मज्ञानका धारा प्रवाह, सब उपाधियोंको अथवा झंझटोंको हटा कर ब्रह्ममें बुद्धिका लीन हो जाना।

मोक्षकी राह।

जिसकी बुद्धि सात्विकी है. जिसने धीरजसे अपने

मनको वशमें करलिया है, जिसने शब्द, रूप, रस, गन्ध आदि विषयोंको छोड़ दिया है, जिसने राग और द्वेष दूर कर दिये हैं;

जो एकान्तमें रहता है, जो थोड़ा भोजन करता है, जिसने वाणी, काया और मनको वशमें कर लिया है, जिसने ध्यान-योगके अभ्याससे चित्तको स्थिर कर लिया है, और जिसे वैराग्य हो गया है;

जिसने अहङ्कार, पराक्रम, गर्व, इच्छा, शत्रुता और विषय भोगके सामानोंको छोड़ दिया है, जिसने "मेरा" यह ख्याल छोड़ दिया है; जो सब चिन्ताओंसे पीछा छुटाकर शान्तचित्त हो गया है, वह ब्रह्मभावको प्राप्त होने योग्य है।

खुलासा—जिसकी बुद्धिमें मन्द ह और भ्रम नहीं है, जिसने शरीर और मन सहित पाँचो इन्द्रियाँ अपने वशमें करली हैं, जिसने एकमात्र शरीर कायम रखने लायक सामान को छोडकर सब तरह के विषय भोगके सामान त्याग दिये हैं, जिसने किसी भी चीज़ से प्रेम और द्वेष नहीं रक्खा है, जिसने जङ्गल, नदीके किनारे, अथवा पर्वत गुहा को अपना वास-स्थान बना लिया है, जो नींद, आलस्य आदि बुराइयोंसे बचने को थोड़ा सा खाता है, जिसने अपनी वाणी, अपने शरीर और अपने मनको अपने आधीन कर लिया है, जो इस भाँति सारी इन्द्रिया को अपने आधीन करके यानी उन्हें शान्त करके हर घडी मनको आत्मामें लगाकर आत्म-ध्यानका अभ्यास करता रहता है, जिसके मनमें दीखनेवाली और न दीखनेवाली दोनो प्रकारकी चीजोंकी इच्छा नहीं रही है, जिसने शरीरको आत्मा समझना छोड़ दिया है,

जिसने दूसरोंको सतानेकी इच्छा और रागयुक्त बल छोड़ दिया है, जिसने हठ, इच्छा और बैर त्याग दिया है, जिसने अपने धर्म कार्य्यों में झंझट पड़नेके ख्याल से शरीरके लिये ज़रूरी सामानों तक को त्याग दिया है, यानी जो परमहंस परिव्राजक—सर्वोच्च संन्यासी—होगया है, जिसने अपने शरीर की चिन्ता नहीं रखी है, ऐसा प्राणी ब्रह्म होने के योग्य है।

जो इस तरहसे :—

ब्रह्ममें निश्चल चित्त रहता है, जो प्रसन्न रहता है, जो न तो किसी बातका सोच करता है और न कुछ चाहता है, जो सब प्राणियोंको एक समान समझता है वह मेरी पराभक्ति—ज्ञानकी—परानिष्ठा—को पाता है।

जो ब्रह्म भावको प्राप्त हो जाता है, जिसका चित्त शान्त रहता है, वह किसी कामके बिगड़ने अथवा किसी भी चीजके नष्ट होने या खोजाने से रञ्ज नहीं करता और न वह किसी भी चीजकी चाहना रखता है। वह सब प्राणियोंके दुःख सुखको अपने सुख दुःखके समान समझता है, ऐसा ज्ञान-निष्ठ मुक्त-परमात्माकी सर्व्वोच्च भक्ति—ज्ञानकी परानिष्ठा—पाता है। (ध्यान रखना चाहिये कि यहां किसी मूर्तिकी भक्ति करनेसे मतलब नहीं है)

इसके बाद :—

भक्ति—ज्ञानकी निष्ठा—से वह मेरे यथार्थ स्वरूपको जानता है, मैं क्या हूँ और कौन हूँ; इसके बाद वह मेरे यथार्थ स्वरूपको जानकर शीघ्रही मुझमें मिल जाता है।

भक्तिसे, ज्ञाननिष्ठा से, वह जान जाता है कि उपाधिके कारणसे मैं नाना प्रकारके रूपोंमें दिखायी देता हूँ, वह जान जाता है कि मैं कौन हूँ, वह जान जाता है कि उपाधि के कारण से जो भेद होते हैं मैं उनसे रहित हूँ

मैं परम पुरुष हूँ, आकाशके समान हूँ ; वह जान जाता है कि मैं अद्वितीय हूँ, मैं एक चैतन्य हूँ, पवित्र, अजन्मा, न गलने सड़नेवाला, निर्भय और मृत्यु रहित हूँ। इस भाँति मेरा यथार्थ रूप जान जानेपर, (ज्ञान प्राप्त करके) वह शीघ्र ही मुझमें प्रवेश कर जाता है।

ध्यान रखना चाहिये कि, 'आत्माको जान कर उसमें प्रवेश करना' दो अलग अलग काम नहीं हैं —तब प्रवेश करना क्या है? वह स्वयं आत्माको जानना है ; क्योंकि आत्माके जानने का फल आत्माके सिवाय और नहीं है। आत्मा ही ईश्वर है। तेरहवें अध्याय के दूसरे श्लोकमें भगवान् ने कहा है "तू मुझे क्षेत्रज्ञ" भी जान।

साराश यह है कि इस ज्ञानकी पराणिष्ठा या पराभक्ति से ईश्वर और क्षेत्रज्ञ (ईश्वर और जीव) के दर्म्यान का भेद भाव एकदम उड़ जाता है।

काममें लगकर ईश्वरकी भक्ति करना।

हे अर्जुन! जो मेरी शरण आकर, हमेशा सारे कर्मोंको करता हुआ रहता है वह मेरी कृपासे अनादि अविनाशी पदको पा लेता है।

इसलिये—

हे अर्जुन! तू मनसे सारे कर्मोंको मेरे अर्पण करके, मुझे परमात्मा समझकर, निश्चल बुद्धिसे मनको एकाग्र करके, तू सदा मुझमें चित्त लगाये रह।

हे अर्जुन! मुझमें अपना चित्त लगानेसे, मेरी कृपा से, तू संसार-सागरके दुःखोंसे पार हो जायगा, लेकिन अगर तू अहङ्कारके मारे मेरी बात न सुनेगा तो तू नष्ट हो जायगा।

अगर अहङ्कार के कारण तू यह समझता है "मैं युद्ध न करूंगा" तेरा यह इरादा हथा है ; रजोगुणी प्रकृति तुझे लड़नेको मजबूर करेगी।

तू क्षत्रिय है। क्षत्रियोंमें रजोगुण प्रधान होता है। अगर तू न मानेगा, तो रजोगुणी प्रकृति तुझे लड़ने पर आमादा करदेगी।

हे अर्जुन ! तू अपने स्वभाव-जन्य क्षत्रिय धर्ममें बँधा हुआ है। जिस कामका करना तू अज्ञानसे पसन्द नहीं करता, वह तुझे करना पड़ेगा।

क्योंकि—

हे अर्जुन ! ईश्वर सबके हृदयमें निवास करता है। वही संसाररूपी चक्रपर बैठा हुआ अपनी मायासे सब प्राणियोंको घुमाया करता है।

खुलासा—जिस तरह बाज़ीगर पीछे बैठा हुआ, कठपुतलियोंको तार खींचकर नचाता है उसी तरह संसाररूपी मैशीनपर चढ़े हुए जीवोंको परमात्मा अपनी माया (अविद्या) से घुमाया करता है। जीव प्रकृति के आधीन है और प्रकृति ईश्वर के आधीन है।

हे अर्जुन ! सब तरह से तू उस परमात्माकी शरणमें आ ; उसकी कृपासे तुझे परम शान्ति और अविनाशी विश्राम स्थान मिलेगा।

हे अर्जुन ! मैंने तुझसे यह गुप्त से भी गुप्त ज्ञान कहा है ; तू इन सब पर खूब विचार करले। फिर तुझे जो अच्छा दीखे सो कर।

हे अर्जुन ! मेरे परम वचनको जो सबसे अधिक

गुप्त है फिर सुन ; तू मेरा परम मित्र है इसलिये तेरी भलाई को कहता हूँ ।

खुलासा— अगर तू सारी गीताको न समझ सके तो दो श्लोकोंमें सारे गीता का सार तत्व तुझसे कहता हूँ , यह गुप्त विषय मैं तुझे तेरे डर या तुझसे इनाम पानेकी ग़रज़ से नहीं कहता किन्तु इसलिये कहता हूँ कि तू मेरा प्यारा और पक्का मित्र है । वह क्या है ?—भगवान कहते हैं—

तू मुझमें चित्त लगा, मेरी भक्ति कर, मेरीही उपासना कर, मेरा ही सम्मान कर, ऐसा करने से तू मेरे पास पहुँच जायगा । क्योंकि तू मेरा प्यारा है इसलिये यह बात मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ ।

खुलासा—इस मंत्रमें भगवानने कर्म निष्ठा का सार कहा है । क्योंकि कर्मनिष्ठा ज्ञाननिष्ठा का साधन है । ईश्वरकी भक्ति करना और एक मात्र उसकी शरण जाना कर्म योग की सिद्धि का गुप्ततम भेद है । आगे भगवान कर्म योग से पैदा होने वाले फल—शुद्ध ज्ञान—को बतलाते हैं ।

शुद्धज्ञान ।

सब धर्मों को त्यागकर, एक मात्र मेरी शरण में आजा । मैं तुझे सब पापों से छुटा दूँगा ; तू रंज मत कर ।

खुलासा—शरीर, इन्द्रिय, प्राण और अन्तः करणके सब धर्मों को छोड़ कर अर्थात् नैष्कर्म्य होकर एक मेरी शरण आजा । मनमें यह विश्वास रख कि मैं स्वयं ईश्वर हूँ , मनमें समझ कि मुझ, ईश्वर, के सिवाय और कुछ भी नहीं है । जब तेरा यह विश्वास दृढ हो जायगा तो मैं तुझे तेरे

आत्मा के रूपमे तमाम पापों, धर्म और अधर्म के बन्धन से छुड़ा दूंगा। ऐसी ही बात दसवें अध्याय के ११वें श्लोक में कही है—

"मैं उनके आत्मामें ठहरा हुआ, प्रकाशवान ज्ञानरूपी दीपकसे उनके अहङ्कार अज्ञान से पैदा हुए अन्धकार को नाश कर देता हूं।"

गीता का उपदेश सुनानेयोग्य मनुष्य।

यह ज्ञान जो मैंने तुझे बताया है ऐसे आदमीसे कहने लायक नहीं है, जो तपरहित है, जो मेरा भक्त नहीं है, जो मेरी सेवा नहीं करता और जो मेरी बुराई करता है।

गीताके उपदेश करनेका फल।

जो परमभक्तिसे इस अत्यन्त गुप्त ज्ञानको मेरे भक्तों को सुनावेगा वह निस्सन्देह मेरे पास आवेगा।

खुलासा—जो मनुष्य इस अत्यन्त गुप्त ज्ञानको जिससे परमपद मिलता है मेरे भक्तोंको सुनावेगा और मनमें ऐसा विश्वास रखेगा कि मैं गीता सुनकर नित्य परमात्मा और परम गुरु की सेवा करता हूं वह मेरे पास पहुंच जायगा यानी उसको मोक्ष होजायगी।

जो गीताका उपदेश करता है उससे अधिक मेरा प्यारा काम करनेवाला मनुष्योंमें नहीं है; उससे अधिक प्रिय पृथ्वीपर मेरा कोई न होगा।

जो कोई हमारे तुम्हारे इस पवित्र कथोपकथनको पढ़ेगा, वह ज्ञानयज्ञ द्वारा मेरी पूजा करेगा, यह मेरी राय है।

गीता सुननेका फल।

वह मनुष्य जो द्वेष रहित होकर श्रद्धासे गीता सुनता है वह भी मुक्त होकर उन सुखदायी लोकोंमें जाता है जहाँ अग्निहोत्र आदि यज्ञ करनेवाले जाते हैं।

अर्जुनका भगवानको विश्वास दिलाना कि आपका उपदेश मेरी समझमें आगया।

भगवान ने पूछा :—

हे अर्जुन! मैंने तुझे जो उपदेश दिया है वह तैंने ध्यान देकर सुना या नहीं? उससे तेरा अज्ञानसे पैदा हुआ भ्रम दूर हुआ कि नहीं?

अर्जुन ने जवाब दिया :—

हे अच्युत! आपकी कृपासे मेरा भ्रम दूर होगया है और मुझे ज्ञान हो गया है। मैं दृढ़ हूं, मेरे सन्देह नाश होगये हैं। मैं आपकी आज्ञानुसार काम करूंगा।

सञ्जय कृष्ण भगवान और उनके उपदेशकी प्रशंसा करता है ।

सञ्जयने कहा :—

हे धृतराष्ट्र ! मैंने भगवान वासुदेव और महात्मा अर्जुनका अद्भुत कथोपकथन इस भांति सुना, जिसके सुननेसे मेरे रोयें खड़े हो गये ।

व्यासजीकी कृपासे मैंने इस परमगुप्त योगको स्वयं योगेश्वर भगवान कृष्णके मुखसे निकलते सुना है ।

व्यासजी ने सञ्जयको दिव्य चक्षु दिये थे। इसीसे वह धृतराष्ट्रके पास बैठा हुआ युद्धभूमिका सारा हाल देख सका था ।

हे राजन् ! केशव और अर्जुनके इस अद्भुत और पवित्र कथोपकथनके हर क्षण याद आनेसे मुझे बार-म्बार प्रसन्नता होती है ।

और हर क्षण हरिके परम अद्भुत विश्वरूपके याद आनेसे मुझे बड़ा आश्चर्य होता है और मैं बार-म्बार हर्षित होता हूँ ।

मेरी समझमें जिधर योगेश्वर कृष्ण हैं और जिधर गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुन है उधर ही राज्यलक्ष्मी, उधर ही विजय, उधरही वैभव और उधरही न्याय है ।

हे राजन ! जिस सेनामें योगेश्वर भगवान कृष्ण हैं उसी सेनाकी जीत होगी। मेरी समझमें आपके पुत्र दुर्योधन की जीत हरगिज़ न होगी। आप जयकी आशा छोड़ दीजिये ।

॥ समाप्त ॥

विज्ञापन

स्वास्थ्यरक्षा।

(द्वितीय आवृत्ति)

यह वही पुस्तक है जिस की तारीफ़ समस्त हिन्दी समाचार पत्रोंने दिल खोल कर की है। इस की उत्तमता के लिये यही प्रमाण काफ़ी है कि इसका दूसरा संस्करण छप गया और बिक भी गया। अब तीसरेकी तय्यारियां होरही हैं। जो लोग शास्त्र की ज़रूरी बातों को जानना चाहते हैं, जो संसार का सच्चा सुख भोगना चाहते हैं, जो बहुत दिनोंतक जीना चाहते हैं, जो अपने घरका इलाज आप ही करना चाहते हैं, उन्हें यह पुस्तक अवश्य ही दिल लगाकर पढ़नी चाहिये। इसमें जो विषय लिखे गये हैं वह सभी आज़मूदा हैं। मनुष्य को अपने सुख के लिये जो कुछ जानने की ज़रूरत है वह सभी इस में लिखा गया है। जो संसारमें सुखसे जीवन का बेड़ा पार करना चाहते हैं, उन्हें यह अनमोल पुस्तक लोभ त्यागकर अवश्य ख़रीदनी चाहिये। छपाई सफ़ाई इतनी सुन्दर है कि पुस्तक को छाती से लगाये बिना जी नहीं मानता।

दाम १॥) डाकखर्च ।) सुन्दर फैन्सी बिल जिल्दवाली का दाम २) और डाकखर्च ।

अंगरेजी शिक्षा

प्रथम भाग ।

(चतुर्थ आवृत्ति)

आजतक ऐसी किताब नहीं छपी। इस किताबके पढ़ने से थोड़ी सी देवनागरी जाननेवाला भी बिना गुरु के अँगरेज़ी अच्छी तरह सीख सकता है। इसके पढ़ने से २।३ महीने में ही साधारण अंगरेज़ी बोलना, तार लिखना, चिट्ठी पर नाम करना, रसीद और हुण्डी वगैर: लिखना बखूबी आसक्ता है। किताब की छपाई सफाई मनोमोहिनी है। हर एक अँगरेज़ी शब्द का उच्चारण दिया गया है। इसमें कूड़ा करकट नहीं भरा गया है। इस पुस्तक में वही बातें लिखी गई हैं जो व्योपारियों, रेलमें काम करनेवालों, डाकखाने में काम करनेवालों तथा तार घर आदि में काम करनेवालों के काममें आती हैं। दाम १५० सफों की पोथी का ॥) डाक खर्च

अंगरेजी शिक्षा

दूसरा भाग ।

जिन्होंने हमारा पहिला भाग पढ़ लिया है या जिन्होंने कोई दूसरी पुस्तक थोड़ी बहुत पढ़ली है उनके लिये हमारी "अँगरेज़ी शिक्षा" का दूसरा भाग निहायत उपयोगी है। इसमें अँगरेजी व्याकरण (English Grammar) बड़ी उत्तमतासे समझाया गया है। आजतक कोई पुस्तक हमारी नज़र नहीं आई, जिसमें इससे उत्तम काम किया गया हो।

व्याकरण वह विद्या है जिसके सीखे बिना किसी भी भाषाका आना महा कठिन है। कितनी ही किताबें क्यों न पढ़लो ; जबतक व्याकरण का ज्ञान न होगा तबतक पढ़नेवाले का हृदय सूना ही रहेगा ; लेकिन व्याकरण है बड़ा कठिन विषय।

इस कठिन विषय को ग्रन्थकर्त्ताने अत्यन्त सरल कर दिया है। हिन्दी जाननेवाला, अगर शान्त स्थान में, एकाग्र-चित्तसे, इसका अभ्यास करे तो बहुत जल्दी होशियार हो सकता है। इसके सीख जाने पर उसे चिट्ठियाँ लिखना, बाँचना, अँगरेज़ी समाचारपत्र पढ़ना बिल्कुल आसान हो जायगा। हम दावेके साथ

कहते है कि हमारी अँगरेजी शिक्षाके चारों भाग पढ़ लेने पर जिसे अँगरेजी में अखबार पढ़ना, चिट्ठियों वगैर: धड़ाके से लिखना न आजायगा तो हम दुगुनी कीमत वापिस देंगे। मगर किताब मँगा लेने से ही कोई पण्डित नहीं हो सकता, उसका याद करना भी जरूरी है। दाम केवल १) रुपया और डाक महसूल ≠) है।

अंगरेजी शिक्षा

तीसरा भाग।

इस भाग में विशेषण और सर्वनाम (Adjective और Pronoun) दिये गये हैं और उनको इतने विस्तारसे समझाया है कि मूर्ख से मूर्ख भी आसानी से समझ सकेगा। इसके बाद सब प्राणियों की बोलिया तथा संज्ञा और विशेषणों के चुने हुए जोड़े दिये हैं जिनके याद करनेसे अखबार नॉविल आदि पढ़नेमें सुभीता होगा। इनके पीछे उपयोगी चिट्ठियां और उनका अनुवाद दिया गया है। शेषमें, शब्दोंके संक्षिप्त रूप (Abbreviations) बहुतायतसे दिये हैं। यह भाग दूसरे भाग से भी उत्तम और थोड़ा है।

दूसरे भागके आगेका सिलसिला इसी भागमें चलाया गया है। दाम १) डाक खर्च ≈)

अंगरेजी शिक्षा।

चौथा भाग।

हमारी लिखी हुई अँगरेजी शिक्षाके तीनों भागोंको पबलिक ने दिलसे पसन्द किया है। अत: हमें अब प्रशंसा करनेकी आवश्यकता नहीं है। इतना ही कहना है कि अँगरेजी व्याकरण जितना बाकी रह गया था वह सभी इस भागमें खतम कर दिया गया है; साथ ही और भी अनेक उपयोगी विषय दे दिये गये हैं। दाम १) डाकखर्च ≈)

हिन्दी बंगला शिक्षा

बङ्गला साहित्य आजकल भारत की सब भाषाओंसे ऊँचे दर्जे पर चढ़ा हुआ है। उसमें अनेक प्रकार के रत्नोंका भण्डार है। अत: हर शख्स की इच्छा होती

है कि हम उन ग्रंथोंको देखें और आनन्द लाभ करें। किन्तु बँगला सीखनेका उपाय न होनेसे लोगोंके दिलकी मुराद दिलमें ही रह जाती है। हमारे पास ऐसी पुस्तक की, जिसके सहारे से हिन्दी जाननेवाला बँगला बोलना, लिखना और पढ़ना जान जावे, हज़ारों मांगें आईं। मगर ऐसी पुस्तक न तो हमारे यहाँ थी और न बाज़ारमें ही मिलती थी।

अब हमने सैकड़ों रुपया खर्च करके यह पुस्तक हिन्दी और बँगलामें छपाई है। रचना शैली इतनी उत्तम है कि मूर्ख भी इसको पढ़ने से बिना गुरुके बँगला का अच्छा ज्ञान सम्पादन कर सकता है।

जिन्हें बँगला सीखने का शौक़ हो, जिन्हें बँगला के अपूर्व्व रत्न देखने हों, जिन्हें बँगाल देशमें रोजगार व्यौपार और नौकरी करनी हो, उन्हें यह पुस्तक खरीद कर बँगला अवश्य पढ़नी चाहिये।

इस किताब में एक और खूबी है कि बँगला जाननेवाला इससे हिन्दी भाषा और हिन्दी जाननेवाला बंगला सीख सकता है। ऐसी उत्तम पुस्तक आजतक हिन्दीमें नहीं निकली। खरीददारों को जल्दी करनी चाहिये। देर करने से यह अपूर्व्व रत्न हाथ न आवेगा। दाम ॥) डाकखर्च ≈)

———

अक्लमन्दीका खज़ाना

यह पुस्तक यथा नाम तथा गुण है। ऐसी कौन सी नीति और चतुराई की बात है जो इस पुस्तक में नहीं है। भारतवर्षके प्राचीन नीतिकारों की नीति, गुलिस्ताँके चुनीदा उपदेश तथा और भी अनेक चतुराई सिखानेवाली बातें इसमें कूट कूट कर भरी गयी हे।

जो दुनिया में किसीसे धोखा खाना नहीं चाहते, जो सभा-चातुरी सीखना चाहते हैं, जो विदुर, कणिक, चाणक्य, शुक्राचार्य्य की नीतिका स्वाद चखना चाहते हैं, जो शेख सादी की अपूर्व्व नीतिका मज़ा लूटना चाहते हैं, जो चीन देश के विद्वान बुद्धिमान कॉनफ्यूशियस की अक्लमन्दी की अद्भुत बातें जानना चाहते हैं, जो संसारमें सुखसे ज़िन्दगी बिताना चाहते है, उन्हें यह पोथी अवश्य खरीदनी चाहिये।

आज तक ऐसी उत्तम पुस्तक हिन्दी में नहीं निकली। यह पुस्तक हिन्दी में नयी ही निकली है। इस पुस्तकके दस पाँच दफ़ ेदिल लगाकर पढ़ लेने पर, महामूर्ख भी महा बुद्धिमान हो जावेगा। जिन्हें अपने

लड़कों को महा चतुर और अक्लका पुतला बनाना हो वे इस पुस्तक को अवश्य खरीदें। दाम १) डाक खर्च ≈)

॥ राजसिंह ॥

वा

चंचलकुमारी।

यह राजसिंह सचमुच उपन्यासों का राजा है, जिस प्रकार से वनका राजा सिंह बनैले जन्तुओंपर अपना पूरा प्रभाव रखता है उसी तरह यह भी उपन्यासोंमें "सिंह" हो रहा है। भारतवर्ष की इतनी कायापलट हो जानेपर भी अभीतक चित्तौरका नाम नहीं गया है, अभीतक चितौरकी उज्वल-कीर्त्ति दिग्दिगान्तरमें गूँज रही है, राजपूतानेकी स्वाधीनता लोप हो जानेपर भी अभी तक चितौरका माथा ऊँचा हो रहा है। उसी प्रकारसे हमारे उपन्यासके नायक "राजसिंह"का नाम भी इतिहास जाननेवालोंके आगे छिपा नहीं है। राज सिंहकी वीरता, धीरता, चतुरता, बुद्धिमत्ता, प्रतिज्ञापालनकी पूरी पूरी सत्ता, अचल प्रतिज्ञा,

दूरदर्शिता, प्रजापालनमें तत्परता और निर्लोभता अभी तक उनका नाम निष्कलङ्क कर रही है। हमारा "राजसिंह" ऐतिहासिक शिक्षा देनेवाला एक रत्न है। जिस औरङ्गज़ेबकी कूटनीतिके आगे समूचा भारत थरथराता था, जिस मुगल सम्राट औरङ्गज़ेबकी अमल्दारीमें हिन्दू-राजे अपनी बहन बेटी व्याह देना अपना माथा ऊँचा करना समझते थे, जिस औरङ्गज़ेबके थोड़ेसे इशारेमें ही बड़े बड़े राजे महाराजे उनके पैरोंके नीचे लोटते थे, और जिस प्रतापी मुगल-सम्राटने बड़े बड़े राजाओंसे भी "जज़िया" नामक कर वसूल कर लिया था, उसी प्रतापी औरङ्गज़ेबके चंगुलसे एक राजपूत हिन्दू सुन्दरीको बचानेके लिये राजसिंहकी अटल प्रतिज्ञाका पूरा पूरा खाका इसमें खींचा गया है। इसको पढ़नेसे ही प्यारे पाठकोंको मालूम हो जायगा कि राजपूतों को प्रतिज्ञा कैसी अटल होती थी।

इस उपन्यासकी सभी बातें आश्चर्यमें डालनेवाली, कुतूहल को बढ़ानेवाली और शिक्षाकी देनेवाली हैं। रूप नगरके राजा विक्रमसिंहका सुन्दर राज्य, राजकुमारी चञ्चलकुमारी का एक तस्वीर देखकर राजसिंह-पर मोहित होना, अपनी तस्वीरका अनादर सुनकर औरङ्गज़ेबका क्रोधित होना; हज़ारों सिपाही भेजकर

चञ्चलकुमारीको बुलवाना, चञ्चलका राजसिंहको विचित्रपत्र भेजना, राजसिंहका विचित्र रीतिसे मुग़लोंके हाथसे चञ्चलको छुड़ाना, माणिकलालकी कूट बुद्धि, औरङ्ग़ज़ेबका भयानक क्रोध, विक्रमसिंहका भारी परिताप, चञ्चलकी सखी निर्मलकी अद्भुत कार्य्यावली, औरङ्गज़ेबकी कन्या जेबुन्निसाका मुबारकसे गुप्तप्रेम, औरङ्ग जेबके शाही महलकी गुप्त घटनायें; राजसिंहका औरङ्गज़ेबके नाम पत्र भेजना, औरङ्गज़ेबका और भी क्रोधित होना, राजसिंहसे औरङ्गज़ेबको भयानक लड़ाई तीन तीन बार औरङ्गज़ेबका हारना आदि घटनायें पढ़ते पढ़ते पाठक उपन्यास-मय हो रहेंगे। ऐसा उत्तम मनोरम और सच्ची घटनाओंसे भरा हुआ उपन्यास बहुत कम देखनेमें आवेगा। सच तो यह है कि यह उपन्यास उपन्यासोंमें मुकुट हो रहा है। अवश्य पढ़िये, पढ़िलेही की भांति सर्व साधारणको शिक्षा दिलानेके लिये ३०६ पृष्ठोंकी उत्तम पुस्तकका दाम कुल ॥) डाक महसूल ≤) रक्खा गया है।

मानसिंह

वा

कमलादेवी।

यह उपन्यास मुसल्मानी अमल्दारी की चालोंका बायस्कोप और हिन्दू राजाओंके नामका पूरा पूरा उदाहरण दिखा देनेवाला है। हिन्दू-संसार में ऐसे बहुत कम मनुष्य होंगे, जिन्होंने अकबरके दाहिने हाथ महाराज मानसिंहका नाम न सुना होगा। यह ग्रन्थ उन्हीं ऐतिहासिक वीरकी विचित्र कार्यावलीसे भरा हुआ है। मानसिंहके नामका कलङ्क, अपनी बहनको अकबरसे व्याह देना, महाराणा प्रतापका साहसपूर्ण उद्गार, हेमलताका विचित्र प्रेम, एक बाज़ीगरकी विचित्र चतुराई, बहराम खाँका कपट, नूरजहाँका सलीमसे प्रेम, शेरशाह तथा सलीमका बाहुयुद्ध, शेरखाँका नूरजहाँसे विवाह, कमलादेवीका दरबार, देवसिंहकी भीषण वीरता, राजपूतोंमें आपस की फूट, कमलादेवीका गुप्त प्रेम, इसी गुप्त प्रेमके कारण मानसिंहकी खराबी, महाराज मानसिंह और हेमलताका सच्चा प्रेम, मानसिंहके दुराचार, हेमलताकी निराशा, अरावली

पर्वतपर फिर मानसिंह और मुगलोंका भयानक युद्ध, मानसिंहकी सच्ची वीरता और रणकौशल आदि रहस्य-मय घटनाओंको पढ़ते पढ़ते पाठक अपने आपको भूल जायँगे। ग्रन्थ बड़ा ही रोचक और भावपूर्ण हुआ है। ऐतिहासिक घटनाओंका इस सुन्दरतासे वर्णन किया गया है कि पढ़नेवालोंके हृदयमें एक एक बात चुभ जाती है। सच तो यह है कि भारतवर्षको इस दीन अवस्थामें ऐसे ही उपन्यासोंकी आवश्यकता है जो पढ़नेवालोंके हृदयपर उनके पूर्व्व पुरुषों का चित्र अङ्कित कर सकें। आशा है हमारा यह उपन्यास वही काम कर दिखायेगा। इस उपन्यासको पढ़ते समय पाठकोंको परिणामपर भी अवश्य ध्यान रखना चाहिये। हम अब इसकी प्रशंसामें अधिक लिखना व्यर्थ समझते हैं; क्योंकि यह अपना नमूना आपही है। यदि आपलोग इसे मँगाकर ध्यान देकर पढ़ेंगे; तो आपलोगोंको मालूम हो जायगा कि विज्ञापनका एक एक अक्षर सत्य है। अवश्य पढ़िये, ऐसा अवसर बार बार हाथ नहीं आता। सर्व साधारणके सुभीतेके लिये २५६ पृष्ठोंकी पुस्तकका दाम कुल ॥/) रक्खा गया है। डाकमहसूल ≠)

गल्पमाला

यह पुस्तक हाल में ही प्रकाशित हुई है। इसमें एक से एक बढ़ कर मनोरञ्जक और उपदेश पूर्ण दस कहानियां लिखी गयी हैं। पढ़ना आरम्भ करने पर छोड़ने को जी नहीं चाहता। हिन्दीके अच्छे अच्छे विद्वानोंने इस पुस्तक की प्रशंसा की है। पढ़ते समय करुणाकी नदी लहराती है। कभी प्रेमका समुद्र उमड़ने लगता है। कभी पुण्यकी जय देख, हृदय में पवित्र भावका सञ्चार होता है और कहीं पाप के कुफल को देख कर परमात्मा के अटल न्यायकी महिमा प्रत्यक्ष आँखोंके आगे दिखाई देने लगती है। दस उपन्यासोंके पढ़ने में जो आनन्द आ सकता है, वह केवल गल्पमाला ही से मिल सकता है। दाम ।~) डाकखर्च ~)

बादशाह लियर

यह विलायतके जगद्विख्यात कवि शेक्सपियर के "किंगलियर" नामक नाटक का गद्य में बहुत ही मनोमोहन और रोचक अनुवाद है। एकबार पढ़ना आरम्भ करके बिन खतम किये पुस्तक के छोड़ने को

भी नहीं चाहता। शेक्सपियर ने बादशाह लियर और उसकी तीन कन्याओंका चरित्र बहुत ही उत्तम रूपसे लिखा है। मनोरञ्जन होनेके अलावः इस पुस्तक से एक प्रकार की शिक्षा भी मिलती है। पढ़ते पढ़ते कभी हँसी आती है। कभी बूढ़े बादशाह लियर की दुर्दशा का हाल पढ़ कर आखोंमें आँसू भर आते हैं। हिन्दी-प्रेमियोंको यह पुस्तक भी अवश्य ही देखनी चाहिये। दाम ॥) डाकखर्च ।)

गुलिस्तां

यह वही पुस्तक है जिसकी प्रशंसा तमाम जगत् में हो रही है। वलायत, जरमनी, फ्रान्स, चीन, जापान और हिन्दुस्तानमें सर्व्वत्र इस पुस्तकके अनुवाद हो गये हैं। लेकिन अफ़सोस की बात है कि बेचारी हिन्दी में इसका एक भी पूरा अनुवाद नहीं हुआ। इसके रचयिता शेखसादीने इसमें एक एक बात एक एक लाख रुपये की लिखी है। वास्तव में यह पुस्तक अनमोल है। इसी कारण है यह पुस्तक यहाँ मिडिल, एंट्रेन्स, एफ० ए० बी० ए० तक में पढ़ाई जाती है। इस की नीतिपर चलनेवाला मनुष्य सदा सुख से रह कर जीवन का बेड़ा पार कर सकता है। मनुष्य

मात्र को यह पुस्तक देखनी चाहिये। इसका अनुवाद सरल हिन्दीमें हुआ है। छपाई सफ़ाई भी देखने लायक है। दाम १) डाकखर्च ≠)

राधाकान्त

(उपन्यास)

आज कहने को तो अनेक उपन्यास निकलते हैं किन्तु वह सब रद्दी हैं। उनसे पाठकोंके मन और चरित्र के खराब होनेके सिवाय कोई लाभ नहीं है। इसके पढ़ने से एक अमीर की सच्ची घटना आँखों के सामने आजाती है; आदमी धनमत्त होकर कैसी कैसी ठोकरें खाता है; खोटी संगति में पड़ कर, धनवानों के लड़के कैसे खराब हो जाते हैं; खुशामदी लोग बड़े आदमियों की कैसी मिट्टी खराब करते हैं; जब तक धन हाथमें रहता है तब तक खुशामदी मधुमक्खियों की तरह चिपटे रहते हैं धन खाली होते ही वही बात भी नहीं पूछते; रण्डियाँ कैसी मतलबी और धन की प्रेमी होती हैं और सच्चे और आदर्श मित्र कैसे होते हैं।

इस पुस्तकके देखने से उपरोक्त विषयों के सिवाय ईश्वर में प्रेम होने, ईश्वर पर एक मात्र भरोसा करने, विपत्तिकाल में धैर्य्य धारण करने की युक्तियाँ भी मालुम

होगी। अमीरों को तो इस पुस्तक को अवश्य ही बालकों को पढ़ाना चाहिये। इन्हीं बातों के न जानने और ऐसी पुस्तकों के न पढ़ने से ही लाख के घर खाक में मिल जाते हैं। पुस्तक अनमोल है। छपाई भी इतनी सुन्दर है कि लिख नहीं सकते। दाम ॥) डाकखर्च ≶)

भारत में पोर्च्युगीज़।

(इतिहास)

यह एक पुराना इतिहास है। इस में यह बात खूब ही सरल भाषा में दिखायी गयी है कि पहले पहल फिरङ्गी लोग भारत में कैसे आये, उन्होंने कैसे भारत का पता लगाया। सब से पहले भारत में आनेवाले फिरङ्गी को सात समन्दर चौदह नदियाँ पार कर के भारत की खोज में आने के समय कैसे कैसे कष्ट उठाने पड़े। फिरङ्गियों (पोर्च्युगीज़ों) ने दक्खन भारतमें कैसे २ अत्याचार किये; भारत का धन वे अपने देशमें कैसे लेगये; भारतीय ललनाओं की कैसी बेइज्जती की; अन्तमें भगवान भारतवासियों पर दयालु हुए; उन्होंने शान्तिप्रिय, प्रजावत्सला, न्यायशीला ब्रिटिश जाति को

भारतवासियों के कष्ट निवारणार्थ भारत में भेजा। अँगरेज़ों ने सब भारतवर्ष अपने हाथ में लिया। मुसल्मान और पोर्चुगीज़ों को भगा कर भारत में शान्ति स्थापन की। आज अँगरेज़ महाराज के छत्रतले हम भारतवासी सुख चैन की बंशी बजाते हैं। देशमें लूट मार काटफाट बन्द है। शेर बकरी एक घाट पानी पीते हैं। एक महा बूढ़ी डोकरी भी सोना उछालती फिरती है पर कोई यह कहनेवाला नहीं है कि तेरे मुँह में के दाँत हैं।

यह सब हालात इस पुस्तक के पढ़ने से मालुम होंगे। कौन भारतवासी इन गुप्त और पुराने विषयों को न जानना चाहेगा? प्रत्येक भारतवासी को अपनी जन्मभूमिका पुराना हाल जानना चाहिये और अँगरेज़ों की भलाई के लिये उन का क्रतज्ञता-भाजन होना चाहिये। दाम ॥) डाकखर्च ≠)

बाल गल्पमाला

यह पुस्तक हिन्दी जगत् में बिलकुल नयी और मनुष्य मात्र के देखने योग्य है। मनुष्य मात्र को चाहिये कि इसे पढ़े और अपनी सन्तान को पढ़ावे। अगर लोग इसे अपने बालकों को पढ़ावें तो यह अभी

गति पर पहुँचा हुआ भारत फिर उन्नतिके उच्चतम शिखर पर चढ जाय। घर घरमें सुख चैनकी बाँसुरी बजने लगे। लड़के मा बाप की आज्ञा पालन करें और सभी स्त्रियाँ पतिव्रता हो जायँ।

इसमें रामचन्द्र की पितृ-भक्ति; भीष्म पितामह का कठिन प्रतिज्ञा पालन; लक्ष्मण और भरतका भ्रातृ-प्रेम; श्रीकृष्ण की विनय; युधिष्ठिर और महात्मा वशिष्ठ की क्षमाशीलता; हरिश्चन्द्र का सत्यपालन; मुद्गलका आतिथ्य सत्कार; आकणिक की गुरुभक्ति; महाराणा प्रतापसिंह के प्रोहित की राजभक्ति; चण्डका कर्त्तव्य पालन और कुन्तीका प्रत्युपकार खूब ही सरल और सरस भाषामें दिखाया है। अधिक क्या कहें पुस्तक घर घरमें विराजने और पूजी जाने योग्य है। दाम ।♂) डाकखर्च ♂)

अलिफ़ लैला

पहला भाग।

यह ऐसी उत्तम किताब है कि जिस का तरजुमा फ्रेंच, जरमन, अँगरेजी, रूसी, जापानी आदि भाषाओंमें तीन तीन और चार चार प्रकार का हो चुका है। हमने भी इसका तरजुमा एक निहायत बढ़िया अँगरेज़ी

पुस्तकसे किया है। तरजुमे में कोई विषय छोड़ा नहीं है। भाषा इसकी निहायत सीधी साधी और ऐसी सरल रक्खी है कि थोड़े पढ़े बच्चे से लेकर बहुत पढ़े हुए विद्वान तक इससे आनन्द लाभ कर सकेंगे। उपन्यासोंका स्वाद चखे हुए पाठकोंको यह पुस्तक बहुत ही प्यारी लगेगी। एकबार पढ़ना शुरू करके पढ़नेवाले खाना पीना भूल जायँगे और इसे समाप्त किये बिना न रहेंगे। पढ़नेवाले औरतों की चालाकियाँ, उनकी बेवफाई, आदि पढ़ कर हैरत में आजायँगे और कहने लगेंगे कि हे भगवन्! क्या औरतें इतनी मक्कारा होती हैं! देव राक्षस सन्दूकोंमें बन्द रख कर भी अपनी औरतोंकी चालाकी न पकड़ सके! औरतों ने जब देव जिन्नों के ही चूना लगा दिया तब मनुष्य विचारा क्या चीज़ है? २११ सफोंकी बड़ी पुस्तक का दाम केवल ॥) और डाकखर्च ।) लगेगा।

रामायण-रहस्य

प्रथम भाग

हिन्दी जगत् में यह भी एक नयी चीज़ है। रामायण का परिचय देना अनन्त सागर सलिलमें दो चार बिन्दु जल डालना है। ऐसा भावमय, ऐसा सुमधुर,

ऐसा शिक्षाप्रद, ऐसा भक्तिमय, ऐसा रसीला और दूसरा ग्रन्थ संसार में नहीं है।

इस जगत् में कितने ही ग्रंथ बने और बन रहे हैं परन्तु रामायण के समान किसी का आदर न हुआ। आदर कहाँ से हो, इसके समान और ग्रन्थ है ही नहीं। मातृ-भक्ति, पितृ-भक्ति, स्त्री-धर्म, मित्र-धर्म, राज-नीति, प्रजा धर्म, प्रजा-पालन, युद्ध-शिक्षा, युद्ध-नीतिका जैसा सुन्दर चित्र रामायण में है वैसा और किसी ग्रन्थमें नहीं है। रामचन्द्रकी पितृ-भक्ति, लक्ष्मण और भरत की भ्रातृ-भक्ति, सीताका पति-प्रेम, दशरथका पुत्र-प्रेम, हनूमान की स्वामिभक्ति का नमूना जैसा इस ग्रन्थमें है और ग्रन्थोंमें नहीं है।

महात्मा तुलसीदासजी रामायण लिखकर अमर हो गये हैं किन्तु अनेक लोग ऐसे हैं जो तुलसी दासजी की गूढ़ भावमयी कविता को समझने में असमर्थ होते हैं। इसीसे हमने वाल्मीकि, अध्यात्म, मयङ्क और तुलसीकृत रामायणों के आधारपर इसे अत्यन्त सरल हिन्दीमें एक विद्वान् लेखक से लिखवाकर प्रकाशित किया है। जिन्हें वाल्मीकि आदि सारी रामायणों का सरल भाषामें स्वाद लेना हो वे इसे अवश्य देखें। बहुत क्या लिखें चीज़ देखने ही योग्य है। पढ़ते पढ़ते बिना खतम किये छोड़ने को जी नहीं चाहता। भाषा छप-

न्यासों की सी है; इससे चौगुना आनन्द आता है। घटनाएँ पानीकी घूँटकी तरह दिमाग़ में घुसती चली जाती हैं। छपाई भी इतनी सुन्दर हुई है कि देखते ही पुस्तक को छाती से लगाने को जी चाहता है। यह प्रथम भाग है। इसमें बालकाण्ड और अयोध्या-काण्ड पूरे हुए हैं। बड़े आकारके १६० सफोंकी पुस्तक का दाम ॥) डाक खर्च ≠)

हिन्दी भगवद्गीता।

गीताकी एक एक शिक्षा, एक एक बात, मनुष्यको संसार के दुःख के शोंसे छुड़ाकर तत्वज्ञान सिखाती है और संसारी मनुष्योंके अशान्त मनको शान्ति देती है। आत्मज्ञान जितनी अच्छी तरह इसमें कहा गया है और पुस्तकों में नहीं कहा गया है। इसके पढ़ने समझने और इस पर विचार करनेसे मनुष्य संसार के बन्धनोंसे, जन्म मरणके कष्टसे, छुटकारा पाकर मोक्ष लाभ करता है। महाराज कृष्णचन्द्रका एक एक उपदेश पृथ्वी भरके राज्य से भी बढ़कर मूल्यवान है। मनुष्य मात्रको यह भगवद्वाक्य देखना, पढ़ना और समझना चाहिये और

अपना भविष्य सुधारना चाहिये। आज तक गीताके कितने ही अनुवाद हो चुके हैं; मगर कुछ तो अधूरे हैं और कुछ ऐसी पुराने ढांचेकी ऊटपटांग हिन्दीमें अनुवाद हुए हैं, कि उनका समझना ही महा कठिन है; इसलिये गीता प्रेमियोंका मतलब नहीं निकलता।

यह अनुवाद एकदम सरल हिन्दीमें हुआ है और इतनी अच्छी तरह हरेक विषय समझाया है, कि मूर्खसे मूर्ख बालक भी गीताके गहन विषयोंको बड़ी आसानीसे समझ कर हृदयङ्गम कर सकेगा। खाली गीता पाठ करनेसे कुछ लाभ नहीं हो सकता; किन्तु गीताको पढ़कर समझने और विचार करनेसे जो लाभ मनुष्यको हो सकता है वह त्रिलोकी के राज्यसे भी बढ़कर है। अधिक क्या कहें इस पुस्तकमें ग्रन्थकर्त्ताने जैसी हरेक विषयको समझानेकी कोशिश की है वैसी किसीने भी नहीं की है। जिनके पास गीताके और और अनुवाद हों, उन्हें भी यह अनुवाद अवश्य देखना चाहिये।

———